षोडशक ग्रंथ-विवरणं

[पूर्वार्ध]

— मूलकर्ता —

आचार्यवर्य हरिभद्रसूरि.



— विवरणकार —

अनुयोगाचार्य आणंदविजयजी गणि



— प्रकाशक —

प० केशरलाल जैन

हाल मुनि.

संवत् १९९१] वीर संवत् २४६१ [सन् १९३४

2-0-0

मुद्रक —
शेठ देवचद दामजी
आनद प्रीन्टींग प्रेस
भावनगर

निवेदन.

आ ग्रथनो अभ्यास कर्या पछी वर्तमानमा लोकोपयोगी अने उपकारक आवा जेवो अन्य ग्रथ क्वचित ज हशे एवी खास मारी मान्यता थई आ मान्यताने में अमुक विद्वान् समक्ष रजु करी एटले तेओए अने अन्य बीजाओए मनवृत प्रेरणा करी के आ ग्रथनु जो तमो विवेचन करशो तो वधु उपयोगी अवश्य थशे मने पण आ वात रुची अने साथे साथे आ ग्रथनु विवेचन करवाने मन ललचायु परिणामे मारी अल्पमतिथी तेनु विवेचन कर्यु ग्रथ एटलो गहन छे के तेमा मारा जेवानी बुद्धिनो प्रवेश थवो पण अशक्य हता, छता साधनोनी अनुकूलताए में यथासाध्य प्रयत्न कर्यो छे आ ग्रथनी प्रस्तावना, उपोद्घात विगेरे अमो ग्रथना बीजा भागमा आपवा धारेल छे, कारण के ग्रथना मुद्रण आदिमा मदद आपनार महाशयोने ग्रथ प्रगट थइ प्राप्त करवानी लागेली तालावेलीने लीधे आ ग्रथने तुरतमा ज प्रथम भाग रूपे प्रकाशित करवानी प्रकाशकने आव-

व्यवस्था उभी थइ तेम ते ग्रंथनुं प्रमाण अमारा धारवा करता लगभग बेवडुं थइ गयुं आथी पण बे भागमां ग्रंथने वहेंची नाखवो वधु उचित जणायुं अतएव आ ग्रंथ परत्वे हमारे जे काइ निवेदन करवानुं छे ते अमे बीजा भागमां जाहेर करीशुं प्रांते आ ग्रंथमां सलाह-रूपे अने मुद्रित करवामां अमने जेओए कीमती मदद करी छे तेओनो हुं आभार मानुं छु आशा छे के-पाठको आ ग्रंथने अमारी स्खलना सुधारी वांचवा ध्यान राखशे सज्जनो हमेशां गुणग्राही ज होय छे अलं अधिकेन

प्रार्थी-लेखक



॥ नम श्रीमहर्षिपूज्यगम्भीरविजयेभ्यो ॥

षोडशकग्रंथ-विवरणं ।



अमृतमिवामृतमनघ,
जगाद जगते हिताय यो वीरः ।
तस्मै मोहमहाविष-
विघातिने स्तान्नम. सततं ॥ १ ॥

यस्या सस्मृतिमात्राद्
भवन्ति मतय सुदृष्टपरमार्था ।
वाचश्च बोधविमला. सा
जयतु सरस्वती देवी ॥ २ ॥

मंगल

जेम अमृत आत्माने अजरअमर बनावे छे, तेम जे प्रभुए आ अमृत तुल्य एवु द्वादशांगीरूप वचनामृत जगतना कल्याण माटे प्रकाश्यु, तथा मोहरूप महाकालकूट झेरनो जेओए आमूलतः नाश कर्यो छे, एवा वीरप्रभुने नित्य नमस्कार हो ।

जेना स्मरणमात्रथी ज परमार्थभूत पदार्थोने जणावनार बुद्धि उत्पन्न थाय अने ज्ञाननिर्मल-अर्थात् सुबुद्ध एवी वाचा प्राप्त थाय छे, ते सरस्वती नामनी देवी विजयवती हो ।

टीकाकार भगवान आ रीते शिष्टाचारनु पालन करवा, निर्विघ्न टीका समाप्त करवा स्वेष्टदेवने नमस्कार करी प्रकृत ग्रथनी टीकानी प्रस्तावना आ प्रमाणे कहे छे—

प्रस्तावना

एक सामान्य वस्तुनी परीक्षा कर्या पछी तेने स्वीकारवाथी माहरुने असतोष के खेद थतो नथी. निदान के-कोइ पण चीज परीक्षा कर्या पछी ज स्वीकारवी ए न्याय गणाय, तो पछी ससारमा डुबता अने पोताना उद्धारनी अपेक्षा राखनारे, तेमज पोतानु हित साधवामा निपुणे, दरेक कार्योमा दोष तथा गुण सबधी गुरु-लाघवतानो विचार करनारे, परमार्थ क लाभालाभनो ख्याल करनारे एव प्रश्नोत्तरो सबधी परमार्थ विचारनार विद्वाने तो अवश्यतया उत्तम धर्मनी परीक्षा करवी जोइए. धर्मनी परीक्षा तो परीक्षक विना न ज

थाय कारण के 'परीक्षा परीक्षक विना रही शक्ती नथी. न्यायनी भाषामा परीक्षा अने परीक्षकनो परस्पर व्याप्ति संबंध कह्यो छे, माटे ज उत्तम धर्मनी परीक्षा कोण करी शके विगेरे भावोने समजाववा चौदसो चुमालीश ग्रंथकर्ता आचार्य हरिभद्रसूरिजी आ षोडशकनामा प्रकरणनु कथन करे छे आ प्रकरणमा आर्या छंदवडे निबद्ध सोल अधिकारो छे. प्रत्येक अधिकारने सोल-सोल श्लोकथी प्रतिपादन कर्या छे, माटे ज आ प्रस्तुत प्रकरणनु सान्वय एवु षोडशक नाम ग्रंथकर्ताए राख्यु छे।

आ तो उपर जणाव्या प्रमाणे प्रस्तुत ग्रंथकर्ताए प्रस्तुत ग्रंथनो संबंध दर्शाववा एक सामान्य प्रस्तावना कही. हवे प्रस्तुत ग्रंथने शरु करता ग्रंथनी आदिमा मंगल, अभिधेय, संबंध अने प्रयोजनने दर्शावनार आदिनो आर्या श्लोक हरिभद्रसूरिजी कथन करे छे—

" प्रणिपत्य जिनं वीरं,
सद्धर्मपरीक्षकादिभावानाम्।
लिंगादिभेदतः खलु
वक्ष्ये किंचित्समासेन " ॥ १ ॥

सूत्रार्थ—राग-द्वेषादि शत्रुवर्गने जीतनार एवा वीर परमात्माने नमीने उत्तम धर्मनी परीक्षा करनार वर्गो—लोको विगेरे पदार्थोनु स्वरूप, तेना चिन्हो तथा भेदो प्रकाशवावडे करीने काइक संक्षेपथी हु (हरिभद्रसूरि) कथन करीश

स्पष्टीकरण—" शिष्टाः शिष्टत्वमायान्ति शिष्टमार्गानुवर्त्तनात् " शिष्टो उत्तमपुरुषोना पगनु अनुकरण करवाथी उत्तमजनो उत्तमताने मेलवे छे " आ एक सर्व साधारण नियम छे. आचार्य हरिभद्रसूरिजी पण एक उत्तम शिष्ट कोटिना अग्रगण्य शिष्टपुरुष छे. शिष्टोनो एवो आचार छे के—

" शिष्ट-आचार "

ग्रंथना आरंभमा मगल, अभिधेय, प्रयोजन अने संबध चार पदार्थो कह्या पछी ज अवशेष वक्तव्यनु कथन करे छे अतएव ग्रंथकर्ता पण आ चारे पदार्थनु स्वरूप अने ग्रंथनो उद्देश एक ज आर्याद्वाराए देखाडे छे शास्त्रनी आदिमा स्पेष्ट देवन नमस्काररूप मगल करवु आवश्यक गणाय, तेथी अने शास्त्रनी निर्विघ्ने समाप्ति थाय, श्रोता तथा पठन करनार सुखे शास्त्राभ्यास करी शके एव आ ग्रंथ मगलशून्य छे आ प्रकारनी शिष्योनी बुद्धिनो परिहार करवा माटे आचार्य— ' प्रणिपत्य जिन वीर ' ए पदथी मगलनु प्रतिपादन करे छे, तथा अन्यान्य पदोवडे अभिधेयादिकनु पण स्वरूप कहे छे

" मगलादि-कथन "

राग-द्वेषादि अनादिकालीन शत्रुवर्गनो विजय करवाथी जेओ जिनभगवत बन्या छे, एव प्रखर तपस्याथी जेओए निबिडतम कर्मोनो नाश करवा अद्भुत वीरपणु दाखव्यु हतु एटले-" विदारयति यत्कर्म तपसा च विराजते ।

तपोवीर्येण युक्तश्च तस्माद्वीर इति स्मृतः ” १ जेओ कर्मोने विदारे छे अने महान् तपस्याथी शोभे छे, अत एव तप अने वीर्यवडे युक्त होवाथी वीर ए नामथी जेमनु स्मरण कराय छे, एवा अने अखड वार्षिक दानद्वारा जगतना दारिद्रयनो जेओए नाश कर्यो छे, सगम जेवा पिशाचाधम देवे छ मास पर्यंत भयकर प्राणहर उपसर्गो करवा छता जेओए अतुल क्षमा धारण करी हती, अने द्वादश वर्ष पर्यंत घोर तपस्या जेओए करी हती एवा दानवीर, शूरवीर अने तपवीर वीर भगवानने त्रिकोणयोगनी शुद्धिपूर्वक नमस्कार हो पर-मार्थ ए के उपरोक्त गुणोथी रजित थइ इन्द्रादि देवोए जेओनु महावीर ए सगुण नाम स्थापन कर्यु छे तेमने नमीने, आ रीते ग्रथकर्ता श्लोकना प्रथम चरणवडे स्वष्टदेवने नमनरूप मगलनो बोध करी, बीजा चरणथी उत्तम धर्मनी परीक्षा करनारा विगेरे पदार्थोनु स्वरूप कथन करवानु जणावे छे निदान के-प्रस्तुत ग्रथमा धर्मना परीक्षको बाल, म यम, बुध पैकी ए त्रण वर्ग छे तेनु स्वरूप एव धर्मनु स्वरूप, तेना लक्षणो, धर्मीनु स्वरूप अने तेना लक्षणो विगेरे अनेक पदार्थनो परिस्फोट ग्रथकार करशे ते पण विविध चिन्होवडे तेमज अनेक भेदोवडे सक्षेपथी ज किन्तु विस्तारथी नहीं, कारण के-अध्येतृ वर्ग अथवा श्रोतावर्गने अधिक क्लेश न थाय माटे, आ रीते ग्रथकारे प्रस्तुत ग्रथरचनानु प्रयोजन जणाव्यु अन्यान्य ग्रथोमा पूर्व महर्षिओए जो के बाल, मध्यम आदि धर्मपरीक्षकोनु स्वरूप

दर्शाव्यु छे, तथापि प्राचीन ग्रथोक्त ते स्वरूप दुर्गम्य अने अने सामान्य होवाथी प्राकृतलोकोने उपकारक न थाय तेम धारी प्रस्तुत ग्रथकर्ता धर्मपरीक्षकोना भेदो, तेओना चिह्नो आदि अत्र विस्तृतपणे दर्शावशे, जेथी विशेषतया सर्वने उपकारी आ ग्रंथ थाय एज आ ग्रथरचनानु प्रयोजन छे उपरोक्त प्रयोजन सिद्धि प्रकरण के ग्रथस्थ वाक्योना बोधद्वाराए ज थाय, अन्यथा न ज थाय ए स्वाभाविक छे अन एव अत्र बाल, मध्यम आदि धर्मपरीक्षक वर्गनु ज्ञान प्राप्त थवु ते उपेय साध्य छे, अने तेनु आ ग्रथ उपाय-साधन होवाथी अहीं उपायोपेयसाध्यसाधनरूप सबध आव्यो अहीं आटलु विशेष जाणवु के जगतमा ज्ञानना अर्थी लोको बे प्रकारना छे-एक तो शास्त्रकथित पदार्थोने युक्ति अने प्रमाणद्वाराए सिद्ध कर्या पछी जेओ श्रद्धा करे-अगीकार करे ते, अने बीजा लोको शास्त्रोक्त पदार्थो सत्य ज छे, तेमा शका करवी निरर्थक मानी श्रद्धा करवावाला होय छे० पहेला वर्गना लोको माटे अहीं उपायोपेयसाध्यसाधनरूप सबध जाणवो अने बीजाओ माटे गुरुपूर्वक्रम नामनो सबध जाणवो

" शका समाधान "

यद्यपि ग्रथकर्ताए प्रथम आर्यामा जेम मंगल अने प्रयोजन ए पदार्थनो स्पष्ट निर्देश कर्यो तेम सबधने दर्शाववा माटे स्पष्ट उल्लेख कर्यो नथी, तो पछी अहीं आटलु बधु नकामु पेपण करवानु शु प्रयोजन छे ? ए शकानु समाधान अहीं आ प्रकार जाणवु—

" शास्त्र प्रयोजनं चेति,
संबंधस्याश्रयावुभौ ।
तदुक्त्यांतर्गतस्तस्माद्,
भिन्नो नोक्तः प्रयोजनात् " ॥ १ ॥

"शास्त्र अने प्रयोजन ए बन्ने संबंधना आश्रयी होवाथी ज्यां शास्त्र तथा प्रयोजननुं कथन थयुं त्यां संबंधनुं पण कथन थइ गयुं जाणवुं. एटले संबंध जणाववा माटे अलग निर्देश करवानी जरुर नथी " ए रीते मंगल, प्रयोजन अने संबंध दर्शाव्या हवे रह्युं केवल अभिधेय. यद्यपि ग्रंथरचनानुं प्रयोजन दर्शाव्युं एटले अभिधेयनुं कथन आवी गयुं छे, तो पण आ ग्रंथमां धर्मना परीक्षक एवा बाल, मध्यम आदि वर्गनुं चिह्नो तथा भेदादिवडे विस्तारथी स्वरूप आचार्यश्री दर्शावशे, एटले ए ज अहीं स्पष्ट अभिधेय जाणवुं

आ रीते ए चारे पदार्थनो शुरुमां ग्रंथनी आदिमां कर्त्ताए विचार कर्यो यदि ए चार पदार्थनो विचार न जणाव्यो होय तो, प्रस्तुत ग्रंथनो अभ्यास अने श्रवण करवानो कोइ मनोरथ न करे, कारण—विद्वानो तेवा ग्रंथनो अनादर करे छे, अत एव अन्यत्र कह्युं छे—

" प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थं
फलादित्रितयं स्फुटं ।

मगल चैव शास्त्रादौ
वाच्यमिष्टार्थसिद्धये "   ॥ १ ॥

" पडितोनी प्रवृत्ति माटे शास्त्रनी आदिमा ज प्रयोजन, सबध अने अभिधेयनु कथन करवु तथा इष्टार्थना सिद्धि माटे शास्त्रनी आदिमा मगल पण जणाववु " आ हेतुथी ग्रथनी आदिमा चार पदार्थनो सयुक्तिक विचार विद्वानो माटे जणाव्यो, ए हवे फरीने जणाववानी आवश्यक्ता नथी.

कथाए प्रथम जणाव्यु हतु के-"सत्य धर्मना परीचक एवा बाल, मध्यम आदि वर्गनु स्वरूप कहीशु " ए कथनानुसारे तेनु स्वरूप ग्रथकर्ता अहीं थीओ आर्यांथी शुरु करे छे-

" प्रकरणारभ "

" बाल. पश्यति लिंग
मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तम् ।
आगमतत्त्व तु बुधः
परीक्षते सर्वयत्नेन "   ॥ २ ॥

मूलार्थ—" बालजनो-मदबुद्धिवानो मात्र वाह्यवेश देखीने, मध्यमबुद्धिक केवल आचार-वर्तन देखीने, अने तत्त्वज्ञजनो सर्वथा प्रकारे आगमतत्त्वनी ज परीक्षा करे छे "

" जनतानी प्रकृति "

स्पष्टीकरण–वहोळा जनसमूहमा अमुक ज लोको धर्मप्रति रुचिवाला अनुभववामा आवे छे, कारण के जनतानो म्होटो भाग तो केवल एशआराम अने पुद्गलसुखविलासी ज देखाय छे. हवे जे लोको धर्मानुरागी जणाय छे तेमा पण केटलोक भाग तो वंशपरंपरागत कौटुंबिक प्रेरणाथी अथवा तो व्यवहारमां पोतानी निंदा न थाय एटला माटे अगर बहुमानार्थे ज धर्म उपासना करे छे जे लोको धर्म उपासक छे ते सर्वे काइ सत्य धर्मनी परीक्षा कर्या पछी ज धर्म सेवे छे एम काइ छे नहीं कारण–परंपरागत अथवा व्यवहार रक्षणार्थे के बहुमानार्थे कराता धर्ममा सत्यपणानी परीक्षा क्याथी संभवे? न ज संभवे. निदान के–बाह्य परीक्षा कर्या पछी पण सत्य धर्मनी सेवा करनार वर्गना त्रण विभाग पाडी शकाय. जेओ केवल अबुद्ध होय अर्थात् उपरनो बाह्य आडंबर देखी प्रसन्न थाय ते १, जेओ मात्र क्रिया–आचार विगेरे जाणी खुशी थाय ते २, अने जेओ शास्त्र–आगम अनुसारे वर्तन चेष्टा जाणया पछी, तपास्या पछी प्रसन्न थाय ते ३, एटले जेओ सत्य धर्मनी परीक्षा करनार होय ते सर्वेनो आ त्रण विभागमा ज समावेश थइ जाय छे. आथी अतिरिक्त कोइ पण लोको नथी.

" बालवर्ग "

परमार्थ ए के–जेओ अबुद्ध होय छे, विशिष्ट प्रकारनी सारासार समजवानी अने वस्तुतत्त्व समजवानी जेओमा बुद्धिनी खामी होय छे, ते लोको केवल बाह्य वेश अथवा

वेशनो आडंबर देखीने खुशी थाय छे ने तेमां ज आ लोको धर्म माने छे. एटले ज्यां साधुपणानो बाह्य आडंबर देखवामां आव्यो, अगर ज्यां धर्माडंबरनी बाह्य रचना नजरे पडी के ते लोको गांडाघेला थइ जाय छे, नाचवा-कूदवा मांडे छे, अहोभाग्य मानी लांबा लांबा नमस्कारो करवा दोडी जाय छे आथी आ लोकोने विद्वानो बालक कहे छे, कारण के-आ सर्व चेष्टा बालयोग्य-बालक जेवी देखाय छे जेम कोइ छोकराने तेना मावाप कहे के-द्रव्यपूजानो वेश, सामायक-प्रतिक्रमणनो वेश जेणे पहेर्यो होय, एवं रजोहरण, मुहपत्ति, धोला कपडा जेणे पहेर्यां होय ते धर्मी कहवाय, ने साधु कहवाय बस आटली शिखामणना अंते ज्यां उपरोक्त स्थिति बालकना देखवामां आवी के मावापनी शिक्षा याद करी ते प्रमाणे मानवा दोडी जाय छे आ ज स्थिति उपरोक्त वर्गना लोकोमां सन्नकारपणे देखाय छे, माटे ज ग्रथकर्ता एक ज पदथी जणावे छे—" बाल पश्यति लिंग "

" मध्यम वर्ग "

बीजो वर्ग मध्यमबुद्धिनो जणाव्यो छे. आ लोको प्रथम वर्गनी अपेक्षाए अधिक चडता छे एटले बुद्धिमां आगल वधता होवाथी कांइक विचारशील होय छे एटले तेओ उपरनी खास टापटीप, बाह्य वेश के आडंबर देखी मुग्ध नथी बनता, किन्तु विचार करे छे के-केवल वेश तो दांभिको पण पेट भरवा स्वीकारे छे, माटे वेश साथे आचार, नियम अने क्रिया पण

होय तो ज ते वदनीय—नमस्करणीय कहवाय निदान के—वेश साथे आगल जणावाशे तेवा आचारो देखी—तपासी पछी ज आ लोको तेमा धर्म माने छे, माटे आ लोकोने बालकवर्गथी भिन्न मध्यम वर्ग नामे बीजी पंक्तिमा विद्वानो गणावे छे. आ वर्ग पैकीना लोकोमा एटली अवश्य विशिष्टता होय छे के— तेओ मुनिवेष के श्रावकनो धर्मवेष देखी पछी जो के नम्र, कोमलपरिणामी बने छे खरा तो पण साथे साथे पोतानी बुद्धिथी एटलु तो जरुर विचारे छे के—अहीं आचार—नियम विगेरे केवा छे ? ते जो होय तो नमस्कारादि करे अने न होय तो लोकरंजनो आदर छे एम माने छे अत एव ग्रंथकारे कह्यु के—' मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तम् " मध्यमबुद्धिजनो आचारनो विचार करे छे

" बुधवर्ग "

ज्यारे तत्त्वज्ञजनो उपरोक्त बन्ने वर्गथी भिन्न होय छे एटले आ लोको वेशमात्रथी राजी थता नथी तेमज उपरना आचारादि मात्र देखवाथी खुशी थता नथी, अर्थात् जेओमा विशिष्ट तत्त्वज्ञान होय, परमार्थ जेओ अच्छी रीते देखी शके छे, कार्यना परिणामदर्शी जेओ होय छे, जेओने आगमोक्त तत्त्वनो सुदर बोध होय तेनु नाम अहीं बुद्धवर्ग छे एटले आ लोको पोतानी बुद्धि अनुसारे जेमा वेश तेमज आगमानुसारी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आश्री वर्तन, नियम, आचारादि होय तेमा ज धर्म माने छे, अने तेनो ज आदर करे छे सिवाय खाली

वेश के बाह्य आचारादिमा धर्म मानता नथी, कारण के प्रवचनाशं प्रधान जे वर्त्तन अने तेना वर्त्तनथी अलंकृत मुनिवेश आदि मार्ग ज आत्मकल्याण साधी शके छे. जेम प्रवचन-आज्ञानो लोप थतो होय, प्रवचनने बाधा उपजती होय तेवु एकान्त सुदर पण चारित्र गर्हणीय कह्यु छे. निदान के-प्रवचन आज्ञानु बराबर पालन थवु जोइए-"धर्माधर्म-व्यवस्थायाः शास्त्रमेव नियामकं। तदुक्तासेवनाद्धर्मस्त्वधर्मस्तद्विपर्ययात्" ॥ १ ॥ "धर्म, अधर्मनी व्यवस्था करवामा शास्त्र पोते ज नियामक छे, माटे शास्त्राज्ञाना पालनमा धर्म अने तेथी विपरित चालवाथी अधर्म छे" निष्कर्ष ए के- बुधजनो तत्त्वदर्शी होवाथी आगमाज्ञानुसारी वर्त्तन देखे छे अने आगमतत्त्वनी ज परीक्षा करे छे, वेश आदिनी परीक्षा करता नथी, एज वात ग्रंथकर्त्ता जणावे छे- "आगमतत्त्व तु बुधः परीक्षते" मूलमा "सर्वयत्नेन" ए पद ग्रंथकर्त्ताए एटला माटे आप्यु छे के-बालजीवो अने मध्यमजनो धर्मनी परीक्षा केवल सामान्यपणे ज कर छे परंतु खास इन्तायी करता नथी, ज्यारे बुधजनो सर्व प्रकारे पोतानी बनती कोशीशे अने कसोटीपूर्वक आगमतत्त्वनी परीक्षा करे छे

अथवा जेम बालजीवो केवल वेशमा अने मध्यमजनो केवल आचारमा धर्म माने छे तेम बुधजनो मानता नथी, किन्तु वेश अने आचार जणावनार शास्त्रमा तत्त्व परमार्थ शु

छे ? तेमा अविसंवादिपणु केवु छे ? सर्वज्ञकथित छे के नहीं ? विगेरे तपासे छे अने त्यारपछी तथाप्रकारना वेश के आचारादिने धर्मतया-सत्यतया स्वीकारे छे बस आ रीते भिन्न भिन्न बुद्धिना कारणथी उपरोक्त त्रण भेदो धर्मपरीक्षकोना अहीं ग्रंथकर्त्ताए जणाव्या.

आटलु सामान्य कथन कर्या पछी हवे बाल, मध्यम आदिनी विशिष्ट ओळखाण कराववी आवश्यक गणाय माटे आचार्यश्री ते प्रत्येकना लक्षणो प्रथमथी दर्शावे छे—

बालो ह्यसदारंभो
मध्यमबुद्धिस्तु मध्यमाचारः ।
ज्ञेय इह तत्त्वमार्गे,
बुधस्तु मार्गानुसारी यः ॥ ३ ॥

मूलार्थ—असद् आरंभमा प्रवृत्ति करे ते बाल, मध्यम आचार सेवे ते मध्यम अने तत्त्वमार्ग-परमार्थनी प्रवृत्ति करनार मार्गानुसारी जे होय ते बुधपुरुष जाणवो.

" बाल-लक्षण "

स्पष्टीकरण—अहीं ग्रंथकर्त्ता बाल, मध्यम अने बुधना लक्षणो दर्शावे छे प्रत्येक पदार्थनु ज्ञान तेना लक्षणनु भान यथार्थ ज थाय छे पहला श्लोकमा धर्मपरीक्षक वर्गना त्रण भेदो दर्शाव्या एटले तेओनु विशिष्टज्ञान करवा लक्षणो दर्शाववा ज जोइये अतएव "बालो ह्यसदारंभो" असद्-

खोटा-दुष्ट एवा आरंभो-पापो जे करे-सेवे ते बाल जाणवो. एटले जे पापोनो शास्त्रमा अनेकधा निषेध कर्यो होय, जे पापो सेववाथी उभय लोकनु अकल्याण थाय, जे कार्योमा शास्त्रे बहु पाप मान्यु होय, लोकोमा वारवार निंदा थाय, जेवा के-चोरी, महाजूठ, व्यभिचार आदि, धर्मी अने महापुरुषोनी निंदा, ज्ञानी तथा धर्माचार्यनी गर्हा विगेरे विगेरे अनेक पापाय कार्योमा जेओनु चित्त रम्या करे, निरंतर तेवा कार्यो करता जेओ पोतानी स्थिति मर्यादा, लोकनिंदा, दुर्गतिनो डर अने मद्य आज्ञानो भय गयो नहीं ते सर्व अहीं बालवर्गमा जाणवा प्रथम कह्या प्रमाणे आ वर्गमा विशेष बुद्धि न होवाथी ते लोको आगल-पाछल काइ पण विचारता नथी, तेथी ज आ लोकोनी आवी कढगी स्थिति होय छे.

" मध्यम-लक्षण "

" मध्यमबुद्धिस्तु मध्यमाचारः " मध्यम प्रकारना जे आचारो सेवे ते मध्यमबुद्धि आ वर्गमा पहेला वर्गनी अपेक्षाए विशिष्ट मति होवाथी ते लोको विशेष विचार करे छे, जनापवाद अने आत्मनिंदानो भय राखे छे. एव विशेष पापने समजता होवाथी अधिक पापमय कार्यो करता डरे छे जे कार्योमा शास्त्रे विशेष पाप दर्शाव्यु होय अने जनतानो मोटो भाग विशेष पाप मानतो होय तेवा पापाचारो जे न सेवे, जेवा के पूर्वे जे बालजीवो पापो करे छे ते सर्व पापो आ लोको सेवता नथी, तो पण शास्त्रनो बोध न होवाथी

जैमा विशेप 'आत्मकल्याण थाय तेवा कार्यो करवा चित्त करता नथी; माटे ज अत्रे मध्यम आचार सेवे तेने मध्यमबुद्धि जन देखाड्यो. निष्कर्ष ए ज के—बीजी कोटीमा जणावेल सर्व लक्षणो मध्यमबुद्धिना जाणवा

" बुद्ध–लक्षण "

त्रीजो वर्ग 'बुधजन'' नो जणाव्यो छे आ वर्ग बन्ने वर्गोथी सर्वथा भिन्न छे आ वर्गना समूहमा एवी तो कुशाग्र बुद्धि होय छे के जेथी आ लोको परापूर्वनो विचार कर्या पछी ज प्रत्येक कार्यो हाथ धरे छे अर्थात्–जेमा उभय-लोकनु कल्याण समायेलु होय, बुद्धिमान् जनता विशेप प्रशसा करे अने महात्माओ पण जेनापर पक्षपात धरावे, एवा जनप्रशसनीय अने उभयलोकहितकारी आचारो जेओ सेवे. परमार्थ के–जे लोको उपरनी टापटीप अथवा बाह्यक्रियाना खोखोथी प्रसन्न थता नथी, किन्तु शास्त्रानुसारी तत्त्वमाग अहीं केटलो छे अने ते सप्रमाण सयुक्तिक बरावर सत्य छे के नहीं, आटलु तपास्या पछी ज दरेक कार्यो करे. एव जे कार्योथी शासनशोभा वधे, धर्मवृद्धि थाय अने अन्य आत्मा-ओ पण धर्मी बने तेवा ज कार्यो जेओ कर. निष्कर्ष एज के–वीतरागदर्शित मार्गनु ज जे लोको बरावर आराधन कर, ज्ञान–दर्शन–चारित्ररूपी रत्नत्रयीनी सेवना करे, माटे ज अहीं ग्रथकर्त्ताए "बुधस्तु मार्गानुसारीय" बुध तेज जाणवो के जेनी मार्गानुसारी प्रवृत्ति होय.

उपर आपणे तपासी गया के-" बालवर्ग ते ज जाणवो के जेओ बाह्यवेश मात्र देखी खुशी थाय, नमस्कार करे अने तेमां धर्म माने " आथी ज बालवर्ग खरो धर्म पामी शकतो नथी, कारण के बाह्यवेश धर्मप्रति काइ प्रधान कारण नथी, किन्तु अप्रधान कारण मान्यो छे आथी शु बाह्यवेश ए त्याग नथी जेथी तेमा धर्मनो निषेध कर्यो ? आ शका उपजे खरी अतः आ शकाना उद्धार अर्थे ग्रन्थकार हवे समाधान बतावे छे

बाह्य लिंगमसार
तत्प्रतिबद्धा न धर्मनिष्पत्ति ।
धारयति कार्यवशतो
यस्माच्च विडम्बकोप्येतत् ॥ ४ ॥

मूलार्थ—बाह्यवेश-उपरनो आडंबर असार-तुच्छ छे हेतु ए क-बाह्यवेशना साथे काइ धर्मसिद्धि प्रतिबद्ध नथी, कारण के अमुक कार्य एटले-काइक स्वार्थनी सिद्धि माटे विडंबक लोको अने नाटकियाओ पण आ बाह्यवेश धारण करे छे.

" बाह्यवेशनी तुच्छताना कारणो "

स्पष्टीकरण—बाह्यवेश ए शु त्याग नथी ? बाह्यवेश धर्ममा अप्रधान कारण शा माटे ? आ शकाओनो उद्धार आ प्रमाणे जाणवो-बाह्य एटले जेने जनता पोतानी दृष्टिये

देखी शके, तुरतज जाणी शके एवो जे वेश–कपडानो आडंबर-उपरनी टापटीप. जेमके जैन मुनियोनो पोतवस्त्र, रजोहरण, मुहपत्ति आदि; यतियोनो श्वेतवस्त्र, रजोहरण आदि, सन्यासीओनो गेरु कपडा, चाखडी, दंड, कमंडल आदि; बावाओनो भभूत, लंगोट, टिलाटपका, चिपियो आदि, फकीरनी कफनि, माला आदि, आ सर्व ते ते लोकोनो बाह्यवेश जाणवो कारण के आथी सामान्य जनता पण विना पूछ्ये जाणी शके छे के–आ कोइ साधु या फकिर छे पण अहीं तत्त्वदृष्टिए तेमां खास धर्म होय एवो नियम नथी, कारण के धर्म साथे बाह्यवेश ऐकान्तिक संबंध धरावतो नथी परमार्थ के–ज्यां बाह्यवेश होय त्यां धर्म होय, अने बाह्यवेश न होय त्यां धर्म न होय, एवो बाह्यवेश तथा धर्मनो एकान्तव्याप्ति संबंध नथी निदान के–भ्रष्टाचारियो, पासत्थाओ, वेशविडंबको अने नाटकीपात्रो तथा यतियो पण आ बाह्यवेष धारण करे छे तदपि त्यां धर्म देखातो नथी. फरी केटलाक महानुभावो उच्च आदर्शपुरुषो बाह्यवेष विना पण धर्मिष्ट देखाय छे, अतएव अत्रे ग्रंथकर्त्ताए "बाह्य-लिंगमसार" बाह्यलिंग–वेशने असार–तुच्छ कह्यो परमार्थ के–बाह्यवेश ए खास धर्मप्राप्तिमां हेतुभूत ज छे एवो अखंडय नियम नथी, तेम वेषविडंबको पण तेनो दुरुपयोग करता नजरे देखाय छे. आ बे कारणोथी अहीं वेशने आचार्यश्रीये तुच्छ गण्यो, परंतु ए तो निश्चित छे के–बाह्यवेश धर्मसंस्थापक, मर्यादाबंधक, लज्जावर्धक तो अवश्य छे ज, ।१९ प

धर्मप्रापक जणाय छे खरो, छतां अहीं जे निषेध जणाव्यो छे तेनो भावार्थ एटलो ज के धर्मप्रति खास एकान्त, अबाध्य, अनन्तर कारण बाह्यवेश नथी, तेमज परंपराए पण कारणभूत शिथिल आत्माओने ज थाय छे, अन्यने नहीं ज आ परथी बाह्यवेश उपेक्षणीय छे एम निश्चित समजवानुं नथी, कारण के शास्त्रमां मुख्यतः ते सिवाय मुक्तिनो पण निषेध कर्यो छे, तथा वेशरहित भावचारित्री पण अवन्दनीय दर्शाव्यो छे अतः व्यवहारथी ते सर्वथा स्वीकार्य छे, परंतु अत्रे तो तत्त्वदृष्टिनो ज विचार कर्यो होवाथी दर्शाव्यो छे, अत' बाह्यवेशने असार–तुच्छ कह्यो, परमार्थमां तो एकान्त अखण्ड सत्य होय तेनुं जे प्रतिपादन करवुं तेज न्याय गणाय ॥

व्यवहारमां बाह्यवेश धर्मप्राप्ति प्रति प्रधान कारण मनाय छे, के बाह्यवेश त्यागनुं भान करावे छे, जेथी आ कोई साधुपुरुष छे, एवी लोकोने प्रतीति अने ते द्वारा धर्मप्राप्ति लोकोने थाय छे. आटलुं छतां अहीं वेशने असार" तुच्छ शा माटे आचार्ये कह्यो ? आ सचोट दलीलनुं समाधान ग्रंथकार आ रीते करे छे –

बाह्यग्रन्थत्यागात्र चारु,
न त्वत्र तादितरस्यापि ॥
कञ्चुकमात्र त्यागान्न हि,
भुजगो निर्विषो भवति ॥ ५ ॥

मूलार्थ—बाह्य परिग्रहनो त्याग करवाथी काइ मनोहर त्याग कहेवाय नहीं, कारण के आवो त्याग तो जानवरोने अथवा वेशधारीओने पण होय छे, पण त्या धर्म देखातो नथी, साप कांचळी मात्रने छोडी देवाथी काइ निर्विष बनतो नथी॥

बाह्य त्याग ते अत्याग सापनु दृष्टात

स्पष्टीकरण—ग्रथ एटले परिग्रह आ परिग्रह बाह्य अने आभ्यतर एम वे प्रकारनो कहवाय छे धन, धान्य, कुटुंब, घर विगेरे बाह्य, तथा लोभ, मोह, प्रेम, आसक्ति, तृष्णा विगेरे आभ्यतर परिग्रह जाणवो आचार्यश्री कहे छे के–आ धन, कुटुंब, घर आदिनो बाह्य परिग्रह केवल छोडवाथी–त्यागवाथी काइ धर्मीपणु आत्माने प्राप्त थतु नथी, कारण के आ रीते बाह्य त्याग करवा छता आभ्यतर त्याग तो न ज होय, किन्तु दुष्ट अनेक वासनाओ, पुद्गलभावनो अद्भूत मोह, मान, पूजा, प्रतिष्ठा अने कीर्तिनो लोभ, अनिष्ट तथा अप्रीतिवर्द्धक पदार्थनो द्वेष, विषयोनी आसक्ति एव तृष्णा यथावत् बनी रही होय तो ते त्याग ज न कहेवाय; परतु ते मोह ज छे–उपरनो आडबर ज कहेवाय–लोकरंजन बाह्याचार ज कहेवाय, आथी ज अहीं धर्मीपणानी गधमात्रा पण नथी होती, किन्तु आवो त्याग तो केवल पापप्रकृतिना उदयनु फल जाणवु जन्मातरमा भ्रमण करावनार कर्मबधक आ त्याग जाणवो, एव आवा त्यागथी जो त्यागीपणु–सत्य साधुपणु सुलभ होय, धर्मीपणु आत्माने मळतु होय, तो श्वान आदि अने पूर्वे मलघ्ये पण

आवो त्याग घारे अतर त्यागे छे, छता तेमा धर्मनो गध सासात देखातो नथी, एटले नितान्त बाह्यत्याग ए मनोहर त्याग न ज कहेवाय आचार्यश्री ए ज वातने उत्तरार्द्धथी सचोट दृष्टान्त आपी सिद्ध करे छे व्यवहारमा आ वात प्रसिद्ध छे के-सर्प पोताना उपरनी काचली उतारी नाखे छे, परतु एतावन्‌ मात्रथी साप लेश पण विषरहित बनतो नथी किन्तु विषधारीज रहे छे. एव आभ्यतर त्याग विना बाह्यत्यागी साचो त्यागी, सत्य साधु कहेवाय नहीं-धर्मी कहेवाय नहीं निदान ए के-लोकोने जे त्यागनु मान, आ त्यागी पुरुष छे एवी बुद्धि बाह्यवेशथी उपजे छे, ते केवल लोकोनो त्याग प्रतिनो अद्‌भुत प्रेम साधुओ प्रति पोतानो साचो पक्षपात, अने साधुओ त्यागी छे एवी पोतानी दृढ मान्यताने लीधे ज अथवा लोकोनी भद्र-प्रकृति, कारण के-लोको धर्म पण तुरत ज पामे छे, अने बाह्य त्यागीमा ज्यारे गोटाळो देखे छे त्यारे अधर्म पण तेथी अधिक पामे छे, आथी बालवर्गने जे बाह्यवेशथी धर्म प्राप्त थाय एटला मात्रथी ते धर्म्य छे, प्रधान छे, एम न कही शकाय निष्कर्ष ए के-आभ्यतर त्यागपूर्वक बाह्य वेश ज धर्मप्राप्तिमा मुख्य कारण बने छे एम जाणवु। केवळ बाह्य वेश तो अप्रधान ज कह्यो छे.

फरी एज वातने आचार्यश्री अन्य मतना प्रमाणथी पुष्ट करी अधिक सिद्ध कर छे—

मिथ्याचारफलमिद

इत्यपरैरपि गीतमशुभभावस्य ।

सूत्रेऽप्यविकलमेतत्प्रोक्त-
ममेध्योत्करस्यापि ॥ ६ ॥

मूलार्थ—अपर-अन्यदर्शनीयोए पण निश्चयपूर्वक अशुभभाव विशिष्ट एवा बाह्यत्यागनुं फल मिथ्याचार-कपट-फल कह्युं छे, अने जैन सिद्धांतमां पण आवा त्यागने अविकलपणे विष्टाना उकरडा जेवो कह्यो छे

बाह्यत्यागनुं फल

स्पष्टीकरण—अपर-जैन सिवायना दर्शनवालाओ अर्थात् पातंजल विगेरे आभ्यंतरत्याग विनाना बाह्यत्यागने अशुभ-भाव रहे छे अर्थात्-केवल बाह्यत्याग ते ज कहेवाय के जेना अंतरमां अनेक मलीन वासनाओ, दुष्ट संकल्पो, विषयोनी तृष्णा आदि भर्यां होय, अतएव आ त्यागने अशुभ, अपवित्र त्याग अहीं कह्यो, अने आवा त्यागनुं फल ते लोको स्पष्टतया-निश्चयेन मिथ्याचार-कपटीत्याग दांभिक फल दर्शावे छे, जेम कोई नट लोकोने रंजन करवा, मोह उत्पन्न करवा अल्पकाल माटे मुनिवेश धारण करे छे, पण नाटकना अंते ए वेश उतारी नाखे छे, परंतु अंतरमां तत्त्वथी लेश पण भाव के त्याग होतो नथी, जेथी आ त्याग नाटकियो-त्याग दांभिकत्याग कहेवाय छे एवं अत्रे पण उपरोक्त त्यागने नाटकीयो त्याग कह्यो छे आ त्यागनुं फल मिथ्याचाररूपी फल सिवाय अन्य फल मलतुं नथी वधुमां शास्त्रकर्ताओए आवा त्यागने तो केवल महापापना उदय तरिके जणाव्युं छे.

" मिथ्याचार "

मिथ्याचारनु स्वरूप आ प्रमाणे छे-" **बाह्येंद्रियाणि सयम्य, य आस्ते मनसा स्मरन् । इंद्रियार्थं विमूढात्मा, मिथ्याचार स उच्यते** " ॥१॥ "बाह्य इन्द्रियोनो सयम करी जे मूढात्मा इन्द्रियोना विषयोनु मनथी ध्यान करतो सयममा-त्यागमा रहे ते मिथ्याचार कहेवाय " टुकमा जेओ साधुपणु बाह्यथी धारण करी भ्रष्टाचारो सेवे, लोकोने ठगे, लोक रजनार्थे अनेक कष्टो वेठे, विषयवासनाओने पुष्ट करे, शरीरादिकनी पुष्टि माटे अनेक उपचारो करे, ए सर्वनो त्याग दाभिकत्याग, तिरस्करणीय धिक्कारवा योग्य त्याग जाणवो आवा त्यागमा रहेवा करता ते त्याग छोडी उत्तम ग्रहस्थधर्म स्वीकारी व्यापारादि कर्मोथी आजीविका करवी ते हितावह कहेवाय अत्रे टीकाकार भार दइ आवा वेश माटे सखत फटको मारे छे रोग तथा उपभोग रहित पुरुषे पडितोमा निंदाकारी तथा क्लिष्ट एवी आजीविका केवळ पेट भरवा खातर ज अथवा मानपूजाना लोलुपीपणाथी आभ्यतरत्याग विना खाली बाह्य-वेश धारण करवो ते पूर्वे जन्मना उपार्जित अशुभकर्मनु विपाक फल-कटुकफल जाणवु निदान के-पूर्वना पापकर्मना उदयथी आवो त्याग उदयमा आवे, धारण कराय, वर्तमान समयमा आ वात बहु विचारवा जेवी छे ग्रथकर्त्ता आटलु कही जणावे छे के अन्यदर्शनमा ज नहीं, किन्तु जैन सिद्धान्तमा पण आवा त्याग माटे बहु बहु कडक रीते कह्यु छे **अणतसो दव्वलिंगाइ**

" उकरडो अने त्याग "

विगेरे गाथाओवडे गुणशून्य त्याग मलमूत्र नाखवाना उकरडा जेवो जाणवो. जेम उकरडो मळमूत्रथी व्याप्त होवाथी लोको तेना प्रति तिरस्कारभावथी देखे छे, एव उपरोक्त त्याग पण गुणशून्य नहीं, किन्तु अनेक मलिन वासना, विषयतृष्णा-मान, पूजा प्रतिष्ठा, लोभरप, मळमूत्र भरेल होवाथी उकरडो छे उकरडामा दुर्गंध ज होय तेम अहीं पण दुर्गुणरूप दुर्गन्धनी मात्राओज देखाय छे. मधुमा सज्जनो उकरडा तरफ तिरस्कार भावथी नथी देखता पण तेने अमुक अशे सादरभावथी पण देखे छे. ज्यारे आ त्यागरूप उकरडा तरफ तो सज्जनो शु पण महात्माओ पण तिरस्कार्य नजरथी देखे छे तेनो छाया लेवानो पण निषेध करे छे, एटले विष्टाना उकरडा करतां आ त्याग तो सर्वांशे उपेक्षणीय छे, दूरथी सो सो गजना नमस्कार करवा योग्य छे. परमार्थ के-आवो त्याग देखी तेना पर पूज्यभाव धारण करवो ते पण महापापकारी समजवु ज्यारे बालवर्ग आवा त्यागने पण धर्मबुद्धिए निहाळे छे, वदन, पूजन, नमस्कार करे छे, माटे ज अहीं आ वर्गने कनिष्ठकोटि-नो विद्वानो माने छे. ॥

प्रथम कह्यु हतु के—"बालवर्ग" करता मध्यमबुद्धि वर्ग चडतो छे, कारण के आ लोको खाली वेशथी ज खुशी नथी थता किन्तु वर्तन आदि तपासे छे एटले हवे अहीं मुनियोनु वर्तन कोने कहेवु ? अने ते वर्तन केवु होय ?. ए वात-

जाणवानी रही माटे ग्रथकर्ता ए वातनो स्पष्ट खुलासो करे छे.—

> वृत्त चारित्र खल्वसदारं-
> भविनिवृत्तिमत्तच्च ॥
> सदनुष्ठान प्रोक्त
> कार्ये हेतूपचारेण ॥ ७ ॥

मूलार्थ—असद्-अशुभ पापकारी आरभोना त्यागरूप-अभावरूप जे क्रिया ते चारित्र, आनु नाम ज सद्वर्तन जाणवु. आ वर्तनने कार्यमा कारणनो उपचार-आरोप करी शास्त्रमा सदनुष्ठान कह्यु छे "

"सत्य चारित्र अने तेनी व्याख्या"

स्पष्टीकरण—वृत्त-वर्तन वृत्त एटले वर्तन-वर्त्ताव, आचार, आनु नाम चारित्र-सत्यत्याग आ सर्व शब्दो एक ज भावने ध्वनित करे छे एटले एकार्थ प्रतिपादक शब्दो जाणवा. परमार्थ ए के-विधि अने प्रतिषेध बन्ने जेमा होय ते चारित्र जेमके टीकाकार कहे छे-हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन, मूर्च्छा ए पाच पर्म आस्रवना द्वारो-आश्रवो छे आ पाचेनो जेमा सर्वथी निषेध होय तथा अहिंसा, जूठनिवृत्ति, अदत्तत्याग आदिनु विधान जेमा एकान्तत अग्राह्यु होय, मूलमा 'खलु' ए वाक्य अवधारणार्थे-निश्चयार्थे आपेल होवाथी, आवा प्रकारना वर्तनने ज चारित्र दर्शाव्युं छे निदान के-विधि तथा

प्रतिषेध विनानुं अथवा उभयकोटी पैकी एक ज विधि या प्रतिषेधकोटीवालुं चारित्र न कहेवाय, कारण के-निगोदवर्त्ती जीवो हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन विगेरे काइ करता नथी एटले तेओ शुं चारित्री कहेवाय खरा? नहीं ज एव पाषाण अगर लाकडामा अहिंसक, जूठरहित विगेरे भावो स्पष्टतया मालुम पडे छे, अथवा मूर्च्छित मनुष्यमा आ चिन्हो मालूम पडे छे तो शु ते पदार्थो चारित्री कहवाय? नहीं ज. आ हेतुथी विधि-प्रतिषेधरूप ज चारित्र अत्रे अपेक्षित छे एम 'खलु' ए वाक्यथी जणाव्युं आनो मथितार्थ मूलकर्त्ता जणावे छे के-'असदारम्भविनिवृत्तिमत्तच' असद्-बूरा-खोटा एवा जे आरंभो के जेनाथी भवनो प्रपंच वधे, अनंतकर्मोनो बंध थाय, आत्मा जन्म-मरणना फेरामां भटके, छकायनो वध सर्वो रवो जेमा होय, तेनो त्याग-निषेध जे वर्तनमा होय ते अहीं चारित्र जाणवुं, आवा चारित्रने शास्त्रकर्त्ताओ सदनुष्ठान कहे छे

"सदनुष्ठाननुं लक्षण"

शास्त्रमा आत्मीय विशिष्ट त्यागरूप परिणामनुं नाम चारित्र कह्यु छे ने बाह्यक्रियारूप सद्वर्तननुं नाम सदनुष्ठान जणाव्युं छे. आ रीते चारित्र तथा सदनुष्ठाननो भेद सुज्ञो दर्शाव्यो छे, छता अहीं चारित्रने ज ग्रंथकर्त्ता सदनुष्ठान जणावे छे. तेनो खुलासो करवा श्रीमान् हरिभद्रसूरिजी कहे छे के-"कार्ये हेतूपचारेण" प्रथम आत्मीय विशिष्ट परिणामरूप आभ्यतर चारित्र-लोभ तृष्णा आदिनो त्याग करवारूप भाव

प्रकट थाय अने त्यारपछी तेना फलरूपे बाह्यक्रिया–सद्वर्तन विशिष्ट आचारोनो जन्म थाय छे एटले चारित्र ते कारण अने सदनुष्ठान तेनु फल कार्यरूप छे, माटे अहीं कार्यमा कारणनो उपचार आरोप करी चारित्रने ज–आभ्यतरत्यागने ज सदनुष्ठान कह्यु निदान के—सुदर सदनुष्ठान आभ्यतरत्यागपरिणति विना मली शके नही. आ रीते सुदर सदनुष्ठान ते ज जाणवु के–जे परमार्थ–चारित्र–सत्यचारित्र होय अहीं वर्तन बाह्यक्रियारूपी चारित्रनी परीक्षा करवा मध्यमबुद्धिजनो प्रवृत्ति करे छे माटे तेओने बालवर्ग करता चडती कोटीना कह्या आठलु विशेष जाणवु.

हवे उपरोक्त सदनुष्ठान तो शुद्ध तथा अशुद्ध एम बे प्रकारनु छे अतएव आ बन्ने प्रकारनु सदनुष्ठान ग्रथकर्ता जणावे छे

परिशुद्धमिद नियमादांत–
रपरिणामत. शुपरिशुद्धात् ॥
अन्यदतोऽन्यस्मादपि
बुधविज्ञेय त्वचारुतया ॥ ८ ॥

मूलार्थ—सुविशुद्ध–अतिनिर्मल एवा आत्मीय परिणामपूर्वक जे सदनुष्ठान प्रगटे ते सर्वतो शुद्ध चारित्र जाणवु, अने ए सिवाय अन्य कारणोथी जे बाह्य अनुष्ठान प्राप्त थाय

ते अशुद्धचारित्र. अहीं शुद्ध तथा अशुद्धपणानी परीक्षा पंडितजनो ज करी शके. ॥

"सदनुष्ठानना भेदो"

स्पष्टीकरण—अनुष्ठान एटले बाह्यवर्तन, आ वात उपर जणावी गया. आ अनुष्ठान बे प्रकारनुं कह्युं छे चारित्रमोहनीयकर्मना क्षयथी अथवा उपशम थवाथी आत्मानी विशिष्ट त्याग तरफ जे अभिरुचि प्रगटे, आत्मा पौद्गलिक भावो प्रति वैषयिक सुखो तरफ अने संसारना मोहक पदार्थो प्रति, उदासीन भावथी, कर्मवर्धकभावथी, हेयपणे समजी तेनी लालसा रहित बने, एवं शास्त्रनिर्दिष्ट आज्ञानुसार जे क्रियाओनुं सेवन, पालन करे, टुंकमा ज्ञानविशिष्ट वैराग्यवडे जे चारित्र प्राप्त थाय आने ज शास्त्रकर्ताओ सदनुष्ठान कहे छे. मूलमा 'नियमात्' ए पद छे, एटले निश्चयथी आ ज सदनुष्ठान शुद्ध कहेवाय निदान के-जे चारित्रमां ज्ञानविशिष्ट वैराग्य होय ते चारित्र शुद्ध अने वंदनीय जाणवुं, सिवाय पूजावा मनावा खातर अथवा स्वर्गसुख, राज्यलोभ, धनलोभ, यशःकीर्ति माटे जे त्याग स्वीकाराय ते अशुद्ध अनुष्ठान कह्युं छे. यद्यपि बन्ने अनुष्ठानो बाह्यदृष्टिए तुल्य मालुम पडे छे तदपि एक त्याग शुद्ध आत्माभिमुख—मोक्षाभिमुख होवाथी अंतरंग पवित्र विचारोथी नितान्त बाह्याभ्यंतर बन्ने रीते शुद्ध छे अने बीजो त्याग मलीन वासनाओथी वासित होइ सर्वथा अशुद्ध छे एटले पहेलो त्याग ज्ञानविशिष्ट वैराग्यनुं फलरूप छे, ज्यारे बीजो

त्याग दुःख या मोहगर्भित वैराग्यनु फलरूप छे पण व्यवहार-
मां आ बन्ने त्याग सरिखा देखाय छे.

" बुधज्ञेयता "

सामान्य मनुष्य आमां काइ पण भेद देखतो नथी तो पण बनावटी अने कुदरती हीरानी परीक्षा झवेरी तुरतज करी ले छे. तेम बुधजनो आ बन्ने त्यागमांथी शुद्ध त्याग तथा अशुद्ध त्यागनी परीक्षा त्यागीमां रहेला केटलाक क्रियारुचि, क्रियाकुशलता, पापपरिहार, यतनाप्राधान्यता, सत्यपरूपणता, मदान्तभाव, अल्पमोह आदि विशिष्ट चिन्हो द्वाराए शीघ्र करी शके छे, माटे ज अहीं मूलमां कह्यु के-' बुधविज्ञेय ' अर्थात् बुध सिवाय आ परीक्षा मध्यमवर्ग के बालवर्ग न करी शके कारण के ते लोकोमां एटली विवेचक शक्तिनो अभाव होय छे, ए वात पहेलां ज ग्रंथकर्ताए स्पष्ट करी छे ॥"

बुधजनो शुद्ध अशुद्ध त्यागनी परीक्षा कया लक्षणोथी करे छे ए जाणवु जोइये आनो खुलासो भगवान् हरिभद्र-सूरिजी अहीं आ रीते दर्शावे छे-

गुरुदोषारम्भितया तेष्वकरण-
यत्नतो निपुणधीभिः ॥
सन्निदादेश्च तथा
ज्ञायते एतन्नियोगेन ॥९॥

मूलार्थ—चारित्रनो नाश थाय तेवा गुरुदोषो–म्होटा पापोनुं सेवन करे, आरंभ करे, अने न्हाना पापोनो बचाव करे तेनी यतना पाळे, तथा उत्तम पुरुषो, सज्जनोनी निंदा करे विगेरे लक्षणोथी निपुणबुद्धि–बुधजनो शुद्ध अने अशुद्ध त्यागनी परिक्षा करी शके छे ॥

" दाम्भिक त्यागनी परीक्षाना साधनो "

स्पष्टीकरण–शुद्ध अशुद्ध त्यागनी परीक्षा त्यागीओना विशिष्ट वर्त्तनथी ज थइ शके ए बात उपर जणावी गया छे फरी आ वातने ज हरिभद्रसूरिजी अहीं स्पष्ट करे छे. जेओ त्यागीपणानु अभिमान अने तेनो वेशधारण करी त्यागीपणानो म्होटो ढोल घाली लाबी लाबी वैराग्यनी वातो करी, हजारोने आत्मकल्याणनो उपदेश आपी, ससारनी असारता, लक्ष्मीनी चपलता, विषयोनी दुरतता विगेरे जणावी, पोते ज शासनना उड्डाह थाय, अधर्मनी वृद्धि थाय एवा प्रकारना अने चारित्रनो जडमूलमांथी ज नाश थाय, चरणसित्तरि अने करणसित्तरिनो सर्वथा लोप थाय, महाव्रतनो गंध पण न रहे तेवा गुरुदोषो–म्होटा दोषोनु सेवन करे जेवा के—स्त्रीसंग, छोकराओ आदि साथे दुनिया विरुद्ध कर्म, हस्तकर्म विगेरे पापकर्मो, शिष्यादि वधारवा अनेकधा मायावादो, छळ, प्रपंचो खेलवा, पुस्तकादिना निमित्तथी गुप्तरीते हजारो रुपीयानो संग्रह अने बीजा हाथे व्याज विगेर उपजाववु, शरीरनी पुष्टि माटे रोगादिकनु निमित्त निकाली

अनेक पौष्टिक दवाओ, पाको तथा रसवतीयो तैयार कराववी, यदि आ सर्वे दोषो प्रगट थवानो समय आवे तो नितान्त जूठ अने बीजानी जींदगी माटी भेगी करवा दुनियाथी उतारी पाडवा अनेक खोटा प्रपंचो करवा चूके नहीं भंडारोमाथी वाच वाना शोधवा लिख करवाना व्हाने पुस्तकोनी चोरी करवी विगेरे अनेक म्होटा पापो सेवन करे, रात्रिविहार, वाहन आदि साथे राखी विहार करवो, स्वार्थनो उपदेश आपवो, विरुद्ध उपदेश आपवो, स्वाग्रहने पुष्ट करवानो प्रयत्न करवो, तथा लोक समूहमा प्रशंसा करावना न्हाना न्हाना दोषोनो बचाव करे, तेनु प्रायश्चित्त ले, लोको समक्ष पश्चात्ताप, गर्हा, निंदा करे. जेवा के—रजोहरणनी आड, मुहपत्तिनी आड, स्त्रीसंघट्टो विगेरे एटले खाळे डुचा मारे अने दरवाजा खुल्ला राखे तेना जेवु करे, टुकमा लोकोमा महात्मापणु केम जणावाय तेवो प्रयत्न करे

एव पोतानामा तेवा विशेष गुणोनो अभाव छता गुणवान् त्यागी महात्माओ तपस्वीओ, उच्चगुणी श्रावको अने सज्जनोनी वारवार अन्य न जाणे तेम वाक्‌पाटवतायी निंदा करे, तेओने उतारी पाडवा तेओना एक सामान्य सरसव जेटला दोषने मेरु जेटलो बनावी लोको समक्ष अनेकधा टीकाओ करे, वारवार तिरस्कार करे, पोताना दोष सामे तो देखे ज नहीं, टुकमा आ लक्षणो गुप्त रीते जेमा होय के जे लक्षणो उपलक दृष्टिथे अन्यने न देखाय

माटे ज अहीं ग्रंथकर्त्ता जणावे छे के–अने शुद्ध अशुद्ध त्यागनी परीक्षा " निपुणधीभिः " कुशाग्रबुद्धिवानो सत्यतत्त्वना परीक्षको ज करी शके निदान के–त्यागनी परीक्षा करवा इच्छके उपर कथित सर्व वात ध्यानमा राखवी, अने तदनुसार परीक्षा करी उच्च त्याग प्रति पूज्यभाव धारण करवो, केवल विद्वत्ता, व्याख्यानकौशलता के प्रसिद्धनामाकिनता देखी अपलावयु ते भविष्यमा नितान्त स्वात्माने धर्मभ्रष्ट करवानो ज उपाय छे.

बस ए रीते बालवर्ग तथा मध्यमबुद्धि जनो शेमा धर्म माने छे ? अने ते केटला अशे अनुचित छे ? ए विषय पर विस्तारथी शंका अने प्रत्युत्तर करी विचार कर्यो. हवे बुध जनो आगमतत्त्वनी परीक्षा करी धर्म प्राप्त करे छे ए वात आचार्य श्री प्रथम कही गया हता, तो आगमतत्त्व कयु ? अने तेनी परीक्षा शी रीते करवी ? तेनो विचार ग्रंथकर्त्ता जणावे छे सर्वमा आ विषय सूक्ष्म होवाथी अने ते ज परिणामे स्वीकार्य तथा हितावह होवाथी, तेनो विचार ग्रंथकर्त्ता बहु सदा उतरां जणावे छे.

आगमतत्त्वं ज्ञेयं,
तद्दृष्टेष्टाविरुद्धवाक्यतया ।
उत्सर्गादिसमन्वित–
मलमैदपर्यशुद्धं च ॥ १० ॥

मूलार्थ—जे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोथी अने इष्ट एटले आगमना पोताना ज वचनोवडे अविरुद्ध होय, एवं उत्सर्ग तथा अपवाद युक्त होय, तथा ऐदपर्य–परमार्थवडे शुद्ध होय ते ज खरु आगमतत्त्व जाणवु

स्पष्टीकरण—आगमतत्त्वनी कसोटी करवा अहीं हरिभद्र-सूरिजी खरो मार्ग दर्शावे छे प्रस्तुत श्लोकमा हरिभद्रसूरिजी आगमतत्त्वनी परीक्षा माटे त्रण प्रकारो जणावी उत्तरना बे श्लोकथी तेनु विवेचन करे छे. अहीं आगमतत्त्वनी परीक्षाना मुख्य त्रण विभागो कह्या छे आ त्रण विभागो आ रीते जाणवा–जे आगमतत्त्व दृष्ट अने इष्ट बन्ने रीते अविरुद्ध वाक्य होय १, उत्सर्ग अने अपवादयुक्त होय २, तथा ऐदपर्यवडे परिशुद्ध होय ३.

दृष्ट, एटले प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणो, अने इष्ट एटले आगम आ बन्नेनी कसोटीमा जे आगमोक्त तत्त्व अविरुद्ध होय, एकवाक्य होय परमार्थ ए के–आगममा आत्मा, कर्म, बंध, मोक्ष विगेरे पदार्थो कह्या छे आ पदार्थोनी प्रथम प्रत्यक्षादि प्रमाणद्वारा परीक्षा करवी, यदि ते परीक्षामा जो ते ते पदार्थो बराबर सिद्ध थाय, अविरुद्ध मालुम पडे तो ज ते तत्त्व सयुक्तिक कहेवाय आ वात समजवाने आपणे दाखला तरीके आत्मानो ज सामान्य विचार करीये. शास्त्रमा "अत्थि मे आया उववाइए " " एगे आया " मारो आत्मा उत्पत्ति धर्मवान् छे. " इत्यादि कह्युं छे. आत्मा–एटले चैतन्य

जीवनामक पदार्थ अने ते शरीरथी भिन्न तथा उत्पत्ति–विनाश रूप पर्याय–धर्मवान् छे, खाणमा रहेल माटी हमेशा कायम ज छे, परतु जेम कुमार आदिना हाथमा आव्या पछी तेना विविध घट आदि आकारो–पर्यायो बने छे, अने जूना जूना पर्यायो–धर्मनो नाश थतो प्रत्यक्ष देखाय छे परमार्थ के–माटी ज्यारे घटपणे परिणमे त्यारे घटाकाररूप पर्याय उत्पन्न थयो अने माटीरूप पर्याय ते समये न ओळखावाथी तेनो नाश थयो एव माटीरूप द्रव्य घटमा कायम ज छे. तथाप्रकारे आत्मा पण जानवर, मनुष्य, देवता, नारकीरूप गतियोमा प्रत्यक्ष देखाय छे, कारण के–आत्मा सिवाय जगतनो सर्वव्यवहार लुप्तप्रायः थइ जाय, धर्म या पापकर्म पण निष्फल मानवा पडे, अत एव ज्ञानादि गुणवान् विलक्षण शक्तिवालो कोइ आत्मा नामक पदार्थ छे एम मानवु जोइये. आ आत्मा यद्यपि अछेद्य, अभेद्य, अदाह्य, अजर, अमर, अविनाशी, धर्मवान् छे, तो पण माटीनी माफक नवा नवा रूपपणे परिणमे अने पूरातनरूपपणे तेनो अभाव थतो अनुभवाय छे जानवरपणु छोडी मनुष्यपणु, मनुष्यपणु छोडी देवपणु, देवपणु छोडी जानवरपणु एव नारकीपणु आ रीते आत्मा नवा नवा पर्यायो–धर्मो अनुभवतो तथा जूना जूना धर्मोनो त्याग करतो प्रत्यक्ष अनुभवपथमा आवे छे, अने प्रत्येक अवस्थामा आत्मा पोते शाश्वत ज देखाय छे, कारण के पूर्वावस्थामा अनुभवेल, सेवेल, करेल, दरेक कार्यो उत्तर अवस्थामा स्मृतिपथमा आवता तथा भोगवाता मालूम पडे छे.

अन्यथा जेम देवदत्ते करेल कार्यो अने कर्मो यज्ञदत्तने स्मरण-
मा तथा भोगमा आवता नथी, तेम पूर्वावस्थामा करेल कार्यो-
नु स्मरण तथा कर्मोनो भोग उत्तरावस्थामा आत्माने बाल
अवस्थामा करेल कार्योना स्मरणनी माफक समजे ज नहीं.
अतएव आत्मा उत्पत्ति आदि विशिष्ट धर्मवान् छे ए शास्त्रोक
तत्त्व प्रमाणथी अविरुद्ध सिद्ध थाय छे. एव आत्मा प्रत्येक
शरीरभेदे भिन्न भिन्न छे तो पण आत्मरूप स्वरूपनी अपेक्षाए
सर्व आत्माओ तुल्यरूप छे अर्थात् मनुष्य, देव आदिमा जेवु
आत्मतत्त्व छे तेवु ज आत्मतत्त्व एक कीडामा अने हाथीना
शरीरमा पण छे हा मात्र मनुष्यमा केटलीक विशेष आत्म-
शक्तियो आविर्भूत छे, उत्तरोत्तर विकास थतो देखाय छे,
ज्यारे देवोमा एथी पण अधिक आत्मशक्तियो विकसित होय
छे अने कीडाओमा ए सर्व शक्तियो कर्मोना जोरे तिरोभावरूपे
रहेल होय छे, निदान के-प्रकार बुद्धिवान् सर्व विद्यासंपन्न
कोई मनुष्य वेदना या मदिराथी मूर्च्छित थया पछी तेनी सर्व
शक्तिओ विद्यमान छता तिरोभावरूप थइ गयेल आपणे अनु-
भवीये छीए, एव कीडा जेवी अधम योनि प्रविष्ट आत्मानी
सर्व शक्तियो अधमयोनि तथा अघारकर्मोना कारणे दबायेल
ज छे एम मानवु जोइये, नहीं के तेओमा आत्मा नथी अथवा
शक्तियोनो अभाव छे निष्कर्ष ए के-आत्मस्वरूपेण सर्वात्मा-
ओ तुल्य स्वरूपवान् होवाथी सामान्यरूपे एक ज छे, ने विशेष
रूपेण अनंत आत्माओ छे. निदान के-ए रीते आत्मा प्रत्यक्ष

आदि प्रमाणथी जेम अविरुद्ध स्वरूपवान् अनुभवाय छे, तेम इष्ट एटले आगमना पूर्वापरना वाक्योथी पण अविरुद्ध स्वरूपवान् ज सिद्ध करेल छे, परतु आगमना एक देशमा आत्मा माटे अन्यथा प्ररूप्यु होय, अने अन्य स्थलमा तेथी विरुद्ध कह्यु होय तेम न होय हा जैनदर्शनमा निश्चय अने व्यवहार, बाह्य अने आभ्यतर, द्रव्य अने भाव, पर्याय अने गुण विगेरे स्वरूप प्ररूपणा करती वखते भिन्न भिन्न स्वरूप दर्शाव्यु छे खरु, परतु ए सर्व स्वरूप कथनमूल आत्मस्वरूपनो बाधकर्त्ता न होवाथी किन्तु पुष्टिकारक ज होवाथी तेनु नाम विरुद्धकथन न कहेवाय, उलटु ए तो सत्य तत्त्वकथन, सर्वज्ञकथित तत्त्वपणानी ज सिद्धि कर छे अहीं आगम-परीक्षामा विद्वानोए एटलु ज तपासवानु छे के-एक ज वस्तुतत्त्वनु कथन एक स्थलमा भिन्न होय अने अन्यत्र ते ज वस्तु भिन्नरूपे कही होय आनु नाम विद्वानो विरुद्ध वाक्यता कहे छे दृष्टान्त तरीके एक स्थानमा "अस्ति आत्मा" एवु कह्यु, अने फरी अन्यत्र "नास्ति आत्मा" एम कह्यु होय आमा सत्य शु समजवु? अथवा जेम वेदमा कह्यु छे के-"मा हिंस्यात् सर्वभूतानि" "सर्व जीवोनी हिंसा न करवी" आम कह्या पछी फरी ते लोको कहे छे के-"षट् शतानि नियुज्येत, पशूनां मध्यमेऽहनि" म यमेध नामना यज्ञमा छ सो पशुओनो होम करवो" जे हिंसा पापकारी-बधकारी मानी तेनो सर्वांशे निषेध कर्यो, ते ज हिंसाने पुनः धर्म्य मानी, स्वर्गदात्री मानी विधेय मानवी ए शु विरुद्ध न कहेवाय ?

फरी जे आगमतत्त्व उत्सर्ग तथा अपवाद युक्त होय एटले दरेक वस्तुतत्त्व सामान्य पणे विधेय अने परिहार्य दर्शावी पुनः विशिष्ट कार्यनी अपवाद विधेयतया दर्शावी होय, जिदान के-विशेषवादना स्थल पर विशेषवादनी अने सामान्यवाद स्थल मा सामान्य कथन बराबर थयु होय, किन्तु विशेष स्थानमा सामान्य कथन अने सामान्य स्थलमा विशेष कथन थयु न होय. परमार्थ के-आने जैन शास्त्रो उत्सर्ग तथा अपवादवाद कहे छे ए रीते जे आगमोक्त तत्त्व कथन थयुं होय ते ज आगमतत्त्व नितान्त ग्राह्य जाणवु जेम के-जैनशास्त्रो हिंसामां पाप कहे छे, जलना जीवोनो आरंभ करवाथी विनाश थाय अने तेथी पापबंध थाय एवु कहे छे, छता मुनियो एक स्थलथी अन्यत्र गमन करता होय अने मार्गमा नदी आवे तो यतनापूर्वक उतरी सामे कांठे जाय एवी जिनाज्ञा छे आ स्थलमा जलना जीवोनो वध थाय छे तो पण तेओने पापबंध तुच्छ कह्यो छे, कारण के-वध करता आरंभमय प्रवृत्ति करे अने जीवोनो रचाव करवानी अपेक्षा राखे नहीं तेमज कल्याणनी इच्छा विनानो होय, टुकमा सोपयोग वर्तन न राखतो होय एवो ज वधक अवश्य पुष्ट पापबंध करे एवु शास्त्रो कहे छे. अर्थात् उत्सर्गथी जीववधनो निषेध करी, तेमां पाप प्रतिपादन करी फरी अपवादथी नदी उतरवानी आज्ञा आपी तेमां थयेल जीववधथी अल्पबंध जणाव्यो, कारण के मुनि नदी उतर्या सिवाय सामे कांठे जइ शके नहीं अने जलना जीवोनो तेमा

उतरवाथी अवश्य वध थाय ज एटले ए वध अपरिहार्यरूप होवाथी आतोए नदी उतरवानी मुनियोने अपवादथी आज्ञा आपेल छे कोइ साध्वी नदीमा डूबती होय, अन्य कोइ उतारु न होय अने मुनि त्या हाजर होय तो मुनि पण तेमा पडी साध्वीनो बचाव करी ले कार्य पडे गृहस्थ मुनिने दोषयुक्त आहार आपे–आ सर्व आज्ञाओ मझुए अपवादथी आपी छे ने तेमा दोषना बदले लाभ ज दर्शाव्यो छे परमार्थ ए के–ज्या उत्सर्ग, सामान्य आज्ञाथी वर्तन करवा जता विशेष आत्महानि, अकल्याण थतु होय त्या विशिष्ट आत्मलाभ, कल्याण माटे विशेष कथन करी अन्यथा प्रवृत्ति करवानी छुट आपी होय ते ज आज्ञाओ निर्दोष सयुक्त अने सर्वज्ञवाक्यरूप कहवाय मथितार्थ एटलो ज के उत्सर्ग वाक्य कल्याणने माटे होय अने अपवाद वाक्यो पण नितान्त उत्सर्गनी पुष्टि करता होय परतु उत्सर्ग वाक्यना विध्वसकरूप अपवाद वाक्यो न बने आ प्रमाणे विवेक जे आगमतत्त्वमा बराबर सचवायो होय, ते ज सत्य आगमतत्त्व जाणवु अहीं जेओ यज्ञमा थती हिंसाने धर्म्य तथा विधेय माने छे तेओ पण आ हिंसा सापवाद छे एम कहे छे, कारण के स्वर्गार्थी यज्ञक्रिया अवश्य करे अने यज्ञमा जे पशुओ बलिरूप बने तेओ पण यज्ञ तथा वेदमत्रना प्रभावथी स्वर्ग प्राप्त करे छे, एटले आ हिंसा पण अहिंसा ज जाणवी आना टुक उत्तरमा कहेवु जोइए के–याज्ञिकोनी आ दलील अनुभव, युक्तियो अने प्रमाणोना प्रहारोने लेश पण सहन करवाने अ-

शक्त छे. प्रथम तो यज्ञ धर्म्य छे के नहीं ए मुख्य विषय विवादग्रस्त छे, तथा यज्ञ सिवाय दानादि क्रियाथी स्वर्ग न मलतु होय अने यज्ञथी ज स्वर्ग मलतु होय तो स्वर्गार्थी माटे, अशक्यतया यज्ञ विधेय मनाय खरु आम छता आटलु तो चोकस जाणवु के यज्ञ ए आरंभक्रिया होवाथी स्वर्ग तो दूर रह्यु, किन्तु मनुष्यपणु पण तेनाथी प्राप्त थवु असंभवनीय छे. एव तेमा जे हिंसा थाय ते पण क्लिष्ट परिणामशून्य तो नथी ज यानिको तेमा जे पशुओनो होम करवा बेसे छे ते काइ तेओनो कोइ पण प्रकारे बचाव ज करवो, तेओने दुःख न थाय तेम वर्त्तवु, दयाबुद्धि राखी यज्ञ करवो विगेरे काइ विचार राखता होय ए स्वप्नमा अनुभव अने युक्तियो सर्वथा ना कहे छे अरे! जे पशुओ लाना बराडा पाडता होय, अग्निथी त्रास पामी मृत्युना भयथी दूर भागता होय तेने बाधी, जबरजस्तिथी जकडी, निर्दयतापूर्वक चांडालनी माफक टुकडा करी तेनो होम थाय, तेनी शेषाओ सानदपणे खवाय ते हिंसामा यदि पुण्य होय, अनुकपाभाव होय अने तेथी स्वर्ग प्राप्त थाय तो माता-पितानो यज्ञ शा माटे न करवो? परमार्थ के-ए हिंसा क्लिष्ट परिणाममय अने दयाबुद्धि रहित होवाथी अधर्म्य अने एकान्त त्याज्य ज छे,—एटले ते सापवाद केम कहेवाय? सापवाद प्रवृत्ति तो ते ज कहेवाय के जेनाथी आत्मकल्याणना मार्गमा स्खलना न थाय अने उत्सर्गमार्गनी एकान्तत पुष्टि ज करे, अतएव याज्ञिक हिंसा तो उत्सर्गपथनो ध्वस करी आत्माने दुर्गतिमा धमडी जाय छे,

माटे प्रत्यक्ष तो त्याज्य होवा छता तेने सापवाद कहेवानु साहस करवु ए ज मताग्रह सूचवे छे.

पुनः आगमतत्त्व "अलमैदं पर्यशुद्ध च" अल-प्रतिशे सर्वांशे करीने ऐदंपर्य जेनो परमार्थ परमतत्त्व शुद्धं निर्मल-निर्दोष होय, एटले जे आगमना वाक्यो बराबर वस्तुतत्त्वनु प्रतिपादन करवामा निपुण होय, भूत, भविष्य तथा वर्तमानमा सरखी रीते ज वस्तुतत्त्व दर्शावता होय, प्रत्येक क्षेत्रमा एक ज रीते अविसंवादीपणे भावो प्रतिपादन करता होय, ज्यार ज्यारे शासनप्रवृत्ति थाय अने तेना प्रवर्तको शासननी रचना करे त्यारे त्यारे पूर्वपुरुषोना शासन प्रमाणे ज शास्त्रो उपदेशे आथी सर्वकाले तुल्यपणे जे शास्त्रो परमार्थनु कथन करता होय, जे आगम वाक्यो आकांक्षादि दोष रहित होय, अने शब्दप्रतिपाद्य शक्तिविशिष्ट होय ते ज आगमतत्त्व शुद्ध जाणवु निष्कर्ष एटलो ज के—श्लोकोक्त त्रण विशेषण विशिष्ट जे आगमतत्त्व होय ते ज परम आगमतत्त्व अने आग तत्त्व जाणवु अहीं दर्शावेल त्रण्ये विशेषणोनो परमार्थ अने तेनी विस्तृत व्याख्या मूलकर्ता हवे पछीना श्लोकोथी करे छे एटले त्याज तेनो विशेष विचार करवो इष्ट गणाय ॥

उपर आपणे तपासी गया के—आगमतत्त्वनी त्रण प्रकारे परीक्षा करवी, तेमा प्रथम आगम प्रतिपाद्य वस्तु दृष्ट अने इष्ट बन्ने रीते एकवाक्य-अविरुद्धवाक्य होय, ते ज आगम बराबर

निर्दोष जाणवुं अतः अहीं ग्रंथकार "दृष्टेष्टाविरुद्धवाक्यतया" प्रथम कथीत श्लोकना आ पदनी विस्तृत समीक्षा करवानो प्रकार दर्शावे छे—

आत्मास्ति स परिणामी,
बद्ध सत्कर्मणा विचित्रेण ॥
मुक्तश्च तद्वियोगाद्धि-
साहिंसादि तद्धेतु ॥ ११ ॥

मूलार्थ—आत्मा जीव छे, ते परिणमन स्वभावयुक्त तथा विचित्र एवा सद्भूत कर्मोथी बद्ध छे ने कर्मोथी मुक्त छ अहीं हिंसा विगेरे आत्माने कर्मबंधमा अन अहिंसा विगेरे कर्मोथी छूटवामां कारणो जाणवा ॥

स्पष्टीकरण—अहीं आगमोक्त तत्त्वनी परीक्षा करवा अर्थे आचार्यश्री उपायो दर्शावता वदे छे के-ज्या आत्मा-जीवनी सत्ता प्रतिपादन करी होय, निदान के-पुण्य, पाप, मोक्ष, परलोक, दानादि सत्कर्मो विगेरे तत्त्वोनो मूलस्थम आत्मा ज छे. यदि आत्मा ज न होय तो उपदेष्टा, श्रोता अने उपदेश विगेर कोना माटे ? तपश्चर्या तथा इन्द्रियादि दमननु फल शु ? त्याग अने दान विगेरे शाना माटे ? अतएव ए सर्वेनो मूल आधारभूत आत्मा छे ने ते आत्मानु कथन ज्या कर्यु होय ते ज सत्य आगम.

टीकाकार महाराज कहे छे के-नास्तिको आत्मसत्ता मानता नथी तेओ कहे छे के-प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोद्वारा आत्मा घटी शकतो नथी जे वस्तु होय ते चक्षु आदि इन्द्रियो-वडे जरुर देखाय आत्मा चक्षु इंद्रियथी देखातो नथी. परमाणुओ जो के साक्षात् देखाता नथी तो पण तेनु कार्य घट पट विगेरे देखाय छे माटे ते छे एम मानवा जोइये, ज्यारे आत्मानु बनावेल कोइ पण कार्य देखातु नथी माटे आत्मा नथी अनुमानथी पण आत्मा घटतो नथी अनुमान प्रमाणमा लिंगज्ञान मुख्य साधनभूत छे एटले जेम अमुक स्थानमा धूम दर्शन थता त्या अग्निनु ज्ञान थयु अने त्यारपछी कोइ स्थले दूरथी धूमदर्शन थवाथी अहीं अग्नि अवश्य होवो जोइये, कारण के ज्या ज्या धूम होय त्या त्या अग्नि निश्चयतया होय. रसोडामा तथाप्रकारना अनुभव प्रत्यक्ष देखाय छे. एटले अहीं पण अग्नि छे एवो निश्चय अनुमानथी थाय छे एव आत्माने अथवा तेना लिंगने कोइ स्थळे प्रत्यक्ष जोयेल नथी के जे परथी आत्मा छे एवु अनुमान करी शकाय. ज्या सुधी आत्माना कोइपण लिंगनु प्रत्यक्ष दर्शन न थाय त्या सुधी आत्माने सिद्ध करवा अनुमान प्रमाणनी गति थइ शके नहीं. एव आत्मा जेवो अन्य पदार्थ अन्यत्र स्थानमा देखातो पण नथी, जेथी आ आत्मा छे तेना सरिखो आ पण पदार्थ छे माटे ते आत्मा कहवाय, ए रीते उपमानप्रमाणथी पण आत्मानी प्रतिष्ठा थइ शकती नथी. फरी आगमवचनो अन्या-

न्य पुरुषो प्रतिपादित होवाथी अनेक स्थळमा परस्पर विरोधी-पणु भिन्न भिन्न रीते पदार्थनु प्रतिपादन करे छे एटले आ-गमो ज अविश्वसनीय होइ तेनाथी आत्मा छे ए मान्यता सभवे ज क्याथी ? अतएव आत्मा नथी ए सत्य छे तथा जेम मदिरा मादक पदार्थना सयोगथी पेदा थाय छे तेम पाचभूतना सयो-गथी आत्मा पण आविर्भूत थइ जलना बुद्बुदो जेम जलथी प्रगटी तेमा तेनो विलय थाय छे एम आत्मानो पण पाच-भूतोमा ज विलय-नाश थाय छे अतएव परिणामे आत्मा चैतन्य नामक कोइ पदार्थ स्वतत्र नथी ज

आ वादने निर्मूल करवा हरिभद्रसूरिजी उपरोक्त श्लोकना प्रथम चरणथी प्रतिपादक शैलीए वदे छे "आत्मास्ति" आत्मा-चैतन्य एक स्वतत्र पदार्थ छे, नहीं के अमुक पदार्थना सयोगजन्य आ आत्मानी अस्तिता केवल शास्त्रो ज कथन नथी करता, किन्तु प्रत्यक्ष आदि प्रमाणो पण तेनी अस्तिता सिद्ध करे छे ते आ प्रमाणे—

आत्मा शरीरथी एक भिन्न पदार्थ रूपे छे ज, ते न होय तो 'आत्मा छे के नहीं ?' एवो सशय थाय नहीं सशय ए ज्ञानरूप छे, अने ज्ञान आत्मानो गुण छे, केवल शरीरमा अथवा खाली इन्द्रियोमा ते गुण देखातो नथी निदान के-शरीरजन्य जो गुण होय तो मृतकलेवरमा ते गुणनु दर्शन थवु जोइये अने इन्द्रियोनो ते गुण होय तो अमुक इन्द्रियना विध्वस

पछी ते गुण न देखावो जोइये. दाखला तरीके अमुक माणसे नेत्रद्वाराए अमुक अमुक चीजोनु यथावत् भान कर्यु अने त्यारबाद ते अंध थयो छता चक्षुना नाशथी तेने थयेल ज्ञानना कांइ नाश थतो नथी, किन्तु ज्यारे ज्यार पूछवामा आवे त्यार त्यारे ते चीजोनी ओळखाण बराबर करावी आपे छे एटले ए गुण चक्षुनो तो नज कहेवाय, कारण के-चक्षुनो तो पहेला ज नाश थयो छे आथी ज ज्ञानगुणने भिन्न मानवो जोइए. आ रीते आ ज्ञानगुण प्रत्यक्ष भिन्नरूपे अनुभवमा आववाथी गुणी आत्मा प्रत्यक्ष छे एम मानवु ज जोइये. निदान के-आत्मा शिवाय आ गुण अन्यत्र अनुभवातो नथी "अस्त्येव चात्मा प्रत्यक्षो, जीवो ह्यात्मानमात्मना । अहम स्मीति मयेत्ति, रूपादीनि यथेन्द्रियैः ॥ १ ॥" फरी छद्मस्थन इंद्रिय प्रत्यक्ष होवाथी सूक्ष्म पदार्थनु प्रत्यक्ष ज्ञान अमुक अंशे ज थाय छे, ज्यारे पूर्ण आत्म प्रत्यक्ष तो सर्वज्ञोने ज होय छे एटले जे आत्मा पूर्णरीत्या सर्वज्ञोने प्रत्यक्ष छे, ते आत्माने आपणे ज्ञानना अभावथी पूर्णतया प्रत्यक्ष न करी शकीये एतावन मात्रथी आत्मा नथी कहेवानु साहस करवु ते मूढताज गणाय.

एव अहीं "आत्मा छे के नहीं" ए संशय उद्भव थवाथी आत्मा पदार्थ जरुर कोइ पण जग्याए होवो जोइये, कारण के कोइ पण वस्तु संबंधी ज्यार ज्यारे संशय थाय छे त्यारे त्यारे ते वस्तु कोइ पण स्थानमा होय छे ज अन्यथा ते

वस्तु सबंधी संशय उद्भवतो नथी, " नास्त्यात्मा " ए वाक्य पण आत्मानो एकान्त निषेध करतु नथी, किन्तु " नास्ति अत्र घटः " " आ स्थानमा घट नथी " ए वाक्य जेम-एतत् भूमि विशिष्ट घटनो अभाव दर्शावे छे परतु सर्वत्र घटनो अभाव दर्शावतु नथी. अर्थात् ए वाक्यथी अन्यत्र घटनी सत्ता सिद्ध थाय छे एव उपरोक्त वाक्य पण अमुक शरीर अथवा इद्रियोमा आत्मा नथी ए ज भाव दर्शावे छे, परतु सर्वत्र आत्माभाव दर्शावतु नथी निदान के-एक स्थानमा संशय थवाथी त्या संशयी आत्मा जेम सिद्ध थाय छे तद्वत् अन्यत्र पण ज्या ज्या तदाकार संशय उद्भवे त्या त्या आत्मा छे एवु अनुमान चोकसपणे प्रवर्ते छे

प्रत्यक्ष अने अनुमान प्रमाणथी आत्मानी सिद्धि थवाथी उपमान अने आगम प्रमाणथी आत्मा सिद्ध ज छे एटले तेने समजाववानी काइ विशेष जरुर रहेती नथी, कारण के-उपमान प्रमाण तेना पाछल ज गमन करे छे अने आगम प्रमाण तो ' अत्थि मे आया उववाइये ' इत्यादि वचनोथी आत्मसत्ता पोकारी पोकारी वारवार कहे छे आ रीते युक्ति तथा प्रमाणोद्वारा आत्मा बराबर सिद्ध होवाथी जे शास्त्रो नास्तिक मतनी भावना दूर करी आ आत्मतत्त्वनु कथन करता होय ते ज आगमवाक्य ग्राह्य थाय. अतएव अहीं पण भगवान् हरिभद्रसूरिजी आगमतत्त्वनी परीक्षानो नियम दर्शावता वदे छे के-" आत्मास्ति " ' आत्मा छे ' अर्थात् जैनदर्शनमा

आत्मा चोक्स मान्य छे आ आत्माने केटलाको नित्य कहे छे अने कोइ अनित्य पण कहे छे नित्यपक्षमा " अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैक स्वभावो हि नित्यं " 'जेनो नाश न थाय, उत्पन्न न थाय अने सर्वदा स्थिर एक स्वभावमां रहे ते नित्य' आ लक्षण होवाथी आत्मा जो उत्पन्न न थाय, नाश न पामे अने स्थिर एक ज स्वभाववान् होय तो जन्म तथा मरण कोने ? क्षणमा सुखी, क्षणमा दुःखी, क्षणमा, रोगी क्षणमा निरोगी आ अवस्थाओ कोनी ? बाल, युवान अने वृद्ध अवस्था अनुभवनार कोण ? मनुष्य, नारकी, तिर्यंच, देवता आदि भावोमा रमनार कोण ? निग्गन के–उपरोक्त नियम प्रमाणे तो सर्वदा आत्मा एक ज रूपमा वर्तनशील मालुम पडवो जोइए जे मनुष्य होय ते मनुष्य ज, जे देव होय ते देव ज, जे नारकी होय ते नारकी, जे बाल होय ते बाल ज, रोगी होय ते रोगी, दरिद्र होय ते दरिद्री ज, धनी होय ते धनवान् ज, मूढ होय ते मूढ ज, ए रीते एक ज अवस्था प्रत्येक आत्माए अनुभववी घटे, किन्तु अवस्थाओनु परावर्तन थवु न घटे.

अनित्यपक्षमा–आत्मा क्षणस्थायी होवाथी प्रथम क्षणोत्पन्न आत्मा द्वितीय क्षणमा नथी रहेतो अने द्वितीय क्षणोत्पन्न आत्मा ए रीते भिन्न क्षणमा नथी रहेतो. ए रीते प्रत्येक क्षणमा आत्मा उत्पन्न थाय अने विनाश पामे अर्थात्–अनित्यवादपक्षमा क्षणोनी केवळ परपरा ज मान्य छे. आ रीते कबुल करवाथी प्रथम क्षणमा उत्पन्न आत्माए जे काइ पुण्य या पापकर्म

कर्यु अने ते आत्मा मरी गयो हवे बीजी क्षणमा उत्पन्न आत्माए-पूर्वात्माए कृतपुण्य-पापनु फल अनुभव्यु आथी जेणे पापकर्म कर्यु तेणे भोगव्यु नहीं अने जेणे ते कर्म उपार्ज्यु नथी तेणे अनुभव्यु. एटले कर कोइ अने अनुभवे कोइ चोरी या धम्मासी काइ कर अने तेनी शिक्षा अन्य भोगवे ए शु न्याय्य गणाय खरा ?

आ रीते उभयपक्षमा अनेक दोषो उद्भववाथी ग्रथकर्त्ता कहे छे के-आ आत्मा "परिणामी" भावार्थ के-आत्मा भिन्न भिन्न अवस्थामा, भिन्न भिन्न भावोमा परिमनभाववालो छे पाचे गतियोमा गमन स्वभाववान्, अलग अलग भवोमा पर्यटन करनार, बाल, युवा अने वृद्ध आदि अवस्था अनुभवनार, दारिद्रय, रोग, सुख, दु.ख पर्यायोनो भोक्ता, चैतन्य स्वरूपी आत्मा छे निदान के-द्रव्यनी अपेक्षाए आत्मा नित्य चैतन्य स्वरूपी छे, ने पर्यायनी अपेक्षाए अनित्य जन्म, मृत्यु, दारिद्रय, रोग, शोक, देव, मनुष्यादि विविध भावोनो अनुभविता कथ्यो छे परिणामनु लक्षण टीकाकार उपर कथित भावने अनुकूल जणावे छे "परिणामो ह्यर्थांतरगमन न सर्वथा व्यवस्थान । न च सर्वथा विनाश परिणामस्तद्विदामिष्ट " ॥ १ ॥ " एक भाव-अवस्था मूकीने अन्य अवस्थामा गमन करवु, सर्वथा एक ज भावमा स्थित न रहेवु, सर्वथा विनाश पण जेनो न थाय तेनु नाम परिणामस्वरूपवेत्ताओ परिणाम माने छे " निष्कर्ष-आत्मानी जेम अस्तिता सिद्ध छे तेम ते परिणामी पण सिद्ध

छे. आ प्रमाणे भिन्न भिन्न अवस्थाओमा अनुगामी धर्मवान् आत्मा प्रमाण अने युक्तिओथी बराबर सुघटित छे, एम विना शंकाये कबूल करवु जोइये

परिणामनभावो–भिन्न भिन्न पर्यायोनो अनुभव पण आत्माने हेतु विना तो न ज बमने, केमके अन्यथा सिद्धात्माने पण ते ते भावोनो अनुभव मानवो पडे आ हेतुओ कर्मो सिवाय अन्य तो नहीं ज कर्मोना सबंधथी ज आत्मा अनेक पर्यायोने अनुभवे छे अने सिद्धात्माने ते कर्मो न होवाथी ते ते भावोमा पर्यटन करवानी जरुर रहेती नथी. सिद्धान्त के–ससारस्थ आत्मा " बद्धः सत्कर्मणा " मोहनीय आदि आठ कर्मोथी आवृत छे, बद्ध छे आ कर्मो पण सद्रूप–विद्यमान छे, परतु असद्रूप कल्पनामात्र नथी. असद्रूप पदार्थ आत्माने सुखदु ख आदि पर्यायोमा हेतुभूत क्दापि न बने. जे पदार्थ वन्ध्यापुत्रनी माफक असत्–अविद्यमान छे, कल्पनामात्र छे, ते पदार्थ यदि निमित्त बननो होय, फल आपवा समर्थ थतो होय तो वन्ध्यापुत्र पण जरुर वन्ध्याने फल अर्पण करे, परतु वन्ध्याने ते मळतु नथी आत्माने उत्पन्न थता सुख–दु.ख विगेरे भावो सामान्य जन पण अनुभवे छे एटले जगत्मा सद्रूप कर्मो छे अने आत्मा तेना सबंधथी ससारपर्यटन आदि भावो पामे छे, ए सिद्ध थयु.

आ कर्मो अनेक प्रकारना छे कर्मोना मुख्य आठ भेदो–ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अंतराय, वेदनीय,

आयुष्य, नाम, गोत्र-ए रीते आठोमा पण्या छे तेना उत्तरभेदो १२० कया छे तेमज आ कर्मोने शुभफल अर्पक अने अशुभ फलार्पक पुण्य तथा पापरूप बे प्रकार जणावेल छे, माटे ग्रंथकर्ता कहे छे के-" विचित्रेण " विविध प्रकारना कर्मोथी आत्मा बद्ध छे, अतएव विविध फलोनो अनुभव पण आत्मा करे छे. एव " मुक्तश्च तद्वियोगात् " दर्शित आठे कर्मोनो सर्वथा वियोग, विज्य थवार्थी आत्मा अने कर्मो सर्वथा भिन भिन थवार्थी आत्मा शुद्ध, निर्लेप स्फटिकरूप चैतन्य स्वरूप पामी मुक्त-सिद्ध थाय छे एटले आत्मा केवल सद् चिद् आमरूपने ज अनुभवे छे निदान के-पछी सुख-दुःख, जन्म-मरण, रोग-शोक, मनुष्यादि भावोनु पर्यटन छूटी जाय छे इत्यादि ए रीते परिणमनमात्रवालो विचित्र कर्मोथी बद्ध अने कर्मोथी छूटो थनार एवो आत्मा छे एम सिद्ध कर्यु

अहीं प्रसगवशात् अत्रानु जोइये के---कर्मो जड पुद्गलस्वरूप अतीन्द्रिय वस्तु छे, अने आत्मा चैतन्य ज्ञानादि स्वरूपवान् छे निदान के-वस्तुत' आत्मा ज्ञानादि धर्मोने मूकी अन्य सांयिक सुख-दु.ख, रोग-शोक, जन्म-मरण, मनुष्यादि पर्यायरूप धर्मवान नथी किंतु जुडाडो के तरवार जड छता मनुष्यना हाथमा आव्या पछी मनुष्यना प्रयत्नथी काष्ठ आदिने कापी नाखे छे, पत्थर पण जड छता ग्राहकना हाथमा आव्या पछी अन्यने मारवा समर्थ बने छे, एव कर्मो पण आत्माना सयोगने पामी आत्मरूप बनी आत्माने तत्तत्कारना भावोमय

बनावे छे. एटले तरवार पकडनार निर्बळ छता तरवारनी स-हायता पामी स्वात्माने समर्थ माने छे, मारामा अन्यने मारवानी शक्ति छे हु बलवान् छु एम मिथ्या अनुभव करे छे एक प्रकारनो विचित्र जुस्सो अनुभवे छे, एव आत्मा पण जे जे भावो पोताना स्थायी नथी ते ते कर्मकृत भावोने कर्मना सब-धथी पोताना माने छे स्वपणे अनुभवे छे तत्तत्भावनो अभि-मानी बनी कर्मोथी भिन्न पोतानु रूप विसरी जड कर्मे बनावेल रूप ते ज पोतानु स्वरूप छे एम समजे छे, श्रद्धे छे, आथीज अनेकधा आत्मा विविध भवोमा पर्यटन करे छे, अभिमानिक मान्यता आत्मा पोतामा रहेल अनादि रागद्वेषादि दोषोना कारणथी ज अनुभवे छे ने कर्मोने बाधे छे तथा ससारपर्यटन करे छे, एव कर्मो रागद्वेषादिमय आत्माने बनावे छे तथा रागद्वेषादिको कर्मरूप आत्माने बनावे छे ए रीते अन्योन्याश्रयी अनादि सबध आत्मा तथा कर्मोनो प्रवर्त्ते छे फरी ए अभिमानिक मान्यताने खोटा रूपमा ज्यारे आत्मा देखे छे बराबर श्रद्धे छे कर्म अने पोतानु रूप भिन्नपणे माने छे त्यारे ते कर्मोने खसे-डवा अने पोतानु परमार्थ रूप पामवा प्रयत्न करे छे, परिणामे सर्व कर्मने अलग करी स्वस्वरूपी मुक्त–सिद्ध थाय छे.

अतएव अहीं उपरोक्त कर्म आववानु तथा छूटवानु कारण ग्रथकार महर्षि एकज वाक्यमा बहु सुदर रीते दर्शावे छे—“ हिंसाहिंसादि तद्धेतुः ” हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन,

परिग्रह ए पांच मुख्यतया कर्मबंधना कारणो कह्या छे. तथा अहिंसा, जूठनिवृत्ति, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग ए पांच मुख्यत' कर्मनाशना कारणो कह्या छे.

मूलमा जे आदि शब्द आप्यो छे ते प्रत्येकनी साथे जोडवानो होवाथी "हिंसादि–अहिंसादि" ए रीते वाक्यप्रयोग करवो एटले–मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग आदि शब्दग्राह्य ए पांच कारणो कर्मबंधना जाणवा. तत्त्वार्थमा उमास्वातिवाचक पण एज जणावे छे–मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतवः" (त० अ० ८–सू० १) 'अहिंसादि' अत्रस्थ आदि शब्दथी उपर कहेल हिंसादिथी विपरीत एवा अहिंसा विगेरे पांच साधनो कर्मवियोगना कारणो जाणवा. मथितार्थ एटलो ज के मिथ्यात्वादि कारणोथी आत्मा कर्मबंध करे छे, अने तेना त्यागथी अर्थात् सम्यक्त्व आदि कारणोथी आत्मा कर्मविमुक्त बने छे, कारण के–मिथ्यात्व विगेरे भावो आत्माने असत् मति पेदा करी, दुष्ट मार्गमां दोरी जइ कर्मबंध करावे छे, ने सम्यक्त्व आदि भावो आत्माने सन्मति–सत् श्रद्धा उपजावी मोक्षपथमा प्रेरी कर्मविमुक्त करे छे, ए भाव ग्रंथकारना वाक्यमा रह्यो छे. एव प्रकारे आत्मा आदि पदार्थनु स्वरूपदर्शन जे शास्त्रमा कर्यु होय, पछी ते शास्त्र गमे ते पुरुषकथित होय, तत्शास्त्रोक्त वाक्यो जरूर ग्रहण योग्य जाणवा. आनु प्रवचन प्रथम प्रकारनी कसोटीथी शुद्ध जाणवु निदान के–ए रीते प्रमाण अने युक्तिथी अखंड्य जाणवु

अन्तमा आटलुं जाणवुं जरुरी छे के—'आगमतत्त्व' नी परीक्षानो प्रकार ग्रंथकर्ता दर्शावी रह्या छे, तेमां जे आगम-वाक्य प्रमाण तथा शास्त्रीय वचनथी अखड्य होय, १ उत्सर्ग अने अपवादना विषयवालुं होय २ ऐदंपर्य-परमार्थवडे सशुद्ध होय ३, ते ज वचन हितार्थे ने स्वात्महित अर्थे उपादेय गणाय. आ वात आपणे उपर जोइ गया, तेमां प्रमाण तथा शास्त्रीय वचनथी जे आगमवाक्य अखड्य होय, ए रीतनो आगमतत्त्वनी परीक्षानो प्रथम प्रकार ग्रंथकार दर्शाव्यो. निदान के—उपर कह्या प्रमाणे आत्मा आदि पदार्थनी अस्तिता जे शास्त्रमां कथन करी होय ते शास्त्रोक्त वाक्यो आदेय जाणवा. हवे रह्यो उत्सर्ग तथा अपवादे करी सशुद्ध ए बीजो प्रकार, एटले जे शास्त्रना वचनो उत्सर्ग वाक्यरूप तथा अपवादवाक्यरूप उभयथा शुद्ध होय, अहीं उत्सर्ग तथा अपवादनुं स्वरुप दशमा श्लोकना विवरणमा यत्किंचित् देखाड्युं छे, एटले अहीं तत्-संबंधमा विशेष जणाववानी जरुर रहेती नथी, तेमज प्रथम प्रकारनी परीक्षामा ते विषय आवी जतो होवाथी ग्रंथकारे भिन्नपणे जणाव्यो पण नथी अतएव बीजा विषयने मूकी ऐदंपर्य परमार्थवडे सशुद्ध ए त्रीजो प्रकार समजाववा ग्रंथकार एक श्लोकथी कथन करे छे—

परलोकविधौ मानं वचनं तदतींद्रियार्थदृग्व्यक्तं ॥
सर्वमिदमनादि स्यादैदंपर्यस्य शुद्धिरिति ॥१२॥

मूलार्थ—अतींद्रिय अर्थ दृष्टा एवा सर्वज्ञ भगवतोए स्पष्ट-पणे कहेल वचन ज परलोक संबंधी विधेय कार्योमां मान्य प्रतिष्ठित गण्युं छे. फरी आ वचन सर्व क्षेत्रनी अपेक्षाए अना दिकालीन छे, ए प्रकारे ऐदंपर्य परमार्थनी शुद्धि जाणवी ॥

स्पष्टीकरण—" अतींद्रियार्थदृग्व्यक्त " जगतमा पदार्थो बे प्रकारना छे एक तो इंद्रियदृश्य एटले आपणे सौ जेने देखी शकीये, अनुभवीये छीये ते अने बीजा जे इंद्रिय-दृश्य न होय किन्तु ज्ञानग्राह्य होय जेवा के–आत्मा, कर्म, पर माणु, धर्म, अधर्मास्तिकाय आदि जेने आपणे देखी शकता नथी पण तेवा अनंतज्ञानी देखे छे ते, अर्थात् बीजा नंबरना पदार्थो तेओ ज देखी शके के जेओने कैवल्यज्ञान–अनंतज्ञान प्राप्त थयु होय. शिवाय अन्यने ते पदार्थ देखवानी शक्ति न होय निश्चय के–वीतराग भगवतो ज सर्वज्ञ होय अने तेओ ज आ बीजा नंबरना सर्व पदार्थने बराबर जोइ शके छे आ परथी जेने जे पदार्थनु यथास्थित ज्ञान नथी तेओ ते पदार्थनु यथा-स्थित स्वरूप क्याथी कही शके ? ए वात बराबर समजाय तेवी छे. छतां कोइ अज्ञेय पदार्थनु स्वरूप कथन करवानु ... करे तो ते पण अव्यवस्थित अने बाधित ज वचन ... समजु लोक. आथी तेना पर विश्वास स्थापन ... ने आत्माओं कारण केम न थाय ? माटे ... आगमप्रामाण्यनी परीक्षामां त्रीजो प्रकार दर्श... " परलोकविधौ मान वचन " परलो...

कार्योमा–स्वर्ग तथा मोक्ष आदि विधेयकार्योमा, आत्मिक शुभ विधानोमा अतींद्रियार्थदर्शी एवा सर्वज्ञ भगवंतोनुज वचन मान्य, प्रतिष्ठित, विश्वसनीय होय हेतु एज के तेओनेज तत् पदार्थ सबंधी यथास्थित अबाध्य ज्ञान होय छे, एटले तेओना कथनमा लेश पण विरोध अथवा विसंवादिपणु होतु नथी. विरोध के विसंवादिपणु तेओना ज कथनमां होय के जेओमा राग या द्वेष उद्भूत अनुद्भूतरूपे विद्यमान होय, अने तेथी ज तेओ स्वार्थना मोहमा खेंचाई अगर मानादिमा आवी जइ इच्छाथी, अनिच्छाथी असत्य सत्यासत्यपणां भरडी मारे. ज्या असत्य के सत्यासत्य उत्पादक राग या द्वेषनु मूल ज नथी–सर्वथा अभावज थइ गयो छे, तेओना कथनमा असत्य सत्यासत्यनो अंश क्याथी संभवे ? नज संभवे ए वात सामान्य बुद्धिए पण स्वीकारी शकाय एवी छे. कह्यु पण छे:—

रागाद्वा द्वेषाद्वा मोहाद्वा
वाक्यमुच्यते ह्यनृतम् ।
यस्य तु नैते दोषा
तस्यानृतकारणं किं स्यात् ? ॥ १ ॥

अतएव अहीं ग्रंथकर्ता परलोक सबंधी विधेय बाबतोमा सर्वज्ञवचन ज प्रमाणिक होय एवु जणावी प्रतिपादन करे छे के–जे शास्त्रो खास सर्वज्ञना कथन करेल होय एम प्रमाण अने अनुभव पण मान्य करे ते ज शास्त्रवचन शुद्ध जाणवु–ग्राह्य जाणवु. निदान के–सर्वज्ञवाक्य ते ज ऐदंपर्य–परमार्थ शुद्ध जाणवु. ग्रंथकार आ वचननी विशेष परीक्षा माटे कहे छे के–

' सर्वमिदमनादि स्यात् " सर्वज्ञवचन आदि अने अनादि बे प्रकारे जाणावु अमुक अमुक सर्वज्ञनी अपेक्षाए आदि वचन, अने महाविदेह आदि क्षेत्रोनी अपेक्षाए अनादि वचन अथवा प्रवाहनी अपेक्षाए अनादि वचन जाणवु एटले भूतकालमा आ सर्वज्ञवचन हतु, वर्तमानमा छे अने भविष्यमा रहेवानु एवो कोइ काल नथी क जे काले आ सर्वज्ञप्रवचन न होय

अही एक बात बराबर ध्यानमा राखवानी छे, अने ते ए के–सर्वज्ञपणु कोइ पण व्यक्तिने अनादिनु घटे नहीं किन्तु अल्पज्ञ ज काल्क्रमे कर्मो नाश करी सर्वज्ञपणु प्राप्त करे एम युक्ति अने प्रमाणथी सिद्ध थाय छे; अन्यथा अमुक व्यक्तिने सर्वज्ञपणु अनादिनु ज मान्य होय तो आपणे जीवोना जीवात्मा अने सर्वज्ञात्मा एम बे भेदो अनादिना नज मानवा जोइये.

आ परथी जेम सर्वज्ञात्मा ते सर्वज्ञ होवाथी कदापि जीवात्मपणामा आवता नथी, अगर आवे तो तेओने पण एक प्रकारनु अरघट्टघटीयत्रनी माफक पर्यटन ज रह्यु कहेवाय, अने तेम थवाथी सर्वज्ञ छता तेओ असर्वज्ञनी बराबर ज कहेवाय, एव जीवात्माए पण जीवात्मस्वरूप स्वस्वभावनो त्याग करी सर्वज्ञपणु कदापि प्राप्त न करवु जोइये करे तो अनादिनु जीवात्मपणु क्याथी रहे ? नज रहे, किंतु जीवात्मा जीवस्वरूप छोडी सर्वज्ञपणु तो अवश्य प्राप्त करे छेज वधुमा उपरोक्त अनादिना बे भेदो पण कल्पितज मानवा जोइये टुकमा वस्तुगत्या स्थित अनादि भेदोनु परिवर्तन कदापि समवे ज नहीं, जेम अनादिथी

जड ते जड अने चैतन्य ते चैतन्य ए भेदनुं परिवर्त्तन थतुं नथी तेम अनादि उपरोक्त भेदोनुं पण परिवर्त्तन न ज संभवे तथा जीवात्मा सर्वज्ञपणुं प्राप्त करवाने जे त्याग, तप, दान आदि करे ते अने तेम करवानो उपदेश अर्पनार शास्त्रो विफल ज मानवा जोइये. जे वस्तु मळवानी नथी तेना माटे जे परिश्रम करवो के उपदेश आपवो ते निष्फल ज गणाय–चध्या जेवो जणावो. अज्ञानावस्थामांथी अल्पज्ञपणुं अने तेनी उत्क्रान्ति थतां प्रखर-ज्ञानीपणुं आपणे अनुभवीये छीये, तो तेना क्रमिक उत्क्रान्ति-वादमां सर्वज्ञपणुं आत्मा प्राप्त करे ए मानसिक गूढ अनुभवने पण आपणे केम मिथ्या मानवो घटे ? निदान के–अधकार पछी कइक प्रकाश अने उषा त्यारबाद क्रमश प्रकाश वधता धीरे धीरे अधकार जगतमांथी दूर थाय छे ने पश्चात् सर्वथा सूर्यनो प्रकाश ज देखाय छे एव आत्मा पण अतरना अध-कारने दूर करी सर्वथा ज्ञानरूप प्रकाशने प्राप्त करे ए वात अनु-भवमां आवे तेवी छे. सर्व आत्माओने सर्वज्ञपणुं अनादिनुं आवि-र्भूत होय ए मान्यता सबध वगरनी मालुम पडे छे.

तथा पृथ्वीनो जे भाग व्यवहारमां जणाय छे तेटली ज पृथ्वी नथी किन्तु पडदा पाछळ आ सिवायनी वद्दोळी पृथ्वी अवश्य छे ए वात तो आजे जडवादीयो पण कबूल करे छे. जे देशो पहेला व्यवहारमां न्होता जणाता ते देशो व्यवहारमां आवते साथ ज शीत्रायना देशोनी शोध करवानी पाश्चात्योने लालसा वधी क्रमे क्रमे ज्यां ज्यां ते लोको पहोंची

शक्या तेथी तेओनो उत्साह अधिक उद्योत थयो अने इत्री पण अन्य विभाग माटे तलपापड थाय छे एटले वर्त्तमानमां आपणी दृष्टिये जे विभागो न जणाय ते विभागो नथी एवु कथन करवु ते नितान्त आग्रहज गणाय आथी सर्वज्ञ-प्ररूपित जैन शास्त्रो पहेलाथीज पृथ्वीना अनेक विभागनु वर्णन करे छे ने ते विभागो एवा छे के ज्या विशिष्ट बल शिवाय सामान्य जनता जइ शके नहीं. आ विभागोमा केट लाक विभागो अहींनी बराबर स्थितिवाला छे अने केटलाक विभागो अहीं करता पण अति उच्च स्थितिवाला छे, के ज्या सर्वदा नितान्त सुख, वैभव, म्होटा बलवान् शरीरो अने अनतज्ञानीओ वर्त्ती रहा छे

अतएव सर्वज्ञवचन आ सर्व क्षेत्रनी अपेक्षाए विचार करता सर्वदा विद्यमान होवाथी एटले महाविदेहादि क्षेत्रोमा सर्वज्ञो हम्मेशा विहरमान रहेवाथी तदपेक्षया अनादि शाश्वत वचन अहीं शास्त्रकर्त्ताए जणाव्यु निदान के-उत्तम शास्त्रवाक्यनी परीक्षा करता शास्त्रवाक्यो उपर कह्या प्रमाणे सर्वज्ञकथित अने आदिअनादिभाव अलकृत छे के नहीं ? ए वात जरुर तपासवी आ परीक्षाने महर्षिओ ऐदंपर्य-परमार्थ शुद्ध परीक्षा निर्देशे छे निष्कर्ष-आवु वचन ज परलोक माटे आत्माने उपकारी थाय, शिवाय तो अन्यना वचनना आलबनथी आत्मा ससारगर्तमाज गोथा खाय ॥

वस अहीं सुधी ग्रंथकर्ताए सत् धर्मना परीक्षक एवा बाल, मध्यम, बुधवर्गनुं स्वरूप तथा परीक्षा अने परीक्षाना प्रकारो दर्शाव्या हवे आ लोकोने धर्मोपदेश आचार्ये केवो आपवो जोइये जेथी आ लोकोने पण यथास्थित धर्मनो ख्याल आवे, आ हेतुथी ग्रंथकर्त्ता हवे उपदेश आपवानी रीति दर्शावे छे–

बालादिभावमेव सम्यग्विज्ञाय
देहिनां गुरुणा ॥
सद्धर्मदेशनापि हि
कर्त्तव्या तदनुसारेण ॥ १३ ॥

मूलार्थ—ए रीते धर्मगुरुए मनुष्योना बाल, मध्यम, बुध विगेर भावोनुं यथास्थित स्वरूप जाणी उत्तमधर्मनी देशना-उपदेश तेओने जेम सुदृढ रीते उपकारी थाय ते प्रमाणे ज आपवो ॥

स्पष्टीकरण—'एव' आचार्य हरिभद्रसूरि कहे छे के–प्रथम कह्या प्रमाणे बाल, मध्यम आदि वर्गोनुं स्वरूप ध्यानमां राखी तेओने हितकारी ज उपदेश धर्मोपदेशके करवो निदान के–श्रोतानुं दिल समज्या वगर उपदेशनो प्रवाह छोडवाथी श्रोताने तेनाथी लाभ थाय नहीं अने वक्ताने उलटो क्लेश पेदा थाय छे, वल्के घणीवार श्रोता विपरित परीणामी बनी सदाने माटे धर्मश्रवण करवानुं छोडी दे छे. एटले यत्किंचित् पहेलानो भाव होय तेमां पण हानि पहोंचे छे, एव उपदेशकने तेटलो

समयें व्यर्थ जवाथी पठन–पाठनादिमा पण व्याघात पहोंचे छे. अतएवं आचारांगमा पर्षद् जनस्वभाव अने धर्मरुचि विगेरे श्रोता सबंधी भावो जाण्या शिवाय उपदेश करवानी खुल्ली मनाइ करी छे निष्कर्ष–आचार्य–देश, काल, जनस्वभाव, लोकोनी अभिरुचि विगेरे वातो जाण्या वगर जे धर्मोपदेश करे ते शून्यरूप ज परिणामे–बहुधा अनर्थ करे, माटे अहीं ग्रंथकर्त्ता भार दइने जणावे छे के–" बालादिभावमेवं सम्यग्विज्ञाय " बराबर बाल विगेरेनु प्रथम धर्मोपदेशके स्वरूप जाणवु ते जाण्या पछी ज धर्मोपदेश करवो. शिवायने शास्त्रोमा उटपैद जेवा गण्या छे आ उपदेशको पण हलदर-नो टुकडो मलवाथी गांधी थइ बेसे तेवा तो न ज होवा जोइये. एटले एकाद ग्रंथ के चरित्र, अमुक लेख के भाषण, छुटक थोडाएक श्लोको मुखे याद करी लीधा अने पछी उपदेशकनो इल्लो लइ लोकोने उपदेश आपवा दोडी जाय तेवा न जोइये; किन्तु आचार्य कहे छे के–" गुरुणा " गुरुपणाना यथा-स्थित गुण जेमा होय, जेमके–धर्मज्ञो धर्मकर्त्ता च, सदा धर्मपरायण. । सत्त्वेभ्यो धर्मशास्त्रार्थदेशको गुरुरुच्यते ॥ १ ॥ " धर्म जाणकार, धर्मकर्त्ता, नित्य धर्ममा ज तत्पर, तथा भव्यात्माओने धर्मशास्त्रनो उपदेश अर्पनार गुरु कहीये " परमार्थ के–स्वशास्त्र अने परशास्त्रना ज्ञाता तथा नित्य धर्ममा ज दत्तचित्त एवा गीतार्थ महापुरुषो शिवाय अन्ये धर्मोपदेश आपवा बेसवु ए केवल धर्म अने श्रोताने

उत्पथमा दोरी जवानु ज कारण बने छे निदान के-आजे ओवा वक्ताओ शासनमा केवो गोटाळो पेदा करी रह्या छे ते नजरे ज घणी वखत आपणे अनुभवीये छीये. व्यसन, अभक्ष्य अने पौद्गलिक मोहमा राचीमाची रहेता उपदेशकोए काई शासननी ओछी खराबी नथी करी अतएव-हितार्थीए आचार्यना उपरोक्त गभीर कथन पर खास ध्यान आपवानी जरुर छे. वधुमा ग्रथकर्ता जणावे छे के—बाल्यादिभाव जाण्या पछी धर्मोपदेश करवो ते पण एवी रीते के-"तदनुसारेण" एटले बालादिकोने हितकारी थाय परमार्थ-बाल विगेरे धर्मोपदेश श्रवण करी पोतानो बालभाव समजी तेनो त्याग करी बुधपणु प्राप्त करे. टीकाकार कहे छे के-" यस्य यथोपकाराय सपद्यते देशना तस्य तथा विधेया " " जेने जे प्रकार धर्मदेशना करवाथी उपकार थाय तेने ते प्रकारे धर्मदेशना करवी " अर्थात् जीव आदि एक पण तत्त्वने जे समजता नथी तेवाओ सामे सूत्रोना गहन भावो कथन करवा बेसवु अने गहन तत्त्वोना शोखीनो पासे राजा राणीनी कथाओ करवा बेसवु, धर्मना खरा मर्मने नहीं जाणनार पासे लाबा लाबा तत्त्वोना व्याख्यानो करवा ए सर्व अनुचितपणु पेदा करे छे, माटे, अने मूलमा 'हि' ए शब्द होवाथी हितकारी थाय तेवो ज उपदेश आपवो पण अन्यथा प्रकारनो उपदेश न आपवो ए खास उपदेशके ध्यान राखवु जोइए. स्पष्ट शब्दोमा कहीये तो अहितकर उपदेश आपवा करता

उपदेशक मौन धारवु, उपदेशकपणानो मोह छोडी देवो ए वधारे उचित गणाय, बल्के लाभकारी लू थाय, अने तेम करवाथा पोताने हानि थती होय तो अवश्य ग्रथकारना कथन प्रमाणे प्रथम तेवु उच ज्ञान प्राप्त करवा कम्मर कसवी अने पछी उपदेश करवो जेथी उपदेशकनो मनोरथ सफल गणाय

उपर दर्शित विषयनी अ वजु पुष्टि माटे ग्रथकर्त्ता आगळ वधीने अधिक खुलासो करे छे—

यद्‌ भाषित मुनींद्रै· पाप
खलु देशना परस्थाने ।
उन्मार्गनयनमेतद्‌
भवगहने दारुणविपाकं ॥ १४ ॥

मूलार्थ—परमज्ञानीयोए–अन्यने उपकारी धर्मदेशना अन्यने आपवामा निश्चयथी पापकारी कही छे, कारण के–अन्य योग्य देशना अन्यने आपवाथी उन्मार्गमा लइ जइ भवसमुद्रमा दुरन्ती भयकर कटुकफल आपनारी थने छे

स्पष्टीकरण—१३ मा श्लोकमा जे वात कही छे तेनुज अहीं ग्रथकार स्पष्टीकरण करे छे अन्य योग्य देशना अन्यने आपवामा सर्वज्ञो पाप कहे छे, अर्थात्–बाल योग्य देशना मध्यमने, मध्यम योग्य बुधने, बुध योग्य बाल अथवा मध्यमने अने मध्यम योग्य बालने ए रीते धर्मदेशना करवामा

महापाप कह्यु छे. व्यवहारमा पण जेटली अने जेवी लायकात होय ते प्रमाणे ज अधिकारो अपाय छे, अन्यथा आपवामा देनारने नीचु देखवु पडे अने लेनार तेनो डायरशाही उपयोग करे ए वात काइ छानी नथी तद्वत् अहीं पण वुध विगेरे योग्य देशना-धर्मस्वरूप बाल आदिने आपवाथी तथा बाल आदि योग्य धर्मस्वरुप वुध विगेरेनी पासे कथन करवाथी जे लाभ कल्याणना पथे पहोंचवानो थवो जोइये ते न थता उलटो धर्मश्रद्धा खसेडवानु बने छे एटले नितान्त ते लोको पतित परिणामी थइ धर्म पर अने उपदेशक आचार्योना प्रति अप्रहुमानी थइ बोलवा माडे छे-"शु व्याख्यानमां जइने करीये ? त्या तो झीणु झीणु कताय छे, काइ समजातु नथी, समय नकामो जाय छे केवल राजा राणीनी वातो वंचाय छे" विगेरे विगेरे अतएव मूलकर्त्ता कहे छे के-आवी धर्मदेशना महापापकारी थाय "खलु" निश्चयथी पाप पेदा करे छे, एटलु ज नहीं, किन्तु "उन्मार्गनयन" आवी धर्मदेशना श्रोताने उन्मार्ग तरफ खेंची जाय छे. दाखला तरीके जेम वुधजनो वेशने अप्रधान माने छे तेमा मुख्यतया धर्म मानता नथी, ज्यारे बालजीवो तेमा धर्म माने छे प्रधानतया ते धर्म छे एम समजी वेशने नमस्कार करे छे, पूजे छे, बहुमानथी माने छे, हवे बालजीवो सामे वेशमा धर्म नथी, ते तो अप्रधान छे, कारण के पासत्थाओ अने भाडो पण पोताना स्वार्थ माटे साधुवेश धारण कर छे, पण एतावन्मात्रथी

तेओ काइ धर्मी कहेवाय नहीं किन्तु अधर्मनेज वधारे सेवे छे आ रीते कथन करवाथी बालजीवो जे वेशना अनुरागथी यत्किंचित् धर्म साधता होय, क्रमशः अधिक धर्म पामता होय तेनो त्याग करी तेओ पण वेशने अबहुमानथी जोवा शीखे, निंदता शीखे छे, अने तेम थवाथी बिचारा बालजीवो धर्मभ्रष्ट बनी अपरिणामी अथवा विपरीणामी बने ए स्वाभाविक छे. आ पाप केवल योग्यने योग्य धर्मदेशना न देवाथी थाय छे, यावत् ग्रंथकार कहे छे के-छेवटे "भवगहने दारुण-विपाक" उपरोक्त प्रतिकूल धर्मदेशना ते ते लोकोने संसार-समुद्रमा इजाडी भयंकर कडुक फल अर्पनार बने छे. परमार्थे वे-श्रोता अने वक्ता बन्ने आ रीतनी धर्मदेशनाथी भवसमुद्रमा अथडाय छे अरे! वक्ता तो अधिकतया कडुक फल पण उपार्जन करे छे, कारण के-खरो विचार तो प्रथम वक्ता-नेज करवो जोइये. ज्ञान विना धर्मदेशना आपवानो साहस करवो तथा प्रभुज्ञाननो अनादर करवो ए वक्ता माटे महापाप-कारी केम न कहेवाय ? खरखर व्यवहारमा पण कायदानो जाणकार थइ कायदानो अनादर करी गुन्हो करनार वकील बेरिष्टरने ओछी सजा भोगववी नथी पडती ॥

उपरना कथनथी अहीं आश्चर्य साथे बहु शंका पेदा थाय छे के-आचार्यो जे धर्मोपदेश आपे छे ते यदि सर्वज्ञकथितज होय तो ते गमे तेना सामे कथन करवामा आवे एथी ते अनर्थ उत्पन्न केम करी शके ? कारण उपदेश सर्वज्ञदर्शीत

हावाथी अमृततुल्यज गणाय छे, अर्थात्-अमृत गमे ते पुरुष आरोगे एटले आरोगनारने तो अंते लाभज थाय छे. हा, जो उपदेश सर्वज्ञकथित न होय अने ते उपदेश आचार्यो आपे तो उपर कहेल सर्व वातो बधबेसती थाय खरी. अतः आ शकाने निर्मूल करवा माटे हवे आचार्यश्री अहीं स्पष्ट खुलासो करे छे—

हितमपि वायोरौषधमहित
तत् श्लेष्मणो यथात्यतं ॥
सद्धर्मदेशनौषधमेव !
बालाद्यपेक्षमिति ॥ १५ ॥

मूलार्थ—वातरोगीने जे औषध हितकारी–उपकारी थाय–होय तो पण तेज औषध कफरोगीने आपवाथी अत्यत अहितकारी–नुकशान करनार थाय छे एव उत्तम धर्मदेशना-रूप औषध हितकर छता अनधिकारी बाल आदि वर्गने आपवाथी अहितकर ज थाय छे

स्पष्टीकरण—औषध मात्र उपकारी ज होय छे, छता अधिकारि प्रमाणे एटले रोगनु निदान कर्या पछी रोगीने औषध आपवामा आवे तोज ते औषध रोगीने उपकारी थाय छे अन्यथा हितकर पण औषध अहितकारी थाय, ए आपणे सारी रीते जाणीये छीये. दाखला तरीके–जे औषध वात-

स्पष्टीकरण—अत्र आचार्यश्री योग्यने योग्य उपदेश आपवाथी वक्ता-श्रोता उभयने शु लाभ थाय ए वातनो खुलासो करे छे. जेम समय अने प्रकृतिज्ञ उत्तम वैद्य रोगीना रोगनु बराबर निदान करी औषध आपी उभयने महान् लाभ कर छे एव अहीं पण उपदेशक धर्मगुरु आगल कथा प्रमाणे बाल आदि वर्गनु यथास्थित स्वरूप ध्यानमा राखी तेओनी प्रकृति अनुकूल अने ते पण केवल परोपकार बुद्धिए, के जेमा स्वार्थ-भावनो अंश न होय ते रीते यदि धर्मोपदेश करे तो अत्र ग्रथकार कहे छे के "विधिवदिह" एटले विधिपूर्वक बाल योग्य बालने, मध्यम योग्य मध्यमने अने बुध योग्य बुधने ए रीते उपदेश आपे तो वक्ता नितान्तेन श्रोताने धर्मपर श्रद्धा उपजावे छे. परमार्थ के-बाल विगेरे जीवो तथाप्रका रनो योग्य उपदेश श्रवण करी स्वनिष्ठ बालपणु छोडी मध्यम तथा बुधपणु प्राप्त करे छे, जेथी तेओ पोतानु कल्याण सारी रीते साधी शके छे आथी आ जीवो आवा प्रकारना उपदेशना फलथी सन्मार्गगामी उत्तमधर्मी बनी परिणामे सम्यक्त्व पामे छे अर्थात् शुक्लपाक्षिकपणानी दुर्लभ स्थिति प्राप्त करे छे एव वक्ता पण अनेक जीवोने धर्म प्रमाडी पोतानु अभूतपूर्व कल्याण करे छे आचार्यश्री कहे छे के—'**नियमतो**' आवा उपदेशथी निश्चयेन वक्ताओ श्रोताने बोधिलाभ पमाडे छे टुकमा आथी श्रोताओ उत्तरोत्तर पोतानु कल्याण साधता शीखे छे ॥

" उद्देश "

गत अधिकारना अतभागमा आचार्यश्रीए जणाव्युं के—बाल आदि योग्य वर्गने तेओनी योग्यता अनुरूप उपदेशक उपदेश आपे तो ज नियमेन बोधि पमाडे छे आ परथी कया श्रोताने कया प्रकारनो उपदेश आपवाथी लाभ थाय ? ए वात हवे समजवानी नितान्त आवश्यकता कही अतएव ग्रंथकर्ता आ बीजा प्रकरणमा कया कया जीवोने कया कया प्रकारनो उपदेश आपवो तेनु स्वरूप दर्शाववा प्रयत्न करे छे, अर्थात् बीजा अधिकारनो प्रारंभ अने तेनो संबंध आदिमा आ रीते ग्रंथकारे दर्शाव्यो छे.—

> बालादिनामेषां यथोचित,
> तद्विदो विधिर्गीत ।
> सद्धर्मदेशनायामयमिह,
> सिद्धान्ततत्त्वज्ञै· ॥ २–१ ॥

मूलार्थ—बाल, मध्यम आदिनु स्वरूप जाणनार उपदेशक आचार्योए पूर्वे जणावेल बाल आदिने यथोचित रीते उपदेश केवो आपवो ते संबंधमा सद्धर्मनी देशनाविधिनु स्वरूप आ प्रस्तुत प्रकरणमा कहेवाशे अर्थात् जे रीते सिद्धान्ततत्त्वज्ञ पुरुषोए विधि जणाव्यो छे, ते प्रमाणे आचार्यश्री कहशे

" प्रस्ताव अने निर्देश "

स्पष्टीकरण—आ कारिकानो भावार्थ जो के स्पष्ट ज छे तो पण काइक विशिष्ट खुलासो करवानी आवश्यकता छे खरी प्रकरणनो प्रारभ करवा पूर्वे ग्रथकर्ता आचार्यश्री निर्देश करे छे के-आ प्रकरणमा सिद्धान्ततत्त्ववेत्ता महापुरुषोए जे प्रमाणे उत्तम धर्मनी देशना आपवानो विधि अने तेना प्रकारो बाल आदि जीवो माटे कह्या छे तदनुसार अमे पण कथन करीशु, कारण के पूर्व प्रकरणमा कही गया हता के "बाल आदिने योग्य हितोपदेश आपवाथी आचार्य तेओने बोधि पमाडे छे" एटले बाल आदि वर्गनु स्वरूप जाणकार पण उपदेशविधि जो न जाणे तो ते तथाप्रकारनो विधि क्याथी दर्शावी शके ?

" सबद्ध "

निदान के-उपदेशके आ विधि अवश्य समजवो जोइए अतएव पहेलु प्रकरण बाल आदि वर्गनु स्वरूप दर्शावनारु जणाव्यु एटले आ बीजु प्रकरण देशनाविधि स्वरूप दर्शावनारु जणावीशु आ रीते बीजा प्रकरणनो सबध पहेला प्रकरण साथे बराबर घटावी लेवो, कारण के-ग्रथनो विषय योग्य रीते उत्तरोत्तर सुसबद्ध होवाथी ज समुचित ग्राह्य अने पाठ्य थाय, जेथी पाठको पण उपदेशविधि समजी यथोचित रीते उपदेश करवा साथे बोधि पमाडी शके अहीं आटलु

विशेष जाणवु के अहीं जे विधि कहेवामा आवशे ते 'तद्विदो' बाल आदि वर्गनु स्वरूप जाणकार एवा उपदेशक पुरुषोने ज खास करीने उपकारी थशे शिवाय अन्य लोकोए तो आ विषय समनी ध्यानमां राखवानो छे आटलो खुलासो करी हवे आचार्यश्री जणावे छे के—

" पराधीनता अने तेना हेतुओ "

आ विधि हु स्वतत्र कल्पनाथी नथी कहेवानो, किन्तु "सिद्धान्ततत्त्वज्ञै" सिद्धान्त–आगमशास्त्रोना जाणकार, पारगत एवा श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामी जेवा महापुरुषोए जे रीते पूर्वे शास्त्रोमा जणाव्यो छे, ते ज विधि "यथोचितं" यथावत बाल आदि वर्गने उपकारी थाय तथाप्रकार अहीं हु कथन करीश मतलब के–आ विषयमा ग्रथकर्ता पोतानी पराधीनता तथा गिणाज्ञा परिपालनता दर्शावे छे शिष्टत्व प्राप्त्यर्थ अने ग्रथने आदेय बनाववा माटे आ एक उत्तमोत्तम मार्ग छे के जे आचार्यो पूर्वपुरुषना पथे चाली वस्तु कथन करी पोतानी पराधीनता दर्शावे छे, तथा जे लोको उपदेश अने वस्तुनो निर्देश शास्त्रोमा पोतानी स्वतत्र मतिकल्पनाओ मुख्य करी कथन करे तो ग्रथकर्ता छद्मस्थ होवाथी अवश्यमेव स्खलित थाय अने दोषमिश्रीत ज व्याख्याओ करे, कारण के ज्या छद्मस्थो अल्पज्ञ होइ मर्यादित ज्ञान धरावे छे त्या तेओ निर्दोष अने अविरोधी कथन क्याथी करी शके ? परमार्थ के–सदोष तथा विसवादी ज वस्तुनु प्ररूपण करे छे. आ बाजु प्राकृत लोको

तो श्रद्धालु, विश्वासु अने अतिअल्पज्ञ होवाथी ग्रंथकर्त्ताना वाक्योपर ज निर्भर रहे छे. निदान के-एकान्त आदेयरूपे माने छे. आथी यथाज्ञा प्रमाणे वर्तन करी परिणामे ते लोको कल्याणना बदले विश्वासथी स्वात्मानु अकल्याण ज करे एटले आवु महत् पाप ते स्वतंत्र आचार्यनी बुद्धिथी ज पेदा थयु, एम विनासकोचे मानवु जोइए अतएव सज्जन अने शिष्टनो ए वास्तविक धर्म छे क पूर्वपुरुषना पथे चाली तेवी वस्तु-तत्त्वनी प्ररूपणा करवामा पराधीनता ज दर्शाववी-राखवी. निष्कर्ष के-अल्पज्ञे सर्वज्ञोना अने महद् ज्ञानीओना वचनाधारे पदार्थनी व्याख्याओ करवी ए न्याय्य गणाय

अहीं मूलमा "अथ" शब्द एटला माटे ज ग्रंथकर्त्ताए धर्यो छे के-आ आगलनी आर्याओथी साक्षात् दृश्यमान एवी सद्-धर्मनो देशनाविधि हु जणावीश जे विषय अनंतरपणे समी-पमा ज-साक्षात् देखाडवानो होय छे त्या ज अथ शब्दनो प्रयोग थाय छे हवे उपर देखाडेला सबधना अनुसार बाल, मध्यम अने बुध पैकी धर्मदेशनामा प्रथम बाल योग्य धर्मदेश-नानो प्रकार अने उपदेशके पण तथाप्रकारे ज वर्तवु जोइये, ए वात आचार्यश्री जणावे छे—

बाह्यचरणप्रधाना,
कर्त्तव्या देशनेह बालस्य ॥
स्वयमपि च तदाचार-
स्तदग्रतो नियमत सेव्य ॥ २-२ ॥

मूलार्थ—उपदेशके अहीं उपदेशविधिमा प्रथम तो बालवर्ग पासे बाह्य चारित्रनी प्राधान्यता एटले मुनिवेशनी मुख्य प्रशंसा जेमा होय एवी देशना आपवी, तथा उपदेशके पण नियमेन तेओनी सामे तेवो ज आचार पालवो जोइये.

"अयोग्य उपदेशनु परिणाम"

स्पष्टीकरण—' बाह्य एवो मुनि आदिनो वेश, बाह्य एवी अन्य क्रियाओ तेमज बाह्य आचार–वर्तन देखीने जेओ खुशी थाय, धर्म पामे ते बालवर्ग" आ वात गत प्रकरणमा आचार्यश्री कही गया छे परमार्थ के–बालजीवो बाह्याडंबरमा वधार श्रद्धालु होय छे, कारण के–तेओने विशिष्ट विवेक तथा दीर्घ विचार न होवाथी तेम बनवु उचित छे. निदान के–बालवर्गनी आवी स्थिति होवाथी यदि उपदेशक धर्मोपदेश आपता आ लोको सामे " बाह्य वेशनी असारता, अन्य बाह्य क्रियाओनी गौणता, एव बाह्य वर्तननी आडंबरता, तेमा धर्म नथी, पासत्थाओ, वेशविडंबको अने भांडो पण आजीविका माटे, अन्य स्वार्थ माटे तेवो वेश, तेवी क्रियाओ तथा तेवु आचेष्टुव वर्तन करे छे. छता आ लोकोमा धर्मनो लवलेश देखातो नथी; माटे धर्म तो तत्त्वमार्गमा अने आत्मानी शुद्ध परिणतिमा ज होय छे, शिवाय वेश के क्रियाओ तो एकडा वगरना शून्य जेवी ज समजवी " आ रीतनो उपदेश अपाय तो नितान्तेन तेवु ज एकान्त पोषण

थाय तो ते बाललोको तुरतज धर्म प्रति मंद आदरवाला यइ धर्मशून्य–अश्रद्धालु बनी जाय छे अरे! विमुख परिणामवाला थाय तो पण आश्चर्य नहीं

" उपदेश प्रकार "

अतएव ग्रंथकर्त्ता स्पष्ट कहे छे के–" इह " उपदेश विषयमा उपदेशक ते बालजीवो विपरिणामी न बने, अश्रद्धालु न थाय माटे तेओनी प्रकृति अनुकूळ क्रमश गुणवृद्धि थाय, तेओ सन्मार्गारूढ बने, तेओनी धर्मप्रीति वधे तेम बाह्यवेश, बाह्यक्रिया अने शाह्यवर्तननी प्राधान्यता जेमा होय तेवो धर्मोपदेश उपदेशके आपवो, तथा वक्ताए पण वर्तन अने क्रियाओ तथाप्रकारे ज ते लोको सामे प्रेमपूर्वक आचरवी, जेथी ते लोको आधिक्येन धर्मश्रद्धालु बनी उपदेशक पर अनुरागी पण थाय अन्यथा आ लोको उपदेश अन्यथा प्रकारनो तथा आचरण भिन्न प्रकारनु निहाळी शीघ्र ही शकाशील बनी अविश्वासु थाय छे ते ज उपदेश अने उपदेशक प्रति मंद आदर के अनादरवाळा बनी परिणामे धर्ममा पण किंचित् अदृढ परिणामी यइ जाय निदान के–'परोपदेशे पाण्डित्य' ए वाक्यनो लोको तुरतज उच्चार करे,–' पोथीना रिंगणा ' जेवु कहे. अवएव अहीं ग्रंथकर्त्ता भार मूकाने कहे छे के— " नियमतः सेव्यः " नियमेन वक्ताए पण जेवो उपदेश आपवो तथाप्रकारे ■ वर्तन सेववु, एटले उपदेश अने वर्तनमा द्विधाभाव न करवो जोइए, अर्थात् उपदेशके " चित्ते वाचि

क्रियाया च, साधुनामेकरूपता " ए ज नियमनु सम्मु-
चित रीते पालन करवु न्याय्य गणाय.

" ग्रथकर्त्तानो आशय "

अत्र 'उपदेशके बालजीवोने बाह्यवेश तथा बाह्याचारनी प्राधान्यतावाली धर्मदेशना आपवी' आवु जे आचार्यश्रीए जणाव्यु तेनु कारण आ बाललोको आवा उपदेशथी अनुक्रमे धर्म पामे ए ज समजवु, परतु आवा उपदेशथी ते लोकोने अधारामा अथवा बालस्थितिमा राखवा एवो आशय आचार्यश्रीनो छे एम न समजवु किन्तु बालकने मिठाइनी लालच आपी जेम कडवा ओषधनु पान करावाय छे, ए न्याये अहीं पण आ लोकोने जे वस्तुमा अधिक प्रेम तथा श्रद्धा छे ते वस्तुना गुणो दर्शावी तेमा तेओने बराबर सुदृढ करी, तेओनी विचारशक्ति अने विवेकशक्तिने खिलववी तेमज अनुक्रमे द्रव्यक्रिया अने भावक्रियानु स्वरूप, आत्मानी विचित्र परिणतीओ, अध्यात्मतत्त्वनु दिग्दर्शन, आगमतत्त्व, व्यवहार अने निश्चयनयनी मान्यता विगेरे जणावी बाह्यवेश, बाह्यक्रियाओनी मुख्य गौणता, क्रियानो खाली पण बाह्य आडबर क्या अने केवा केवा प्रकारनो होय छे ? पासत्थाओ पण केवु वर्तन तथा क्रियानु परिशीलन करे छे ? विगेरे दर्शावी, केवल बाह्यवेश आदिमा बालजीवोनो स्थापित एकान्त अनुराग उठावी तत्त्वमार्गमा भावप्राधान्य द्रव्यक्रियाओमा स्थापन-

कराववो. बालजीवो मध्यमपणु पामी अनुक्रमे बुधपणु प्राप्त करे, आत्मानी परमविशुद्धि करता शीखे तथाप्रकारे उपदेशके प्रयत्न करवो जोइए. तोज उपदेशकनो उपदेश प्रभुआज्ञाकारी बनी स्वपरने यथारूपे उपकारी थाय, एज आचार्यश्रीनो अहीं गर्भित परमार्थ छे. अतएव अहीं उपदेशानुकूल वर्तन राखवानु पण उपदेशक माटे आचार्यश्रीए भारपूर्वक जणाव्यु छे

आ प्रकारे उपदेशकने भलामण करी हवे बालवर्ग लायक देशनानु स्वरूप ग्रंथकर्ता पांच आर्या श्लोकथी विस्तृतपणे अहीं दर्शावे छे—

सम्यग्लोचविधान
मनुपानत्कत्वमथ धरा शय्या ।
प्रहरद्वय रजन्या,
स्वाप शीतोष्णसहन च ॥ २–३ ॥

मूलार्थ—सम्यक्–सर्वज्ञ आज्ञानुसारे छ छ मासे मुनिपोए लोच करवो, उपानह (जोडा) पहेरवा नहीं अने पृथ्वी पर शयन–संथारो करवो, तथा रात्रिना बे प्रहर सुधी एटले बीजा अने त्रीजा प्रहोरमा निद्रा लेवी एव शीयाळे, उन्हाळे शीत तथा उष्ण आदि परीषहो सहन करवा जोइए.

" धर्मप्रासिनु कारण "

स्पष्टीकरण—बालजीवो सुन्दर एवो मुनियोनो बाह्यवेश

तथा बाह्य कठिन आचारो निहाळी खुशी थवा साथे धर्म पामे छे, तेनु मुख्य कारण आ छे. प्रथम तो आ लोको खानपान, गाडी, वाडी अने लाडीनी मोजमजाहमा, कपडा अलंकारोमा, शरीरनी शुश्रूषामा ज आनंद माने छे, जेमा अतिकष्ट के अल्प कष्ट होय तेवी क्रियाथी, आचारोथी धुजी उठे छे, पोताना आत्माने लेश पण कष्ट थाय तेनाथी त्रास पामे छे, अशक्य अनुष्ठानो माने छे, आथी जे लोको कष्टसाध्य दुर्वह क्रिया के आचारो पाळता होय तेना दर्शनमात्रथी आ लोको 'अहो ! महान् भयंकर अशक्य दुर्वाह्य आ लोको धर्मसेवन करी रह्या छे.' एम उचारी नमी पडे छे, गळगळा थइ जाय छे, बहु बहु प्रशंसा करे छे, मुनियोना बाह्याचारो प्रति आ लोको मान बुद्धि धारे छे. अतएव उपदेशके पण आ लोकोने धर्म पमाडवा आ लोकोनी बुद्धि अनुकूल उपदेश आपवो लाभकारी गणाय. ते उपदेश आ रीते आपवो

" बाल उपदेश "

जैन मुनियोनो एवो आचार छे के–शिरमा कोइ विशेष दर्द–पीडा न होय तो छ छ मासे अवश्य साधुए हाथवडे पोताना केश उखेडी नाखवा–लोच करवो. यदि विशिष्ट पीडा थती होय तो एक एक महिने अस्त्राथी मुंडन कराववु अने अधिक दर्द थतुं होय तो उपरउपरथी पखर पखर दिवसे केशो कतराववा गमे तेवी कठण शीत या गरमी पडती होय, पत्थर, कांकरा के कंटकवाळी जमीन होय, लांबी

अथवा दीर्घ मुसाफरी करवानु होय तो पण साधुए पगमा चामडाना अथवा तेवा अन्य प्रकारना जोडा पहेरवा नहीं. उची के नीची, सम के विषम, काकरावाळी के साफ गमे तेवी जमीनमा पलग, खाटलो के गादी–तकिया विना साधुए शयन करवु, मात्र पोतानो उननो के तेवो एकाद बे कपडानो सथारो करी तेना पर शयन करवु जोइए. साधुए रात्रिना चार प्रहर पैकी पहेला अने छेल्ला प्रहरमा स्वाध्याय, ध्यान अने ईश्वरभक्ति करवी तथा बीजा अने त्रीजा प्रहरमा एटले वधारेमा वधारे छ घडानी निद्रा लेवी उचित छे. जो के साधुए प्रमाद करवो न जोइए तथापि शिथील एवु शरीर विना निद्राए अवश्य अस्वस्थ थइ जाय, अधिक आलस आवे ने अनुक्रमे धर्मसाधन छुटी जाय छे, एव दर्शनावरणीयकर्मना उदयथी निद्रा पण जरुर आवे छे, माटे अहीं बे प्रहरनी निद्रा जाणवी, परतु रात्रिना आठ अने दश घडानी निद्रा, दिवसना बे बे कलाकोनी निद्रानो प्रमाद सेववो ए तो कदापि उचित न गणाय. फरी साधुए शीत, उष्ण अने वर्षा ए त्रणे ऋतुमा पोतानी शक्ति माफक सम्यग् रीते अनुकूल–प्रतिकूल शीत तथा उष्ण आदि परीषहो सहन करवा जोइये मस्तक पर छत्र धारवु न जोइए, कोइ पण वाहन आदिमा बेसवु न घटे अत्र जे परीषहो सहन करवानु मुनियो माटे कह्यु छे ते त्या सुधी ज के पोतानी शुभ परिणतीओ चडती रहे, शरीरनी शक्तिओ बनी रहे, आर्त्तध्यान सबधी क्लिष्ट परिणामो उपजे नहीं, वधुमा कोइ पण रीते

પ્રથમ જે ચારિત્ર પરિણામો હતા તેમા ક્ષતિ ન પહોંચે કિન્તુ વૃદ્ધિ જ થાય તથાપ્રકારે સહન કરવુ, આચરણ સેવવું જે આચારોનુ સેવન કરવા છતા આત્મા ઘણો ઘણો અધિક મલીન થતો હોય, ક્લિષ્ટ પરિણતીઓ પામતો હોય, વધુ કર્મબંધ કરતો હોય તો તે કઠીણ આચારોનુ પાલનપણુ નિષ્ફળ જ સમજવુ અરે! એક પ્રકારે કર્મબંધમા હેતુભૂત સમજવુ, માટે જ અહીં મૂલમા ગ્રંથકર્તાએ ' સમ્યક્ ' એ પદ આપ્યુ છે અર્થાત્ શુભ ભાવોથી આચારોનુ પાલન કરવુ

ફરી એ જ વિષયને ગ્રંથકાર વધુ સ્પષ્ટ કરે છે—

षष्ठाष्टमादिरूप चित्र,
बाह्यं तपो महाकष्ट ।
अल्पोकरणसधारण च,
तत् शुद्धता चैव ॥ २–४ ॥

મૂલાર્થ—સામાન્ય જનો જેને દુઃખથી કરી શકે તેવા નાના પ્રકારે છઠ્ઠ અઠ્ઠમ આદિ બાહ્યતપનુ આચરણ કરવુ, એવ પોતાનો નિર્વાહ થઇ જાય એટલા જ અલ્પ વસ્ત્રપાત્ર આદિ આધાકર્મી વિગેરે દોષો રહિત ચારિત્રના ઉપકરણો ધારણ કરવા

" તપસ્વરૂપ "

સ્પષ્ટીકરણ—જેનાથી આત્મા જાજ્વલ્યમાન થઇ પોતાની

साथे लागेला अनादिना निकाचित–अनिकाचित बन्ने प्रकारना विविध कर्मो प्रजाली प्रजाली भस्मीभूत कर अथवा जे कर्मोने तपावी तपावी आत्मा आत्माथी अलग करे तेने शास्त्रमा तप कहुं छे परमार्थे के–आत्मा शुभ एवा परमविशुद्ध परिणामोपूर्वक अनेक विचित्र खानपान अने तृष्णानी कांइ पण वाञ्छा विना केवळ कर्मक्षयनी इच्छाथी ज पोतानी शक्ति अनुसारे निरोध करे. एव इंद्रियो तथा मन, वचन, कायाना प वित्र योगोने बाधा न पहोंचे, खण्डित न थाय एवी परम विशुद्ध क्रियाने सुविशुद्ध तप कयो छे. आ प्रकारनो ज तप कर्मनो क्षय करी आत्माने ब्रह्मस्थानमा स्थापन करे छे, ज्यारे आ शिवायनो अमुक प्रकारनी लालसाओथी बनेलो तप मात्र आ जन्म के पर जन्ममां ते ते लालसाओनु ज पोषण करी कृतकृत्य थाय छे आथी ज महर्षिओए आ बन्ने तपना अनुक्रमे निष्काम अने सकाम एवा नामो आप्या छे आ बन्ने तपो कष्ट अतिकष्टकारी होवाथी सामान्य जनता करी शकती नथी, एटले जे कोइ करे छे तेमा तेओ मुग्ध थाय छे, तथापि सकाम तप तो घणाए लोको स्वार्थ–लोभथी कर छे ने तेमा पोते क्लेशने पण गणता नथी. जेमके–पैसा माटे, विषयो माटे लोको खानपान छोडी दे छे, अति गरमी के शीत विगेरे सहन करे छे, चार–पाच कलाको सुधी एकी पगे खडा रहे छे, रोगादि कारणे आठ, दश, पन्नर दिवसना उपवासो कर छे, एवी ज रीते आ अने जे लोको परलोकमा राज्य आदिना लोभथा विविध कष्टो सहन करे छे ते सर्वने सकाम तप कयो छे आवो तप तो घणाये

करे छे एटले ते काइ दुर्लभ नथी, परतु निष्काम एवा तपनी ज प्राप्ति दुर्लभ अने आश्चर्यकारी शास्त्रोमा जणावी छे

"तपना भेदो"

अत्र निष्काम एवा तपना बाह्य तथा आभ्यंतर ए बे भेदो तथा उभयना छ बाह्य अने छ आभ्यतर मली द्वादश (बार) भेदो कह्या छे. जे तप बाहेरथी शरीर आदिने सुकावी सुकावी क्षीण कर, लोको जेने सारी रीते देखी शके ने आश्चर्य पामे ते बाह्य, अने जे अदरना कषाय तथा रागादिकने क्षीण करी विषयादि वासनानो प्रलय करे तथा बहुधा सामान्य जनता जे तपने देखी न शके ते तपने आभ्यतर तप कह्यो छे आ उभय तप पैकी आभ्यतर तप एकान्ततः कर्मक्षयकारी होवाथी तेने प्रधान गण्यो छे, ज्यारे बाह्य तपथी तो सुविशुद्ध परिणामो वर्तता होय तो कर्मक्षय थाय अने न वर्तता होय तो न थाय माटे आ तपने तेटला अशे गौण कह्यो छे तथापि एटलु तो चोक्कस जाणवु के–बाह्यतप जनताने आश्चर्यमा नाखी बालजीवोने मुग्ध जरुर बनावी शके छे. निदान केबन्ने तप कल्याणकारी होवाथी सर्वांशे आदरणीय जाणवा कर्मक्षयना अर्थीए तो आ तपो अवश्य आचरवा जोइये

"विचित्र दलीलो"

अहीं आ तप विषयमा घणाओनी एवी दृढ मान्यता छे के–आवो तप करवाथी आत्मा जरुर दुःखी थाय, अदरना

जतुओ खोराक न मळवाथी मरी जाय अने भूखे मरवुं एवा तपमा धर्म केम समवे ?

" समाधान "

निदान के—आवा तपमा धर्म न ज घटे जरूर,—यदि अनिच्छाथी तप कर्यो होय, हु भूखे मरु छु एवा विकल्पो अनुभवता होय तो तो ते तपमा धर्म न समवे ए न्याय्य छे; परंतु जे तप खास जीगरना प्रेमथी कर्यो होय, कर्मक्षय अने तेम करवु ते मारो एकान्त सुविशुद्ध धर्म छे, देहनो ममत्व अल्प करवानो आ मुख्य मार्ग छे आवा विचारोथी यदि ते तप करीए तो आत्मा दुःखी क्याथी थाय ? एमा तो आत्मा एकान्त सुखी ज मनाये छे अने सर्वज्ञ भगवतोनी आवा अद्वितीय तप माटे ज आज्ञा छे अदरना जतुओना बचाव माटे ज मनुष्यो खोराक स्वीकारे छे, आ दलील तो हास्यास्पद जेवी छे, कारण जो एमज होय तो शरीरने निरोगी बनाववा लोको दवाओ, विरेचनादि स्वीकारी शामाटे अदरना जतुओने नाश करता हशे ? केवल शरीरमा अने बाहिर जीवडाओ केम वधवा देता नथी ? तथा शु लोको जतुओने आराम पहोंचाडवा ज आहार ले छे के पोताना शरीरनी पुष्टि माटे ? यदि जो आहारथी पोतानी पुष्टिना बदले एकान्त जतुओनी वृद्धि थइ शरीरने हानि पहोंचती होय तो प्रत्येक मनुष्यो शु आहार लेवानु पसद करे खरा ? विगेरे विगेर विरोधी दलीलो उपर बहु विचार करवो घटे छे फरी शरीरमा जतुओनी उत्पत्ति

आहारना अपचाथी ज थाय छे, एटले शरीरमां काइं जतुओए पहेलाथी घर कर्यु नथी होतु हवे रही भूखे मरवानी दलील. आनु समाधान उपर करी गया छीए ज्या भावथी तप करवानो होय त्या भूखे मरवानु कोण कही शके ? ए तो जबरजस्तीथी अगर काइ लालसाथी आहार छोडवानो होय त्या ज आ दलील टकी शके

" उपवास "

आथी सिद्ध थयु के-आत्मार्थीए तप अवश्य करवो जोइए अतएव साधुए क्रमे क्रमे देहनो मोह अल्प करवा महाकष्टकारी एवा छठ्ठ (बे उपवासो), अठ्ठम (त्रण उपवासो) आदि विविध प्रकार तप करवा घटे अहीं जैन शास्त्रनी मर्यादा प्रमाणे प्रथम एक वखत भोजन करी बीजा दिवसे अन्न, जल, रसादिष्ट वस्तुनो अने मिठाइ आदिनो अथवा जळ सिवाय सर्वेनो सर्वथा त्याग करवो अने त्रीजा दिवसे एक वखत मात्र भोजन करवु आवा त्यागने चतुर्थभक्त उपवास एवी संज्ञा शास्त्रोमा कही छे, तो पण सूर्योदयथी बीजा सूर्योदय पर्यंत उपरोक्त भोजनादि वस्तुनो त्याग करवो तेने उपवास कह्यो छे अत्र आटलु तो उपवास करनारे ध्यान राखवु के पहेला दिवसे सध्यासमये जल विगेर छोडी देवा, एव त्रीजा दिवसे सूर्योदय बाद ओछामा ओछी ४८ मीनीट पर्यंत काइ पण मुखमा न नाखवु अर्थात् नवकारसी करवी एटले आ उपवास उचित गणाय, साधुए

आवा विचित्र तपो अवश्य करवा जोइए, जेथी देहनो मोह अल्प थवा साथे नितान्त कर्मक्षय थाय.

" उपकरण "

तथा साधुए पोताना निर्वाह अर्थे वस्त्र, पात्र, कामली, रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि उपकरणो एटला ज राखवा के जेनाथी निर्वाह थवा साथे भारभूत थइ मूर्च्छाकारी न बनाय ते पण अल्प कींमतना ज राखवा जेथी कोइने उठाववानी इच्छा न थाय अने पोताने मोह न उपजे आ उपकरणो पण निर्दोष, न्यायथी आवेल अने साधु माटे बनाव्या न होय, पैसाथी खरीद्या न होय तेवा राखवा, यावत् जेथी साधुपणानी शोभा वधे तेवा उपकरणो साधुओए राखवा उचित छे, कारण के ग्रंथकर्त्ताए अहीं ' उपकरण ' शब्द मूक्यो छे तेनो अर्थ ' उपक्रि यते इति उपकरण ' जे उपकार करे ते उपकरण परमार्थ के-जेने धारण करवाथी आत्माने उपकार थाय, आत्मा न्धुरमी थाय ते ज उपकरणो, सिवाय उपधिना बदले उपाधिभूत समजवा

पुन. उपदेशनो विषय प्रकार दर्शावे छे—

गुर्व्वी पिंडविशुद्धिश्चित्रा,
द्रव्याद्यभिग्रहाश्चैव ।
निकृतीनां सत्यागस्तथैक-
सिक्थादिपारणक ॥ २–५ ॥

मूलार्थ—साधुए आहारादिनी विस्तारथी शुद्धि करवी ने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आश्रित विविध अभिग्रहो धारण करवा, तथा नित्य छ विगयोमांथी अमुक विगयनो त्याग करवो एव तपना पारणे एक सिक्थ, बे सिक्थथी पारणु करवु

स्पष्टीकरण—जैन साधुओ हनन, पचन, क्रयण ए त्रण कोटीना त्यागी होय छे, अर्थात् साधुओ कोइ जीवने मारे, मरावे अने मारताने सारो समजे नहीं, अग्नि आदिनो आहारादि माटे आरभ करे, करावे तथा करताने सुदर समजे नही एव विक्रयथी कोइ वस्तु ले, लेवरावे नहीं—आवो कठोर आचार साधुओनो होवाथी साधुओए शरीरना निर्वाह तथा धर्मसाधनार्थे गृहस्थे स्वकुटुम्ब अर्थे तैयार करेल भोजन अने पाणी आदिमाथी माधुकरी वृत्तिये उचित समये अल्प अल्प आहार ग्रहण करवो एटले जे आहारमा शास्त्रकथित आहार सबधी ४२ दोषो न लागे एवो ज आहार मुनियो माटे लेवा योग्य कह्यो छे, अने ते सिवायनो आहार अकल्प्य कह्यो छे. अहीं आहारना १६ उद्गम दोषो, १६ उत्पादना दोषो, १० एसणा अने ग्रासेसणा दोषो मली ४२ दोषो पिंडनिर्युक्तिमा कह्या छे. आनु विस्तारथी स्वरूप बालश्रोता सामे उपदेशके करवु, तथा द्रव्याद्यभिग्रहाश्चैव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आश्रयी ४ प्रकारना अभिग्रहनु स्वरूप कथन करवु. अर्थात् उत्तम मुनियो रोज नाना प्रकारना अभिग्रहो धारण करे

जेमके–द्रव्यथी अमुक ज आहार, क्षेत्रथी अमुक घरनो अगर अमुक जग्याए, कालथी अमुक समये अने भावथी स्त्री अथवा पुरुष के बालक अमुक वयना, अमुक रंगना कपडा पहेरेला होय–आ रीते अभिग्रहो धारण करी अग्लानभावे, अप्रमादपणे तेनो निर्वाह करे वली नित्य दुध १, दहीं २, घी ३, गुड ४, तेल ५, तळेल चीजो ६–आ ६ विगयमांथी अमुक विगयनो त्याग करे, अने उपवास, छट्ठ, अट्ठम आदि तपस्याने पारणे एक सिक्थ, बे सिक्थ आदि आहार अंगीकार करे. आ रीते मुनि–आचारनुं सुंदर स्वरूप प्रतिपादन करवुं, जेथी बालश्रोता सारी रीते धर्ममार्गमां आवी शके

पुन आचार्यश्री जणावे छे—

अनियतविहारकल्प
कायोत्सर्गादिकरणमनिशं च ॥
इत्यादि बाह्यमुच्चै
कथनीयं भवति बालस्य ॥ ५–६ ॥

मूलार्थ—साधुए अनियमित रीते विहार करवो तथा हम्मेशां कायोत्सर्ग विगेरे उचित क्रियाओ जरुर करवी आ विगेरे सर्व बाह्याचार सबंधी उपदेश बालजीवो पासे कथन करवो.

" अनियतविहार "

स्पष्टीकरण—मुख्यतया साधुए एक जग्याए अधिक काल रहेवु न जोइए. संसारत्याग कर्या पछी, मोहना बंधनो छोड्या पछी फरी एकज स्थानमा रहेवाथी साधुओने अनेक प्रकारना दोषो लागु थाय छे. प्रथम तो एक स्थानमा लांबा काल पर्यंत रहेवाथी लोको साथे, पदार्थो साथे अने स्थान साथे जरुर मोह बधाइ जाय छे यावत् आ मोह पाछळ अनेक खटपटो अने प्रपंचो पण उभा थाय छे. एटले साधुपणु स्वीकार्या छता एक संसारी करता पण अधिक विटंवणाओ आ महात्मा (!) ने सहवी पडे छे, एव लोको अति संवधमा आववाथी धर्मगुरुपणानी भावनानो त्याग करी एक सामान्य संबंध धरावता लागी जाय छे. परिणामे निंदापात्र बनी लोकोने धर्मश्रद्धा प्रति स्खलित आशयवान् करे छे अतएव साधुए एक स्थानमा अधिक समय न रहेता भिन्न भिन्न क्षेत्रमा विचरवु जोइये परमार्थ के—" गामे एग राईय णगरे पंच राईय " ए शास्त्राज्ञा प्रमाणे ग्राममा एक रात्रि अने शहेरमा पांच रात्रि जघन्यथी रहेवुं. विशेषमा चातुर्मास सिवाय एक महिनाथी अधिक रहवु न कल्पे यदि शरीर अशक्त होय, रोगादि कारणो होय अथवा तेवा प्रतिकूल संयोगो उभा थया होय तो पण एक महोल्लो छोडी बीजा महोल्लामा, एक उपाश्रयथी बीजा उपाश्रयमा अने छेवटे एक खुणाथी अन्य खुणामा ए प्रमाणे स्थान बदली मासकल्प कर-

वानो विधि अवश्य साचववो जोइए. निदान केत्यागीने एक स्थानमा रहेवु सर्वथा हानिकर छे माटे अहीं " अनियत विहारकल्पः " ए पद ग्रंथकर्त्ताए साधुओ माटे उचित ज कयु छे.

" काउस्सग्ग "

फरी मुनिए हम्मेशा कायोत्सर्ग करवो जोइए. अवलमा तो साधुए नित्य पोतानी समयोचित उचित क्रियाओथी निवृत्त थइ सूत्राभ्यास करवो, करावको, अर्थ आदिने विचारवा, विचराववा, एव लोकस्वरूप, अनित्यादि ससारनी बार भावनाओ, मैत्री आदि समकितनी भावनाओ, पचमहाव्रतनी पचीस भावनाओ, देह अने आयुष्यादिनी स्थितिओ, कर्मनु स्वरूप, आत्मा तथा कर्मनो सबध ने प्रत्येकनु स्वरूप विगेरे पदार्थ पर बहु बहु विचारो करवा, धर्मध्यान अने शुक्लध्यानना पायाओ ध्याववा. बाद शरीरनी मूर्च्छा अल्प करवा, आत्मानु अडग बल प्राप्त करवा, कषायोने निर्बळ करवा, एकान्त स्थानमा, शून्य खडियेर मुकाममा, स्मशान अने अरण्यादिकमा दिवसे अने निशाये कायोत्सर्ग जरुर करवो. एटले जे नियामा पोताना आत्माने स्थिर थवता परिणामवाळो बनावी देहना सस्कारो, शुश्रूषाओ त्याग कराय, गमे तेवा उपद्रवो अर्थात् गजसुकुमालु मुनि माफक प्राणान्तकष्टो पण आवी पडे, डास, मत्सरादि पीडा उपजावता होय तथापि आत्मा पोतानु शुभध्यान त्यागे नहीं; किन्तु परमात्मानु अथवा आत्मस्वरूपनु म

ध्यान धरे मन, वचन अने कायानी एकाग्रता—अविचलता राखी, नासिकाना अग्रभाग पर दृष्टिने स्थिर करी, ऊर्ध्वदेहपणे शरीरनु एक पण रवाडु फफडाव्या विना अप्रमत्तभावे आत्मा स्थिर रहे तेनु ज नाम अहीं कायोत्सर्ग कह्यो छे. 'आवश्यक' सूत्रमा काउस्सग्गनु मुख्य फल 'वर्णातिगिच्छा' कयु छे. जेम देह पर गुमडा विगेरे थया होय तो तेनी मलमपट्टी विगेरेथी शान्ति कराय छे एम आत्मा पर दोषोरूपी जे गुमडा थया होय के जेनी शान्ति प्रतिक्रमणथी एटले वारवार निंदाथी, पश्चात्ताप करवाथी न थाय तेवा प्रबळ दोषो—पापोनो नाश आ काउस्सग्ग ध्यान करवाथी निश्चयेन थाय छे. अतएव छ आवश्यकमा प्रतिक्रमण नामक चतुर्थ आवश्यक पछी आ काउस्सग्ग नामक पाचमु आवश्यक व्रतधारी माटे करवानु सर्वज्ञ भगवते निर्देश्यु छे निदान के—उपरना पापोने आ कायोत्सर्गरूप क्रिया जरुर शान्त—निर्मूल करे छे. अत साधुए हम्मेशा काउस्सग्ग करवो जोइए.

"आसन"

मूलमा 'कायोत्सर्गादि' ए पद आप्यु छे अत्रस्थ आदि शब्दथी 'निषद्याकरणमासेवनम्' टीकाकार जणावे छे. न्यायविशारद उपाध्यायजी महाराज 'आदिना तापनादिग्रहः' कहे छे. अर्थात्—जेम साधुए कायोत्सर्ग हम्मेशा [illegible] एक ज स्थानमा कायाने स्थिर करी

जीवोनो बचाव थाय तेम एक आसने बेसी ध्यानादि पण करवा जोइए. एटले वारवार इधरउधर फरवु न जोइये जेथी जीवोनी विराधनानो प्रसग प्राप्त थाय, अथवा डढासण, उत्कटुकादि आसन वाळी कायानु दमन करवु–कायानो निग्रह थाय ते रीते स्थिर थवु उपाध्यायजीना वचनमा स्वाध्यायादिमाथी निवृत्त थइ खुल्ला स्थानमा नग्न देहे उभा रही चैत्र-वैशाख महीनानी गरमीमा आतापना लेवी, कडकडती ठडीमा कपडा अलग करी खुल्ला स्थानमा ठडी लेवी एटले शीतसहन विगेरे क्रियाओ करवी जोइये, परतु आत्मा आर्तध्यानी न थाय ए वात नितान्त ध्यानमा राखवी

'उपसहार'

आटलु कथन करी हवे श्लोकना उत्तरार्द्धथी ग्रथकर्ता बाल योग्य धर्मोपदेशनो उपसहार करता जणावे छे के–आ सर्व बाल योग्य धर्मोपदेश बाह्य आचार सबधी जाणवो वस्तुत: अहीं जे विस्तृतरूपे बाह्य आचार सबधी उपदेश जणाव्यो ते अने तेने लगतो ज उपदेश उपदेशके बालवर्गने आपवो आ उपदेश बाह्य आचार सबधी ज आपवो जोइये आटलु तो बराबर उपदेशके ध्यान राखवु सिवाय आचार्यश्रीए 'इत्यादि' अहीं आदि शब्द आप्यो छे एटले आदि शब्दथी साधुए जे स्थानमा रहेवु तेनी अने वस्त्रपात्रनी उभय काल बराबर ध्यान राखी पडिलेहणा करवी, उभय काले लागेला दोषनी शुद्धि माटे प्रतिक्रमण करवु, एव सूत्रादिना अभ्यास माटे

रात्रिना पाछला पहोरमा शास्त्रोक्त विधिपूर्वक प्राभातिक-काल ग्रहण करवानी विधि विगेरे क्रिया अवश्य करवी जोइये पुनः महाव्रतोनु पालन, गरम जलनु पान, रात्रिभोजन आदिनो त्याग ए अनुष्ठानो साधुए अवश्यमेव करवा जोइये अहीं दर्शावेला आ सर्व साधुओना बाह्य आचारो जाणवा. निता तेन बालवर्ग बाह्य आचारने निहाळता जेटली ज बुद्धि धरावनार तथा तत्परत्वे अनुरागी होवाथी आ सर्व उपरोक्त उपदेश तेओनी श्रद्धामा वधारो करी धर्ममति प्रबल अनुराग उपजावे ए सभवित ज छे, बल्के वधुमा आवा उपदेशथी उप देशक तेओना हृदयमा ग्रथकर्त्ताना वचन प्रमाणे बोधिबीज प्रकटावी मध्यम अने बुधपणानी अवस्था पर लइ जाय ए काइ अधिकोक्ति न गणाय

आ रीते क्रमा ग्रथकर्त्ताए बाल योग्य हितोपदेश कथो आवा उपदेशथी बालजीवो धर्ममा दृढ आशयवाळा थइ अवश्य क्रमशः मध्यमवर्गमा आवी जाय छे. अतएव आ लोकोने हवे मध्यमवर्ग योग्य उपदेश आपवो जोइए, माटे आ उपदेशनु स्वरूप आचार्यश्री अहीं दर्शावे छे —

मध्यमबुद्धेस्त्वीर्यासमिति-
प्रभृति त्रिकोटिपरिशुद्ध ॥
आयतमध्ययोगैर्हितदं,
खलु साधुसद्वृत्तम ॥ २–७ ॥

मूलार्थ—उपदेशके मध्यमबुद्धिवर्गने ईर्यासमिति आदि पाच समितिनु स्वरूप तथा त्रिकोटिये शुद्ध आदि, मध्य अने अतमा कल्याणकारी एवु साधु सबधी सुदर वर्तननु निश्चयेन कथन करवु

"मध्यमवर्गनी योग्यता"

स्पष्टीकरण—पहला प्रकरणना बीजा अने त्रीजा श्लोकना विवरणमा आपणे तपासी गया के-मध्यमबुद्धिवर्ग बालवर्ग करता बुद्धिमा तथा आचारमा चडतो होय छे, अर्थात तेओ विचारशील होवाथी बाह्य आडबरना खाली भभकामात्रथी खुशी थता नथी किन्तु अदरना शुद्ध आचारोनी परीक्षा करवा माटे पोतानी बुद्धिने दोडावे छे अतएव आ लोकोनी पासे आधिक्येन धर्मथा दृढ करवा माटे उपदेशक प्रधान एवा साधु आचारनु स्वरूप जरूर प्रतिपादन करवु निदान के-आगल जणावा गयेल आचारनु प्रतिपादन आ लोको पासे करवु ते निरर्थक समजवु पाचमी था छठ्ठी चोपडीना अभ्यासकने पहेली चोपडीनो पाठ शीखवाडवा जेनु हास्यकारी जणाय, कारण के उपर दर्शित साधुओना बाह्य आचारो दुष्कर अने दुर्वाह छता अमुक प्रकारना लोभ या मोहना कारणथी विनयरत्न आदिनी माफक घणा लोको सेवन करे छे एव खाली आत्मशुद्धि विना आवा प्रखर बाह्य आचारो आत्माप-" अणताइ दव्वलिंगाइ " ए वचनथी अनती

धार सेव्या छे, परन्तु तेथी आत्मकल्याण जरापे थयु नहीं. आवा आवा अनेक विचारो आ मध्यमबुद्धिवर्ग विचारे छे

" उपदेश "

अत' जे आचारोनी खरी दुष्करता अने उत्तमता होय तेवा अभ्यतर शुद्ध आचारोनु स्वरूपदर्शन उपदेशके आ लोकोने करावबु उचित गणाय. ग्रथकर्ताना वचनमा ' ईर्यासमिति-प्रभृति ' ईर्यासमिति विगेरे साधुओनु सत्य स्वरूप कहेतु. ते आ प्रमाणे-प्रथम तो साधुए स्वात्मशुद्धि माटे अने बाह्य आचारोनी सार्थकता बदल आठ प्रवचनमातानु पालन करवु जोइए १-ईर्यासमिति, २-भाषासमिति, ३-एषणासमिति, ४-आदानभटमत्तनिक्षेपणासमिति, ५-पारिष्ठापनिकासमिति, ६-मनोगुप्ति, ७ वचनगुप्ति, ८-कायगुप्ति आमा पाच समिति अने त्रण गुप्ति छे, उभय मली आठ प्रवचनमाता कही छे

" प्रवचनमाता "

प्रवचन एटले जैनसिद्धान्त तेमा जे माता तुल्य माता ते प्रवचनमाता, अर्थात् जेम माता पुत्रनु सर्वावस्थामा हित ज चाहे अने करे छे तेम आ माता पण तेनी सेवा करनार अने तेनी आज्ञामां वर्तनार साधुरूप पोताना पुत्रनु एकान्त कल्याण ज करे छे. बल्के लौकिक माता कदापि विरोधी पण थइ जाय छे अथवा आ लोकमा पूरतु हित पण नथी करती त्या पर-लोकना हितनी वात ज क्या रही ? ज्यारे आ लोकोत्तरमाता-

तो स्वप्नमा पण पोताना पुत्रनु अहित नथी करती—विरोधी नथी बनती. आ लोकमा पूर्ण कल्याण करवा साथे परलोकमा नितान्त कल्याण ज करे छे एटले आ माताने सर्वतोश्रेष्ठ केम न कहेवी ? अवश्य उत्तमोत्तम माता ज कहेवाय

" समितियो "

अहीं समितिनु स्वरूप शास्त्रमा आ प्रमाणे दर्शाव्यु छे—" प्रविचाराप्रविचारात्मिका समिति " " जे क्रियामा कर्मबंधक खोटी प्रवृत्तिनो आत्मा रोध करे अने कर्मक्षयकारक प्रवृत्ति करे ते समिति " हिंसा, झूठ आदि चेष्टाओथी नितान्त कर्मबंध ज थाय छे, माटे तेथायी देह आदिने रोकी कर्मनिर्जरानी हेतुभूत समितिरूप क्रियामा आत्माने स्थापवो एटले मार्गमा गमन करवा पूर्वे बीजी तरफना ध्यान, विचारो अने वार्तालाप आदिने रोकी केवल साडात्रण हाथ जमीनमा दृष्टि राखी जीवोनो बचाव करी गमन करवु ते **ईर्यासमिति** १, अन्यनी निंदा के दु ख न उपजे, पदार्थनु यथार्थ स्वरूप कथन कराय, नितान्त अन्यनु हित थाय अने परिमित शब्दो जेमा होय जेथी खुल्ली रीते अर्थबोध थाय ए रीते भाषानो उच्चार करवो ते **भाषासमिति** २, आधाकर्मी आदि ४२ दोषो न लाग्या होय एवा आहारादि ग्रहण करवा ते **एषणासमिति** ३, वस्त्र-पात्र आदि काइ पण चीज प्रथम दृष्टिथी बराबर निहाळी, रजोहरणथी प्रमार्जी बाद लेवी अथवा भूमि पर मूकवी ते **आदानभंडमत्तनिक्षेपणसमिति** ४, मळ, मूत्र, श्लेष्म

?छु। न हणइ १ किणइ २ न पयइ ३, कय
?ण अणुमईहिं नवहा ” ॥१॥ “ पिंडेसणा सघळी
विधि सक्षेपथी न हणवु १, न खरीदवु २, अने
न राधवु ३ परबु, कराववु अनुमोदवु विगेरे ए नवकोटिमा
समावेश थाय छे ”

“ कपच्छेदताप त्रिकोटि ”

एव टाकाकार पुनः “ त्रिकोटीपरिशुद्ध ” ना टीका
“ कपच्छेदतापकोटित्रयपरिशुद्ध ” अणाथी स्पष्ट कहे
छे के-सपूर्ण जैनागम आठ प्रवचनमाताना अतर्हित होवाथी
एटले जैनागम आठ प्रवचनमाताना आधार ज जीव छे, माटे
विद्वानोए आ जैनागमनी पण त्रण कोटिथी कप, छेद अने
तापद्वाराए परीक्षा करवी ए नितान्त न्याय्य गणाय बाह्य-आ-
भ्यन्तर आचारने दर्शावनार एवा मूल स्वभूत प्रवचन-सिद्धा-
न्तनी कसोटी कर्या विना आचारानी कसोटी यथार्थ थाय ?
अतएव अत्र टीकाकार तेना परीक्षा करवा “ त्रिकोटिपरि-
शुद्ध” ए पदनो उपरोक्त अर्थ जणाव्यो छे एटलु ज नहीं किन्तु
प्रगटपणे खुल्लो कर छे निम्न के-आगम एटले सर्वज्ञनु वचन
अने तेनी यथास्थित परीक्षा थवाथी तद्रूक आठ प्रवचनमा-
?नी स्वत परीक्षा थइ गइ, कारण के-सर्वज्ञवचनरूप प्रवचन
?थी ज साधुओ वर्तन-क्रियापात्र करे छे.

“ ?शुद्धि ”

? छेद अने तापनु स्वरूप एम् प्रकर्ता “ धर्म-

द्वेष अने मोहे करीने शुद्ध होय, अर्थात् मुनियोने ससारना विविध सुदर पदार्थोनो मोह न होय, स्वजन-परजनमा मोह क रागबध न होय, निंदक के पूजकमा प्रेम या द्वेषभाव न होय. अरे! साधुओने स्वशरीर पर पण मोह नथी होतो तो अन्य पदार्थनो मोह क्याथी होय? निदान के-साधुओ एवु चारित्र-सुदर वर्तन आचरे के जेमा आ राग, द्वेष व मोहने अवकाश न मळे अथवा अनुक्रमे निर्मूल थइने चाल्या जाय. टीकाकार आ पदनो त्रीजो अर्थ दर्शावे छे—" तिस्रः कोटयः हननपचनक्रयणरूपा कृतकारितानुमतिभेदेन श्रय ते ताभिः परिशुद्ध " हनन, पचन, क्रयण ए त्रण कोटीने करवु, कराववु अने अनुमोदनवडे गुणवाथा नव भेदो थाय आ नव भेदे शुद्ध साधुआनु वर्तन होय, अर्थात् मुनियो कोइ जावने हणे, हणावे अने हणताने सारो समज नहीं, अग्नि आदिनो आरभ कर, करावे ने करताने ठीक माने नहीं, कोइ पण चीज वजारथी मूल्यथी ले, लेवरावे ने लेताने सारो समजे नहीं परमार्थ के-४२ दोष रहित जे आहारविधि मुनियो माटे आगल दर्शावी गया ते आ त्रण कोटीमा अतर्गत थाय छे. जो आ त्रिकोटीशुद्ध वर्तन यथास्थित होय तो ज आ आहारविधि पण बराबर सुरक्षित थाय, अन्यथा आहारविधि पण सदोषमय जाणवी एटले निर्दोष आहार इच्छक मुनिये अवलमा अवश्य आ त्रण कोटीनी शुद्धि करवी ए न्याय्य गणाय ए ज वात शास्त्रोमा कही छे-" पिंडेसणाय सव्वा, सखित्तो असरइ नव-

सुकोटीसु। न हणइ १ किणइ २ न पयइ ३, कय कारवण अणुमईहिं नवहा "॥१॥ " पिंडेसणा संबंधी सर्व विधि सक्षेपथी न हणवु ३, न खरीदवु ३, अने न राधवु ३ करवु, करावबु, अनुमोदवु विगेरे ए नवकोटिमा समावेश थाय छे "

" कषच्छेदताप त्रिकोटि "

एव टीकाकार पुनः " त्रिकोटीपरिशुद्ध " नी टीका " कषच्छेदतापकोटित्रयपरिशुद्ध " जणावी स्पष्ट कहे छे के-सपूर्ण जैनागम आठ प्रवचनमाताम अतर्हित होवाथी एटले जैनागम आठ प्रवचनमाताना आधारे ज जीवे छे, माटे विद्वानोए आ जैनागमनी पण त्रण कोटिथी कष, च्छेद अने तापद्वाराए परीक्षा करवी ए नितान्त न्याय्य गणाय बाह्य-आभ्यतर आचारने दर्शावनार एवा मूल स्थभभूत प्रवचन-सिद्धान्तनी कसोटी कर्या विना आचारोनी कसोटी क्याथी थाय ? अतएव अत्र टीकाकार तेनी परीक्षा करवा " त्रिकोटिपरिशुद्ध'' ए पदनो उपरोक्त अर्थ जणाव्यो छे एटलु ज नहीं किन्तु मगाढपणे खुल्लो करे छे निदान के-आगम एटले सर्वज्ञनु वचन 'अने तेनी यथास्थित परीक्षा थवाथी तदुक्त आठ प्रवचनमातानी स्वत' परीक्षा थइ गइ, कारण के-सर्वज्ञवचनरूप प्रवचन आज्ञाथी ज साधुओ वर्तन-क्रियामात्र करे छे.

" कषशुद्धि "

कष, च्छेद अने तापनु स्वरूप एतद् ग्रथकर्त्ता " धर्म-

विंदु " मा आ रीते जणावे छे, जे परीसकोने बहु उपयोगी तथा ध्यान राखवा योग्य छे "विधिप्रतिषेधौ कष इति" विधि तथा प्रतिषेध ते कष. मोक्ष या स्वर्गप्राप्तिमा हेतुभूत जे कार्यो तेने दर्शावनार वाक्यो ते विधिवाक्यो, जेवा के– " **आस च छंद च विगिं च धिरे** " धीर पुरुषोए आशा तथा मोहनो त्याग करवो जोइए, "**उदाहु वीरे अप्पमादो महामोहे** " वीरप्रभु कहे छे के–महामोहथी अप्रमादी सावधान रहो, " **सव्वामगध परिण्णाय णिरामगधो परिव्वए** " (आचाराग) सर्व भावोने छोडी निर्मोही थइने विचरो एव दान देवु, तप करवो, पाच समिति तथा त्रण गुप्तिए शुद्ध चारित्र पालवु–आ सर्व विधिवाक्यो जाणवा फरी जे करवाथी पापबंध थाय, आत्मानु अहित थाय तेवा कार्योना निषेधदर्शक जे वाक्यो ते प्रतिषेध वाक्यो जाणवा, जेवा के–" **रागदोसकसाएहिं इदिएहिं य पचहिं । दुहा वा मोहणिज्जेण अट्टा ससारिणो जिया** " राग–द्वेष अने कषायथी, पाच इन्द्रियोथी तथा बे प्रकारना मोहथी ससारी जतुओ दु खी थाय छे, अतएव तेनो त्याग करवो जोइये पुन "**आत्मवत्सर्वभूतेषु, सुखदुःखे प्रियाप्रिये । चिंतयन्नात्मनोऽनिष्टा, हिंसामन्यत्र माचरे**" ॥१॥ जेम स्वात्माने सुख तथा दु ख प्रिय अने अप्रिय लागे छे तेम सर्वात्माओ सबधे समजी पोताना आत्माने अनिष्ट एवी हिंसा अन्य आत्मानी विद्वाने न करवी, तेमज झुठ न

बोलवु, चोरी, मैथुन न करवा विगेरे आ सर्वे प्रतिषेध वाक्यो जाणवा. आ रीतना विधि, निषेध वाक्यो जेमा होय ते कषशुद्ध जाणवा. सोनानी परीक्षा करवा माटे प्रथम तेनी कसोटी पर आंक आपी शुद्धि कराय छे, एम जे धर्मशास्त्रमा आ उभय वाक्यो कर्तव्यनो उपदेश अने अकर्तव्यनो त्याग उपदेशता होय ते ज शास्त्र कषशुद्ध जाणवु; परंतु जे शास्त्र हिंसा आदि पापकर्मना त्यागना बदले कर्तव्यतया कथन करे ते शास्त्र आ कष शुद्धिमा आवी शके नहीं अतएव 'यज्ञमा हिंसा कर्तव्य छे' एम स्पष्ट प्रतिपादन करनार वेदादि अने विषयकषाय आदिनी पुष्टि करनार पुराणादि शास्त्रो कषशुद्ध क्याथी समजे ?

" छेदशुद्धि "

कषशुद्धि बाद छेद तपासवा जोइए " तत्सम्भवपालनाचेष्टोक्तिश्छेद इति " ज्या विधि, निषेधनी संभावना, पालन तथा वर्तनमा मूकवानु जणाव्यु होय ते छेद कह्यो छे. घणीवार सुवर्ण कसोटी पर बराबर शुद्ध देखाय छे छता पाछलथी तेमा भेद नीकळी आवे छे, माटे परीक्षको सोनाने कापीने तेना अंदरना भागनी परीक्षा करवा चूकता नथी. ए ज रीते शास्त्रोमा विधि, निषेध उभय वाक्यो दर्शाव्या होय, किन्तु ते प्रमाणे करी शकाय के नहीं, तेनु पालन करवु जोइए विगेरे विषयो गुप्त राख्या होय अगर न जणाव्या होय या तो करवानु अन्यथा प्रकारे दर्शाव्यु होय एटले उपदेश अने

वर्नेन बन्ने जूदा जूदा दर्शाव्या होय तो ते शास्त्र कपशुद्ध न होवाथी स्वीकार्य नथी; बल्के सर्वथा हेय जाणवु अतः कप-शुद्धि पछी शास्त्रना आतरभागनी परीक्षा करवा छेदशुद्धि-द्वाराए मुमुक्षुओए अवश्यमेव चिकित्सा करवी जे शास्त्रमा विधेयवाक्यो अने निषेधवाक्यो कह्या पछी तेनी पुष्टि माटे विविध प्रकारनी बाह्य पवित्र क्रियाओ कथन करी होय, तेने पाळवाना विविध प्रकारो दर्शाव्या होय, अथवा जेथी विधेयवाक्यो अने निषेधकवचनोने जोर मळे तेवा विषयो जेमा अच्छी रीते वर्णव्या होय तो ते शास्त्र छेदशुद्ध कही शकाय जेमके–विधेयमार्गमा दान, तप, स्वाध्याय विगेरे कह्या छे, तो तेना पोषण माटे जैन सिद्धान्तमा दाननु स्वरूप, भेदो अने फल दर्शावी तथाप्रकारे करवानो उपदेश आपी तेना पर अनेक दृष्टातो रही पोषण कर्यु छे एव तपनु स्वरूप, द्वादश भेदो, तेनु फल अने तेने आचरणमा मूकवानो उपदेश आपी शुद्ध महावीर भगवानना दृष्टातथी पुष्टि करी छे स्वा-ध्याय विगेरे माटे पण तथाप्रकारे ज मर्यादरीत्या उपदेश कर्यो छे, परन्तु ज नहीं किन्तु साधु अने गृहस्थना व्रतो, क्रि-याओ, अतिचार, अनाचार दर्शावी विस्तारदने घणा जोरथी पोष्यो छे ए ज रीते निषेधक वाक्योथी मोहत्याग, कषायत्याग, हिंसा, झूठ आदिनो निषेध करी आ पापोना त्याग माटे भिन्न भिन्न क्रियाओ दर्शावी पालनता–कर्तव्यता पर बहु बहु जोर आपी अनेक दृष्टातो कह्या छे. अतः आ रीतना जे शास्त्रो ते

कष तथा छेदशुद्ध जाणवा, ज्यारे अन्य शास्त्रोमा तेवी प्रगाढ क्रियाओ दर्शावी नथी.

"तापशुद्धि"

कष तथा छेदे करीने बन्ने रीते सुवर्ण सिद्ध थयु होय तो पण विशेष शंकाने दूर करवा तेना मिश्रभागनी परीक्षा करवा फरी बुद्धिमान सराफो तेने ताप आपी–अग्निमा तपावी अच्छी रीते निहाळे छे एटले जो सुवर्ण अग्निमा नाख्या पछी ते पोतानो असल रंग तथा स्व–स्वरूपनो त्याग न करे तो ते खरु कंचन कहेवाय, अन्यथा ते सुवर्णपणाना मूल्यने लायक न गणाय, कारण के साचु सोनु सर्वदा एक ज रूपमा रहे छे तथाप्रकारे शास्त्र पण कष, छेद उभय रीते शुद्ध नीकल्या पछी तेना आतरतत्त्वनी यथार्थ परीक्षा करवा तेनी तापद्वाराए शुद्धि निहाळवी ए उचित ज गणाय. तापनु स्वरूप आ रीते जाणवु "उभयनिबधनभाववादस्ताप इति" उपर जणावेल कष अने छेद उभयना आधारभूत अने परिणामी कारणरूप जीवादि पदार्थोनी यथास्थित जे व्याख्या तेनु नाम ताप, कष तथा छेदनी साफल्यता तापनी शुद्धि पर अवलबी रह छे, एटले तापनी सफलतामा कष-छेदनी सफलता समजवी. एव शास्त्रमा विधि, निषेधवाक्यो दर्शाव्या होय, विविध बाह्य क्रियाओ पण कही होय तदपि आ सर्वना आधारभूत आत्मा विगेरे तत्त्वनु स्वरूप एकदेशीय अ-थवा सदोष प्रकारनु होय तो उपरोक्त बन्ने फलशून्य समजवा.

परमार्थ ए के–सर्व बाह्य, आभ्यंतर व्यवहारनो मूल आधार जीव, कर्म, जगत् विगेरे पदार्थोनी शुद्ध–निर्दोष मान्यता पर रह्यो छे अतएव आ पदार्थो अनादि अकर्तृक अने नित्यानित्यस्वरूप धर्मवान् ए रीते ज्यां प्ररूप्या होय अर्थात् आत्मा, कर्म, जगत् आदि पदार्थो द्रव्यास्तिक नयनी मान्यतामां नित्य अने पर्यायास्तिक नयनी मान्यतामां अनित्य, एवं उत्पाद, व्यय अने स्थितिरूप धर्मवान् छे–आवुं सुंदर अबाध्य स्वरूप ज्यां वर्णव्युं होय ते शास्त्रने तापशुद्ध विद्वानो समजे छे. आत्मा आदि पदार्थो कंचनकुंभना दृष्टांते नित्यानित्य धर्मवान् छे ए वात बराबर गळे उतरे तेवी छे कंचनकुंभ फुटी जवाथी तेना कुंडल के कडां विगेरे बनाव्या तदपि कंचन तो कायम ज रह्युं, मात्र कुंभ आकारनो नाश अने कुंडलादि आकारनी उत्पत्ति थइ. एवं आत्मा पण अमुक गति अपेक्षया नाश अने उत्पन्न थाय छे ज्यारे आत्मस्वरूपेण सर्वत्र विद्यमान ज रहे छे आ स्थितिमां प्रथम कहेल विधि, निषेधवाक्योनी साफल्यता तथा विविध क्रियाकांडोनी साफल्यता अच्छी रीते बनवा संभव छे, परंतु एकान्त नित्य अथवा एकान्त अनित्य आत्मवादमां सर्व क्रियाओ, उपदेशो अर्थशून्य–अरे ! छार पर लिंपण जेवा समजवा, माटे विद्वानो तापशुद्धि, कषशुद्धि अने छेदशुद्धि कर्या पछी ज समुचित रीते वरे छे. कषरूप, छेद अने तापरूप त्रिकोटिये शुद्ध जे शास्त्र ते ज परिशुद्ध जाणवुं. अत: तदुक्त आज्ञाओ ज हितार्थीने शिरसावंद्य गणाय.

" उपसंहार "

भ्रहीं आ त्रिकोटिशुद्ध सर्वज्ञशास्त्र सिवाय अन्य क्युं शास्त्र होय ? ए रीते त्रणे परीक्षामा सर्वज्ञ भगवत महावीरनु वचन अबाधित सिद्ध थवाथी तदुक्त आठ प्रवचनमाता पण नितान्त शुद्ध, अबाध्य जाणवी; माटे साधुए ए रीतनी निर्दोष आठ प्रवचनमाता अहोनिश अवश्य पालन करवी, ए प्रमाणे उपदेशके मध्यमबुद्धि लोकोने उपदेश आपवो. वधुमा उपदेशके- " अमीषामान्तरदर्शनमिति " आ कप, छेद, तापमा मुख्य कोण कोण ? समर्थ, असमर्थ कोण ? परस्पर भिन्नता केटली ? विगेरे जरुर समजाववु

" त्रिधा हितकारी "

फरी मुनियोनो आचार उपदेशके "आद्यतमध्ययो-र्गैर्हितदं" आदि, मध्य अने अन्तमा हितदायी एवो आ आचार छे एम जणाववु एटले ईर्यासमिति विगेरे साधुओनो आचार आदि, मध्य अने अन्तमा हेतु, स्वरूप तथा अनुबंधे करी सर्वथा परमपवित्र निर्दोष दर्शाव्यो छे प्रथम तो साधुने जीवोनी दया-रक्षा अर्थे अने दुष्ट कार्यो बध करवा माटे ईर्या-समिति आदि पालन करवानु जणाव्यु छे, माटे आ आचार हेतुरूपेण निर्दोष जाणवो. फरि ईर्यासमिति आदि स्वय जीवोनी रक्षा-दयारूप होवाथी स्वरूपेण निर्मल जाणवो. ईर्यासमिति आदि समितिमा अहोनिश सावधान मुनिने कदापि

अशुभ-अपवित्र विकल्पो उद्‌भवता नथी, बल्के सर्वदा सद्वि-चारो ज बन्या रहे छे. अतएव आ समितियो कर्मनिर्जरा अथवा शुभकर्मनो ज बंध करी भविष्यमा सुंदर फल अर्पण करे छे, माटे आ मुनि-आचाररूप अष्ट प्रवचनमाता अनुबंधरूपे पण शोभन कल्याणावह ज जाणवो परमार्थ ए के-हेतु, स्वरूप अने अनुबंधरूप त्रिधा हितकारी एवो मुनियोनो आचार जाणवो

" बीजी व्याख्या "

अथवा टीकाकार " आयत०" आ पदनी टीका आ प्रमाणे करे छे—" वयसो जीवितऽयस्य वा हितदनु-पकारि " उपरोक्त साधु आचार जीवननी प्रत्येक अवस्थामा हितकारी-उपकारी थाय तेवो छे एटले प्रथम दर्शावेल मुनि आचाररूप अमृतपान बाल, युवान के वृद्ध कोइ पण वयमा देवामा आवे तथापि सर्व वयमा तुल्यरूपे उपकारी, अजर-अमर फल अगादरीत्या अर्पनार बने छे पुन. प्रकारांतरे टीकाकार कहे छे के-" वयनी आदिमा सूत्रादिनो अभ्यास, मध्यवयमा अर्थश्रवण अने अत्यावस्थामा धर्मध्यानादि द्वाराए त्रणे वयमा आ मुनि-आचार हितकारी थाय छे " अर्थात् चारित्र ने जीवननी त्रण अवस्था पैकी कोइ पण वयमा स्वीकाराय अने तेथी जे जे वयमा चारित्र स्वीकार्यु होय ते ते वयमा तत् तत् वय योग्य कर्मद्वाराए स्वीकारनार आत्मा पोतानु अवश्य कल्याण करी शके छे निदान के-अमुक ज

वयमा चारित्र स्वीकारी शकाय एवु अमुक ज वयमा चारित्र पोतानु फल अर्पण करे छे तेवो एकान्त नियम अहीं नथी अतएव प्रथम १२ वर्षमा सूत्राभ्यास, पछी १२ वर्षमा अर्थाभ्यास अने पश्चात् १२ वर्षपर्यंत विहार करी शिष्यादि निष्पत्ति एटले आचार्यपद योग्य थाय आम जे विशेषावश्य-कमा दर्शाव्यु छे, ते पण जेने प्रथम वयमा चारित्र स्वीकार्यु होय अने आयुष्य दीर्घ तथा बुद्धि तीक्ष्ण होय तेने माटे, अथवा वय गमे ते होय छता क्षयोपशमादि तीव्र होय तेने माटे आ नियम सुमव्यवस्थीरत्या पाठकोए घटाववो–जाणवो. आथी उपरोक्त कथनमा पण कांइ बाध नहीं आवे

" उपाध्यायजीनु कथन "

उपाध्यायजी महाराज " आयत० " ए पन्नी टीकामा साधु आचार माटे " आवीलए निप्पीलए इत्याग-मात्तदविरोधि अल्पमध्यमविकृष्टतपोविशेषरूपैर्वा हितद भवति " मलिन कपडु सामान्य मर्दन, विशेष मर्दन करवाथी सामान्य, विशेष रीते विशुद्ध बने छे, एव कर्मावृत्त आत्मा पण अल्प, मध्यम अने उत्कृष्ट तपस्या करवाथी विशुद्ध विशुद्धतर थाय छे. परमार्थ ए छे के–सयम स्वीकार्या पछी जेम मुनि–आचारमा आठ प्रवचनमातानु पालन करवानु कह्यु तेम आत्मानी विशुद्धि माटे जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट तप पण शक्ति अनुसारे करवो उचित छे. एटले ए रीते तप अ पेक्षाए पण मुनि–आचार आदि, मध्य अने अन्तमा सर्वथा

कल्याणकर्त्ता बने छे. साराश के–दरेक मकारनी जुदी जुदी व्याख्यानो सार एटलो ज के मुनि–आचार मातृवत् एकान्त हितकारी जाणवो.

" समाप्ति "

सन्तेपमा–अहीं पर्यंत दर्शावेल मुनि–आचारनी व्याख्या मध्यमबुद्धिवर्ग पासे उपदेशके करवी, केमके ते लोको वधु रीते मुनियोना उपरोक्त आचारो तरफ अधिक ख्याल राखे छे. एटले आ आचारो श्रवण करी धर्मश्रद्धामा तेओ वधु मक्कम थाय त्यारपछी तेओने आगमतत्त्वनु स्वरूप समजावी बुध योग्य अवस्थामा आरूढ थाय तेम आचार्ये करवु शास्त्रीय गणाय. निदान के–मध्यमवर्गनी कोटीमा ज रहे ते काइ उप देशनु फल पर्याप्त न गणाय.

उपर कहेला मुनि आचार माटे वधु खुलासो करता ग्रथकार आठ प्रवचनमातानु पालन करवानो स्पष्ट उपदेश दर्शावे छे—

> अष्टौ साधुभिरनिश मातर,
> इव मातर॰ प्रवचनस्य ।
> नियमेन न मोक्तव्या ,
> परम कल्याणमिच्छद्‌भि॰ ॥ २–८ ॥

मूलार्थ—परम–उपमातीत कल्याण–सुखना इच्छक एवा

मुनियोए हितवत्सलमातानी तुल्य आठ प्रवचनमातानी नित्य सेवा करवी; निश्चयतया कदापि तेनो पल्लव छोडवो नहीं

" तीर्थभूतमाता "

स्पष्टीकरण—आ आर्यामा आचार्यश्री आठ प्रवचनमातानी सेवा करवानो उपदेश जणावे छे आठ प्रवचनमातानुं स्वरूप आगलनी आर्याना विवरणमा विस्तारथी दर्शावी गया. आ आठ प्रवचनमाताने महर्षियो मातानी उपमा आपी तेनो मातृत्वपणे निर्देश करे छे. उपकारज्ञ जनो मातानी सेवा एक क्षण पण विसरता नथी, कारण के माता जन्मदात्र, पालनकर्त्री अने हितकर्त्रे होवाथी अतुलित–अप्रतिकार्य–अनन्य उपकारिणी शास्त्रोमा कही छे. अतएव उत्तमजनो तेनी सेवा करवामा ज पोतानु सुख, यश, प्रतिष्ठा, इतिकर्तव्यता समजे छे एटले "आतीर्थमिवोत्तमानाम्" "तीर्थनी माफक यावत्‌जीवन भक्तिपूर्वक आराध्य मानी उत्तम पुरुषो मातानी सेवा करे " ए उक्तिने चरितार्थ कर छे. निदान के–माता माटे भक्तिथी पोताना प्राणो समर्पीने पण जींदगीनी अतिम क्षण पर्यंत जेओ सेवा करे ते ज उत्तम पुरुष जाणवो.

" प्रवचनमातृत्व–तत्सेवा "

अहीं लौकिक आराध्योमा माता जेम उत्कृष्ट आराध्य मानी छे, परतु तेनी समान अन्यपण तेवा गुणो न होवाथी अन्यने तथाप्रकारे आराध्य मानेल नथी. एव लोकोत्तर क्रियातत्त्वमा

आठ प्रवचनमाता मातृवत् गुणधारिका होवाथी महर्षियो तेने माता कही सपूर्ण आरा`यतया उपदेशे छे, अर्थात् जन्मदातृत्व, पालनकर्तृत्व तथा शिक्षादातृत्व गुणो तेमा पण छे प्रवचन-सिद्धान्त तेने जन्म आपनार, ईर्यासमिति आदिमा उपयुक्त मुनि ज सिद्धान्त-तत्त्वने पामी शके सिद्धान्तनो अभ्यास, स्वाध्याय विगेरेनो अधिकार आठ प्रवचनमातामा अनुपयुक्त मुनिने निषेध्यो छे निदान के-सिद्धान्तना अभ्यासथी जे कल्याण सधाउ जोइए ते कल्याण अनुपयुक्त मुनि सिद्धान्तनो अभ्यास करवा छता पण साधवा असमर्थ बने छे अतएव आ माताने प्रवचनजन्मदाता महर्षियोए कही एव उत्तरकालमा प्राप्त सिद्धान्तज्ञान अने सद्वर्तन तेनु पालन तथा पोषण अधिकाधिक आ माता ज करे छे अने क्रमश शिक्षाओ अर्पी उत्तरोत्तर उपाध्याय, आचार्य आदि पदोना अधिकारो पर लइ जइ उच्च स्थाने आत्माने आ माता ज बीराजमान करे छे परामर्श एटलो ज के-आ माता पोताना पुत्रने दु ख-क्लेशोथी बचावी ले छे तथा अपमार्गथी सर्वदा दूर राखे छे, माटे उपकारज्ञ पुत्रोनु प्रधान कर्त्तव्य छे के मातानो यत्किंचित पण अनादर न करवो जोइये, तो दु ख के क्लेशनी तो वात ज क्या रही ? फरी माताना क्लेशथी पुत्रने क्लेश अने माताना नाशथी पुत्रनो पण परिणामे नाश थाय छे एव ईर्यासमिति आदिनो क्लेश उपजाववाथी अथवा नाश करवाथी प्रवचन आज्ञारूप पुत्रनो पण नाश ज थाय, माटे उत्कृष्ट कल्याण इप्सु (इच्छनारा) मुनियोए आ

मातानी प्रतिक्षणे सेवा करवी, किन्तु एक क्षण पण तेने विसरवी न जोइये, कारण के आ मातानी सेवा करवाथी परमार्थेनया सर्वज्ञनी बराबर सेवा करी गणाय अन्यथा प्रभु आज्ञानो लोप कर्यो मानवो एम भगवन पोकारी पोकारीने जणावे छे

ए रीते 'मध्यमबुद्धि' ने उपदेश आप्या पछी, अन्तमा आ प्रमाणे उपदेश जरर करवो—

एतत्सचिवस्य सदा साधो-
नियमान्न भवभयं भवति ।
भवति च हितमत्यन्त,
फलदं विधिनाऽऽगमग्रहण ॥ २-९ ॥

मूलार्थ—पूर्वोक्त आठे प्रवचनमाता सहित नित्य वर्तनार मुनिने निश्चयथी ससारनो भय होतो नथी अर्थात् ससारनो नाश थाय छे, एव भविष्यमा पण अतिशे आत्मानु हित-कल्याण थाय छे ने विधिपूर्वक आगमज्ञान पमाडवारूप फल अर्पण करे छे

" प्रवचनमातानी सेवानु सर्वोत्तम फल "

स्पष्टीकरण—पुण्यकामना अर्थे उत्तम जनो कदापि माताने अलग करता नथी, कारण के तेना वर्तनमा ज पोतानु श्रेय तेओ समजे छे, एटले तेओने अपयश आदिनो भय उपजतो नथी. एव अहीं पण दृष्टात समन्वय करता आचार्यश्री संक्षेपमा उपसहार करी जणावे छे के-जे मुनि आ आठ प्रवचनमातानी

आज्ञानो लोप करता नथी, कोइ पण क्षणमा आ मातानी सेवा विसरता नथी, प्रतिक्षणे "जयं चरे जयं चिट्ठे॰" "जयणाथी चालवु अने जयणाथी बेसवु " ए महर्षिपूज्य आज्ञाने शिरोधार्य करी, ईर्यासमिति आदिमा सोपयुक्त रही अहोनिश वर्तन आचरे छे, तेओने भवससारनो भय रहेतो नथी–अर्थात् आ मुनियोने चतुर्गतिना दुःखनो लवलेश जेटलो डर होतो नथी कारण क–तेओनी शीघ्र मुक्ति ज थाय छे. ठीक ज छे के–जेओ अन्य प्राणीने स्वात्मवत् देखी एक रोममात्रमा पण पीडा न थाय अने आत्मा अशुभ पापकर्मनो बधक न बने, आत्मा एक रोममा पण अशुभ विचार के प्रवृत्ति न करे तेवी अलौकिक उदार–पवित्रतम अप्रमत्तभावना धारे–आचरे छे, तेओनी शीघ्र मुक्ति ज थाय अतएव दशवैकालिकमा महर्षिपूज्य शय्यंभवसूरि महाराजे कह्यु ते उचित ज छे –" सव्व-भूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइ पासओ। पिहिया-सवस्स दंतस्स, पावं कम्मं न बंधइ " ॥ १ ॥ " कोई पण जीवने दुःख न उपजावतो अने सर्वने स्वात्मवत् देखनार तथा आश्रवोने रोकनार अने इद्रियोनो निग्रह करनार एवो मुनि फरीने पापकर्मने बाधतो नथी " वधुमा अहीं मूलकर्ता भार दइने कहे छे क–' नियमात् ' निश्चयथी भवनो भय रहेतो नथी, एटले नितान्त–अशसयेन भवनो नाश थाय छे.

" उपसहार "

फरी भविष्यमा आ मुनिनु अत्यत हित–उत्कृष्ट कल्याण [illegible] थाय छे परमार्थ ए के–सोपयुक्त मुनिने

आ जन्म के अपर जन्ममा अनिष्ट अपायो आवता ज नथी. एव ईर्यादिसमितिवान् होवाथी विनय, वैयावच्च, भक्ति, सरलता, नम्रता आदि गुणो जरुर होय, एटले आचार्य, उपाध्याय आदिनी समीपे सूत्रवाचनादि मडलीमा बेठवानो पूर्ण अधिकार आ मुनिने यथेष्टपणे प्राप्त थाय छे, जेथी सिद्धान्तज्ञान सुखपूर्वक उपलब्ध थाय, माटे आवा मुनिने आगमज्ञाननी प्राप्तिद्वारा पण आठ प्रवचनमाता फलदात्र अवश्यमेव बने छे निष्कर्ष एटलो के—ईर्यासमिति आदिमा सावधान मुनिने ज आ सूत्रादिनी वाचनामडलीमा बेसवानो अधिकार कह्यो छे अहीं आचार्यश्रीए 'मध्यबुद्धि' जन योग्य उपदेशविधिनो उपसहार करी अन्तमा आठ प्रवचनमातानु बराबर पालन करवानु पर्याप्त फलनो निर्देश ए रीते कर्यो परमार्थ के–उपदेशके ए रीते 'मध्यमवर्ग' पासे आठ प्रवचनमातानु अवसान फल पण अवश्य जणाववु."

गत आर्या श्लोकमा आठ प्रवचनमाता–पाळक मुनिने आगमज्ञाननो अधिकारी कर्यो आगमज्ञान गुरुमहाराजना हृदयमा ज विराजित होय छे, माटे 'मध्यमवर्ग' ने आ उपदेश पण साथे साथे उपदेशके करवो—

गुरुपारतंत्र्यमेव च,
तद्बहुमानात्सदाशयानुगतं ॥
परमगुरुप्राप्तेरिह बीज,
तस्माच्च मोक्ष इति ॥ २–१० ॥

मूलार्थ—गुरु पर आतरनी भक्तिपूर्वक तेमना आशयने अनुलक्षी ते प्रमाणे वर्तन करवु-तेओनी आज्ञाने आधीन ज रहेवु ए ज परमेश्वर प्राप्तिनु मुख्य बीज छे अने तेनाथी ज मुख्यतया मोक्षप्राप्ति आत्माने कही छे

" गुर्वाधीनता "

स्पष्टीकरण—अहीं प्रवचनज्ञान प्राप्त करवा मुनिये प्रथम तो गुर्वाधीन रहेवु जोइये, ए तत्त्व आचार्यश्री दर्शावे छे. अर्थात्-जेने आगमज्ञान, तेनु मौलिक तत्त्व प्राप्त करवु होय तेणे अवश्यमा तो तेवा ज्ञानवान् गुर्वादिकोनी सर्वस्वनो भोग आपीने पण सेवा करवी जोइए टीकाकार कहे छे के-आ गुरुदेव सिवाय मारो ससारभय कोइ दूर करनार नथी-ए ज तरणतारण एक जहाजरूप छे, ए भावना हृदयमा अकित करी-रोमेरोममा प्रतिबिंबित करी तेमनी सेवा करवी एतावन् मात्र नहीं किन्तु गुरु चित्त परीक्षी (जाणी) तेमना आशयनु अनुसरण करवु, चेष्टा के क्रिया विशेषथी तेमना हृदयनो भाव जाणी लेवो अने ते प्रमाणे वर्तन करवु तेओना पर सरल आशयथी अद्भूत भक्ति धारण करवी, बहुमान, विनय, सेवा, आसन अर्पण करवु, उभा थवु, सामे जवु, पादप्रक्षालन, वैयावच्च विगेरे भक्ति मनसा, वाचा अने कायाथी करवी हुकमा गुरु आज्ञाथी ज सर्व वर्तन करवु, किन्तु मोक्षार्थीए स्वतन्त्र के स्वेच्छाचारी वर्तन न करवु जोइये "आणाए चिय चरणं तब्भगे जाण किं न भग्गति । आणाय अइक्कतो क-

स्साएसा कुणइ सेस " ॥ १ ॥ " भगवाने आज्ञा आराधनमा ज चारित्र कह्यु छे. आज्ञानो लोप थवा पछी शु बाकी रहे एटले चारित्र क्याथी रहे ? जेणे गुरु आज्ञाने अतिक्रमी ते हवे कोनी आज्ञा आराधे ? अर्थात् ते कोइनी पण आज्ञा माने नहीं " फरी सर्व तत्त्वज्ञान, चारित्रनु खास रहस्य, आगम पेटीनी चावी, विद्या अने मंत्रोनी सिध्धि, धर्मनु गूढ तत्त्व-ए सर्व गुरु आधीन होवाथी मोक्षार्थीए खास करीने गुर्वाधीन ज पोतानु जीवन व्यतीत करवु, एटले गुरुपादसेवामा ज जीवन चरितार्थ करवु जेथी सर्व सिद्धियोपूर्वक आगमनु गूढ रहस्य त्याथी बराबर उपलब्ध थाय अने परिणामे कल्याण प्राप्ति पण थइ शके " णाणस्स होइ भागी, थिरयरो दंसणे चारित्ते य । धन्ना आवकहाए, गुरुकुलवास न मुंचंति " ॥ १ ॥ एव आ अनंतसंसारना दुःखनो नाश करनार अने मोक्षदर्शक गुरु सिवाय आ भूतलमा कोई नथी, एवु धारी तेओने आज्ञाधीन रहेवाथी तेओनी परमकृपामय प्रसन्नता प्राप्त थाय छे गुरु प्रसन्नता पासे जगत्ना तमाम पदार्थो तुच्छ जेवा भासे छे गुरुकृपा ए ज परम प्राप्तव्य तत्त्व छे आ तत्त्व ज परमगुरु-जे परमेश्वर तेनी प्राप्तिनुं मुख्य बीज छे एटले गुरुकृपा फल्या पछी परमेश्वरनी कृपा विनाविलंबे हाथमा आवे छे परमार्थ के-जेओ गुरु आज्ञा आराधक होय तेओ अवश्यमेव प्रभु आज्ञानु पालन करे छे अने जेणे गुरु आज्ञा लोपी तेणे प्रभु आज्ञानु पण अवश्य खुन कर्यु जाणवु, माटे अहीं गुरु पराधीनताने ईश्वरप्राप्तिनु मुख्य अग कह्यु । छे.

निदान के-छेवटे तेनाथी ज तेने मोक्षप्राप्ति थाय छे निष्कर्ष एटलो ज के-मुनिये गुरुआज्ञाधीन रहेवु, गुरुकुलमा वास करवो, तेनाथी ज परमेश्वरनी प्राप्ति अने छेवटे मोक्ष थाय छे ए रीते उपदेशके ' मध्यमबुद्धि ' वर्गने उपदेश आपवो

आ रीते गुर्वाधीनता जणावी छेवटमा ' मध्यम० ' योग्य उपदेशनो उपसहार दर्शावी अहथी आर्याथी आचार्यश्री 'बुध' योग्य उपदेशविधिनी प्रस्तावनानो उल्लेख करे छे-

इत्यादि साधुवृत्त मध्यमबुद्धे
सदा समाख्येयम् ॥
आगमतत्त्वं तु पर बुधस्य,
भावप्रधानं तु ॥ २-११ ॥

मूलार्थ—पूर्वे दर्शाव्या प्रमाणे साधुओनु सद्वर्तन-सुदर आचरण, क्रियाकुशलता उपदेशके निरतर 'मध्यमबुद्धि' वर्ग पासे कथन करवु, अने ' बुधवर्ग 'ने तो रहस्यप्रधान आगमतत्त्वनो ज उपदेश आपवो

" उपसहार "

स्पष्टीकरण—अत्र ग्रयकर्त्ता पूर्वार्धभागमा ' मध्यमबुद्धि ' योग्य उपदेशविधिनो उपसहार दर्शावे छे ने उत्तरार्धथी ' बुध ' योग्य उपदेशनो प्रस्ताव करे छे. आ, श्लोकनो भाव

स्पष्ट ज छे एटले तेनो विस्तार करवो ए ग्रथना कलेवरने वधारवारूप ज थाय तुरमा आचार्यश्री कहे छे के—अमे पूर्वे जे 'मध्यमबुद्धि' माटे ईर्यासमिति आदि आठ प्रवचनमातानु स्वरूप दर्शावी तेनु पालन करवानु जणाव्यु, सिद्धान्त-तत्त्व ग्रहण करवानी योग्यता दर्शावी, गुर्वाधीनता, गुरुआज्ञाग्राह्यता विगेरे उपदेशविधिनो प्रकार दर्शाव्यो तेना पर उपदेशके बराबर ध्यान आपी तदनुकूलपणे तथाप्रकारनो उपदेश 'मध्यमबुद्धि' ने हमेशा कथन करवो एटले सम्यगूरीत्या साधुओनु सद्वर्तन जणावनु. जेना श्रवणथी आ लोको धर्मकार्यमा अधिक श्रद्धालु बनी परिणामे बुधनी कोटीमा दाखल थाय अर्थात् उपदेशकनी उपदेशकुशलता त्यारे ज प्रशस्यतर गणाय के ज्यारे श्रोता उपदेशबलथी स्थापित श्रद्धामा मजबूत रही अचिरु धर्मरुचिपणु अने तत्त्वज्ञमति प्राप्त करे. बस आही 'मध्यम' योग्य उपदेशविधि ग्रथकर्त्ता समाप्त करे छे

" उपक्रम "

एटले अम प्राप्त अने बुधनी कोटीमा आवेल मध्यमजनो जेनी अभिलाषा करे एवा बुध योग्य उपदेशनी आचार्यश्री प्रस्तावना करे छे. 'आगमतत्त्वना प्रेमी अने हम्मेशा आगमतत्त्वनी ज शोधमा, परीक्षामा लीन होय ते बुध' आ लक्षण ग्रथकर्ता आगल जणावी गया छे अतएव आ लोकोने उपदेशके आगमतत्त्वनो उपदेश आपवो एटले आगमनु खरु रहस्य

कथन करवु आगमतत्त्व "आत्मास्ति स च परिणामी०" ए श्लोकथी ग्रथकार प्रथम प्रकरणमा जणावी गया छे ते ज तत्त्व अहीं 'बुध' वर्गने उपदेशवु, अने प्रवचनमा प्रवचननु मौलिक रहस्य दर्शाववु जे हवे पछी ग्रथकर्ता जणावे छे. मूलमां जे 'तु' शब्द छे ते एवकार अर्थमा होवाथी निश्चयेन पूर्वोक्त ज तत्त्व विगेरे कथन करवु.

" दर्शित सबधवालो बुध योग्य उपदेशनो प्रकार आचार्यश्री दर्शावे छे "

वचनाराधनया खलु
धर्मस्तद्बाधया त्वधर्म इति ॥
इदमत्र धर्मगुह्य
सर्वस्व चैतदेवास्य ॥ २–१२ ॥

मूलार्थ–सर्वज्ञ भगवनोक्त वचन–आज्ञानु आराधन–आज्ञानुकूल वर्तन करवु ते ज सत्यधर्म अने तेनी विराधना–प्रतिकूल वर्तन आचरवु ते ज अधर्म जाणवो अत्र सर्वज्ञागममा ए ज धर्मनु गूढ रहस्य छे ने ए ज धर्मनु मुख्य सर्वस्व सार छे, आ सिवाय धर्मनु अन्य काइ तत्त्व नथी.

" बुध–देशना "

स्पष्टीकरण–अहीं 'वचन–आगम' वचन एटले आगम सिध्धान्त–प्रवचन, अने बुध एटले पडित–तत्त्वज्ञ ए अर्

खास लक्षमां राखवा. बुध तेज जाणवो के-जे उपरनी बनावट अथवा तथाप्रकारनी विशिष्ट क्रियाना वेशना आडंबरथी न रंगाय, किन्तु साचा झवेरीनी माफक पाणीदार हीरा-मोतीनी परीक्षा करे-स्वीकारे अतः बुधजन उपरनो वेश देखी राजी न थाय, ते तो यथाविडम्बकोमां पण छे एवं उत्कृष्ट त्याग, वैराग्य के क्रियाओ देखीने पण खुश न थाय, ते सर्व जमाली, गोशालो के निह्नवोमां पण हती, होय छे, किन्तु क्रिया अने वेश साथे प्रभुना वचननो आदर, प्रेम तथा भक्ति केटली छे? ते ज तपासे छे ने तेनाथी ज मुग्ध बने छे, कारण के पूर्वे पण्ण भमाणे विधि-निषेधनु प्रतिपादन करनार जे सर्वज्ञ भगवंतनु आगमरूप वचन तेनी आराधना करवी ते ज मौलिक धर्म कह्यो छे भावार्थ एटलो के-आगमानुसारी आगमदर्शित मार्गमां प्रवृत्ति करवी, आगमना एक वाक्यने पण बाध न आवे तेम हेयनो हेयरीत्या जाणी परित्याग करवो अने उपादेयनो उपादेय जाणी आदर करवो ते ज परमार्थ धर्म जाणवो अर्थात् उत्कृष्ट क्रियानी आराधना अने उत्कृष्ट तप के चारित्रनु पालन आत्मा सर्वज्ञना एक वचनथी पण उलटो चाली कर तो ते पलालपुंज बराबर निर्माल्य ज समजवु. निदान के-भगवानना वचननु पालन करवामां ज सम्यक्त्व, श्रुत अने चारित्र ए त्रणेनी साफल्यता समजवी अतएव भगवाने "कडेमाणे कडे" ए सूत्रनी नहीं श्रद्धा करनार उत्कृष्ट चारित्री जमालीने पण निह्नव कह्यो वळी आ वचनथी उलटी गति करवी, स्वमतिने आगल करी वचननो लोप करवो

अथवा वचननो दुरुपयोग के अनर्थ करवो, पोताना आग्रहने, धारणाने पोषवा माटे सर्वज्ञवचननो उपयोग करवो ए सर्व प्रभु आज्ञानु खूनरूप चेष्टा होवाथी अधर्म ज जाणवो निदान के-तेथी आत्मा ससारना दु खनु पात्र ज बने छे

" वचनाराधकतामा आराधकता "

भगवान् हरिभद्रसूरिजी महाराज जणावे छे के-उपदेशके बुध श्रोताने खुल्लु जणाववु के-प्रभुना वचननु पालन करवु ते ज धर्म अने तेनो अनादर-अपालन करवु ते अधर्म, ए ज अहीं जैन प्रवचनमा धर्मनु नितान्त सत्य-गूढतत्त्व कयु छे, अने ए ज सपूर्ण द्वादशागीनु परमतत्त्व-सर्वसारभूत प्रधान तत्त्व कह्यु छे निष्कर्ष ए के-प्रवचनज्ञाननु फल ए ज के शक्ति छता तदनुकूल क्रिया-वर्तन करवु अने वधु माटे पूर्ण आदर साथे अपेक्षा मानबुद्धि धारवी, श्रोता समीपे सत्य तत्त्वनु कथन करवु अने पोतानी अशक्ति जाहेर करवी; कारण के श्रद्धाथी पडेला आत्मानो उद्धार कदापि थतो नथी पण क्रिया-पतितनो तो उद्धार थइ जाय छे, एटले प्रभु आज्ञानु पालन करवु ए ज सत्य धर्म अहीं दर्शाव्यो प्रभु हेमचद्रसूरिजी पण ए ज दर्शावे छे के—" आज्ञाराद्धा विराद्धा च, शिवाय च भवाय च। इतीयमार्हती मुष्टि-रन्यद्स्याः प्रपचन" ॥ १ ॥ आ माटे ज भगवतो आगम प्रमाणे वर्तनारने आराधक कहे छे ने एक अक्षरने पण नहीं माननारने अनत ससारी जणावे छे, तेनु कारण ए ज के-जेणे आगमाज्ञा मानी

तेणे सर्व आगमोक्त वातो मान्य करी, अने जेणे एक अक्षर लोप्यो तेणे प्रभुनो पण अनादर कर्यो अत प्रभु आज्ञानुं पालन करवुं ए ज धर्मनुं परमतत्त्व छे, ए रीते 'बुद्धजन' पासे उपदेशके कथन करवुं. निदान के–आगमाज्ञानी प्राधान्यता–श्रेष्ठता–सर्वकर्तव्यता दर्शाववी.

" विचित्र दलीलो "

" अरे ! आ प्रकारना उपदेश आपवाथी तो बाह्य अने आभ्यंतर आचारोनी अप्रधानता बल्के असारता ज प्रतिभासमान थाय छे. अथवा आ उपदेशथी आ लोकोनी आचार परत्वेनी रुचिनो नाश ज केम न थाय ? जो आम ज होय तो पछी बालजनने बाह्य आचार संबंधी उपदेश, मध्यमजनने आभ्यंतर आचार संबंधी उपदेश आपवो नकामो ज मानवो जोइये; माटे सर्व अनुष्ठानोने गौण करी वचनाराधनमां ज धर्म केम न कह्यो ? आ बधी शंकाओने दूर करवा समग्र अनुष्ठानोनुं मूल प्रभु आज्ञा ज छे ए वात दर्शावता आचार्यश्री परमार्थ उपदेश देखाडे छे "—

यस्मात्प्रवर्त्तकं भुवि,
निवर्त्तकं चान्तरात्मनो वचनं ॥
धर्मश्चैतत्संस्थो,
मौनीन्द्रं चैतदिह परमं ॥ २–१३ ॥

मूलार्थ—अतरात्माने विधेयकार्यमा प्रवर्तक अने निषिद्ध कार्योथी निवृत्तिकारक आ भूमडलमा केवल सर्वज्ञोक्त प्रवचन ज उत्कृष्टतो छे, अने परमार्थतया धर्म पण आ मौनींद्रना प्रवचन सिवाय अन्यत्र नथी

" मननी स्थिति "

स्पष्टीकरण—विशिष्ट पवित्र अथवा अपवित्र कार्योमां आत्मा मननी प्रेरणा विना गति करवाने घणा अशे असमर्थ ज बने छे, एटले प्रथम मन इच्छे छे ने पश्चात् आत्माने प्रेरे छे. यद्यपि असज्ञी द्विद्रियादि जीवो मनहीन होवा छता प्रत्येक क्रियाओ शरीरद्वारा ज करे छे, एव सज्ञी आत्माओ पण घणी वार मन विना क्रियाओ करता अनुभवाय छे; तथापि अहीं भावरूप मन कायम होवाथी मनपूर्वक ज क्रिया–प्रवृत्ति थाय छे एम समजवु निदान के–प्रवृत्ति–निवृत्तिमा मुख्यतया मन ज कारणभूत छे–" मन एव मनुष्याणा कारण बधमोक्षयोः " आचारागसूत्रमा पण कह्यु छे के–" जे आसवा ते परिसवा, जे परिसवा ते आसवा " " जे आश्रवो ते ज निर्जराना कारणो थाय छे, अने जे निर्जराना कारणो छे ते ज आश्रवना हेतुओ थाय छे " आ कथनमा पण मननी ज मुख्यता दर्शावी छे वळी सातमी नारकी योग्य कर्मो अने उच्च देवत्व योग्य कर्मो पण आत्मा मननी सहायताथी ज बाधी शके छे एटले मन विना आत्मा जे काइ प्रवृत्ति करे ते मात्र सामान्य ज जाणवी, परतु विशिष्ट प्रवृत्ति तो आत्मा

मनद्वारा ज करे छे शुभाशुभ कार्योमां मन मुख्य मान्यु छे, माटे मन कदाचित् अशुभने शुभतया अने शुभने अशुभतया परिणमावी शके ए सहज छे आथी मनने जे संस्कार मले तेवी रीते ते परिणमे छे ने प्रवृत्ति-निवृत्तिमां साधक बने छे. अतः आत्मानी ऐच्छिक इष्टसिद्धि माटे प्रथम मनने ज सुशिक्षित अने पवित्र संस्कारी बनाववु उचित छे. जेम थया पछी मन तप, संयम, स्वाध्याय, शील आदिने आदेय मानी तेमां प्रवृत्ति, अने हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदिने हेय मानी तेनी निवृत्ति करे छे परंतु आ प्रकारनी विवेकशाली प्रवृत्ति-निवृत्ति करवानु बल मनने सुसंस्कारो अथवा ज्ञानप्राप्ति थया विना प्राप्त थवु दुःसाध्य छे-बराबर मन समजदार थया पछी ज करे छे.

" सर्वज्ञवचन "

आथी ग्रंथकर्ता जणावे छे के-'यस्मात्०'आ भूमंडलमां शुभ कार्योमां मनने प्रवर्त्तावनार अने अशुभकार्योथी निवृत्ति करावनार केवल सर्वज्ञकथित सिद्धान्त-प्रवचन सिवाय अन्य कोइ पण साधन नथी; कारण के सर्वज्ञ प्रवचनमां ज प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्गो दर्शावी हेय, उपादेय पदार्थो अच्छी रीते दर्शाया छे. सिवाय एक पण एवु प्रवचन जगतमां नथी के जेमां विरोधी, स्वार्थनु अने स्खलित कथन न होय. सर्वज्ञवचननो बोध थया पछी आत्मा हेयनो त्याग अने उपादेयनु उपादान करे छे एटले मनने सर्वज्ञागमना अभ्यासथी संस्कारित बनाववु जोइए. कारण के-सर्वज्ञागमनु परिशीलन करवु ते ज वास्तविक धर्म छे; हिंसादिथी निवर्तवु अने तप, स्वाध्यायादिमां प्रवृत्ति करवी ते

तो धर्मनो बाह्य व्यापारमात्र छे निदान के-मन तथाप्रकारे आगमथी संस्कारी थया पछी सहजतया शुभाशुभमां प्रवृत्ति-निवृत्ति करे छे, अतएव आगमोक्तत्त्वनी आराधना करवी तेमां खरो धर्म जणाव्यो. आ मन बराबर अचलपणे प्रवृत्ति-निवृत्ति कर छे, एटले सुंदर चारित्र, तप, स्वाध्याय, ध्यान, क्रिया-कुशलता आदि धर्मना प्रधान अंगो पण आत्माने सहजतया उपलब्ध थाय छे अर्थात् आ मन कदापि आ व्यापारोनी उपेक्षा करतु नथी बल्के परमश्रद्धापूर्वक सुविशुद्धपणे आचरे छे-कन्नापि भग थवा हेतु नथी माटे ज अहीं प्रघस्ता कहे छे के-" धर्मश्चैतत्संस्थो " धर्म आ भगवतकथित प्रवचननी सेवामां अबाधपणे रह्यो छे अने जैनशासनमां आ सर्वज्ञवचन ज परमतत्त्व-उत्कृष्ट धर्म छे तुस्मा सर्व अनुष्ठानोनु मुख्य जीवन-प्रधान आधार सर्वज्ञवचन ज जाणवु

" शंकानो उद्धार "

देहना प्रत्येक अवयवो अने इंद्रियोनो व्यापार-स्थम मुख्य प्राणो ज छे प्राणनो नाश थया पछी सर्व व्यापारोनो लोप आपोआप ज थइ जाय छे, एव सर्व अनुष्ठानोनी आराध्यता सर्वज्ञवचननी आराध्यताथी बने छे, अने सर्वज्ञवचननी विराधना करवाथी सर्व अनुष्ठनो निर्जीव तुल्य समजवा, माटे बुध योग्य उपदेशविधिमां सर्वज्ञवचननी प्राधान्यता जणावी परतु आ कथनथी अन्य अनुष्ठानो गौण अथवा नकामा नथी समजवाना; बल्के सर्वज्ञवचननी प्रधानता दर्शाववाथी तेनाथी अभिन्न

एवा आगमोक्त सर्वे अनुष्ठानो पण मुख्य ज जणाव्या, एटले नितान्त आदेय अने अनुष्ठेय जाणवा. अन्यथा आगमदर्शित अनुष्ठानोनु अबहुमान के अश्रद्धा करवाथी फरी आगम-वचननु ज अबहुमान कर्युं जाणवु, तथा तेम करवाथी अधर्म ज थाय. आटला कथनथी प्रथमनी सर्वे शकाओनु पण निरसन थइ गयु. उपाध्यायजी कहे छे के–धर्म अहीं व्यापार-रूप ज्ञापकता सबधथी जाणवो, एटले आगम ए धर्मनु ज्ञापक छे; ज्यारे धर्म अने ज्ञेय जाणवो छेवटे टीकाकार जणावे छे के—सर्वज्ञोक्तेन शास्त्रेण, विविक्त्या योऽत्र तत्त्वत । न्यायतः क्रियते धर्म्मः, स धर्म्मः स च सिद्धये ॥ १ ॥ " सर्वज्ञभाषित शास्त्रोमा कहेल तत्त्वनु भान–बोध करी न्यायरूपे जे काइ करवामा आवे तेनु ज नाम अने जैन-सिद्धान्तमा धर्म कह्यो छे अने आ ज धर्मसिद्धि आपे छे; बाकी कोई पण धर्म मोक्षदायी मान्यो नथी. " आ वात पर घणु बहु विचारवु अने तथाप्रकारे बुधजनने उपदेश आपवो

" सर्वज्ञवचननी मुख्यता अहीं आ शाटे जणावी ? तेनो हेतु ग्रथकर्ता स्पष्ट करे छे "

अस्मिन् हृदयस्थे सति,
हृदयस्थस्तत्त्वतो मुनींद्र इति ॥
हृदयस्थिते च तस्मिन्नि
यमात्सर्वार्थससिद्धि· ॥ २–१४ ॥

मूलार्थ–सर्वज्ञवचन–सिद्धान्तने हृदयांकित करवाथी एटले चित्तमां स्थापन कर्या पछी परमार्थथी सिद्धान्तद्वारा मुनींद्र–सर्वज्ञ भगवाननी ज हृदयमां स्थापना कराय छे, अतः भगवान हृदयमां बीराजवाथी आत्मा पोतानी सर्व अभीष्ट सिद्धियोने नियमेन विनाविलंबे प्राप्त करे छे.

" प्रभुप्राप्तिनो मार्ग "

स्पष्टीकरण––अभीष्ट अर्थोनी सिद्धि परमात्मानी प्रसन्नता सिवाय न ज थाय ए तो सर्वसाधारण वात छे परमात्मानी प्रसन्नता खाली तेनी विविध पूजाओ करवाथी अने मंदिरो बंधाववाथी ज न मले, किंतु परमात्माने प्रसन्न करी तेने पोताना हृदयमंदिरमां स्थापन करवानो मार्ग अलौकिक अने घणो सरल छे, ते ज वात अत्र आचार्यश्री स्पष्ट करे छे जनता परमात्माने खुशी करवानो अने तेने मेळववानो मार्ग वारवार पूछे छे, तेना माटे आचार्यश्री कहे छे–" अस्मिन् हृदयस्थे " आ विधि, प्रतिषेध, उत्सर्ग, अपवाद आदि मार्ग-दर्शक लौकिक–लोकोत्तर कल्याणमार्गप्ररूपक स्याद्वाद-शैलीमय एवुं पूर्वोक्त आगमवचन–सिद्धान्तकथित आज्ञाओ हृदयमां धारवाथी, अर्थात् आत्मा सामान्य के विशेष जे काइ प्रवृत्ति–निवृत्ति आचरे ते सर्व सिद्धान्तनी आज्ञा अनुकूलपणे ज यदि आचरे तो " तत्त्वतो० " परमार्थथी आत्मा परमेश्वरनु ज नितान्त बहुमान करे छे, कारण के–परमेश्वर उपर ज्यारे अनन्य भक्ति–बहुमान होय त्यारे ज भव्य आत्मा तदुक्त प्रत्येक

" अभीष्ट सिद्धियो "

अतएव भगवान हृदयमा विराजवाथी नियमेन आत्माने सर्व अर्थो–अभिष्टोनी सम्यक्तया सिद्धि थाय छे निदान क–भगवान मल्या पछी क्यो पदार्थ जगतमा एवो छे के आत्मा सहजतया (सहेलाइथी) न मेलवी शके ? टुकमा तप, जपादिनी सिद्धि, अणिमिद्धिनी प्राप्ति, शरीर सबधी दु खोनो ह्रास, इन्द्र चक्रवर्त्यादिनी रिद्धियो अने छेवटे ससारनो नाश यइ परमात्मा साथे एकाकारपणु हस्तगत थवु आत्माने काइ दुःसाध्य नथी अल्पकालेन अभिलषित स्थानोनी प्राप्ति थाय छे, केवल परमेश्वरनी हृदयमा अवूभूत रीते स्थापना थवी जोइये; माटे ज मुमुक्षुजनने उपदेशके भगवाननी आज्ञा आराधवानो प्रधानतर उपदेश आपवो अने तेनो प्रभाव आ रीते जणाववो

" भगवाननी प्रसन्नताथी सर्व कार्योनी सिद्धि थाय छे, एवु जणावी भगवानना माहात्म्यनी ग्रथकर्त्ताए आटली स्तुति शा माटे करी ? शु भगवान सर्व कार्यो करी आपे छे रारा ? आ शकानु समाधान ग्रथकर्त्ता दृष्टातनी घटना साथे करे छे "

चिंतामणिः परोऽसौ
तेनैव भवति समरसापत्तिः ॥
सैवेह योगिमाता,
निर्वाणफलप्रदा प्रोक्ता ॥ २-१५ ॥

मूलार्थ—आ भगवान्—जिनेश्वरदेव चिंतामणिरत्न

करता पण उत्कृष्ट रत्नरूप छे, कारण के आ वीतरागदेवथी ज आत्माने एकान्त उपशम-शान्तरसनी प्राप्ति थाय छे, अने महर्षियोए आ उपशमरसनी प्राप्तिने ज योगियोनी माता तथा निर्वाण-मोक्षफलदायी कही छे

" चिंतामणिनी उपमा "

स्पष्टीकरण—अत्र भगवाननी उत्कृष्टता दर्शावता आचार्यश्री सर्वतो सुन्दर दृष्टान्त आपी तेमनी आराध्यता बराबर सिद्ध करे छे भगवान सर्वतोश्रेष्ठ होवाथी अद्भूत आश्चर्योत्पादक दृष्टान्त साथे ज तेमनी कारुक साम्यता दर्शाववी ए पाठको माटे सरलता गणाय भूतल पर चिंतामणि सर्वोत्तम पदार्थ मनायो छे आ रत्न जड छता तेनी सेवा करनारने अभिष्ट फलो तेना मालिक (अधिष्ठायक) देवता अर्पण करे छे एव आ भगवान पण पोताना बहुमान, भक्ति, श्रद्धा, आज्ञापालन करनारने पण आ लोक तथा परलोक सबधी सर्व इष्ट पदार्थो पूरण करे छे. यद्यपि भगवान वीतराग होवाथी अभक्त, अपूजक, अश्रद्धालु सामे क्रोध अने आराधक-पूजक सामे प्रेम दर्शावता नथी तेओ तो सर्व जगतने समदृष्टिए ज निहाळे छे, अन्यथा भगवतमा वीतरागपणु ज न कहेवाय, तथापि चिंतामणिनी भक्तियी आकर्षायेल तेना मालीक देवता सेवकनी कामनाओ पूरे छे एटले आ अभिष्ट सिद्धियो चिंतामणिना आलबनथी ज प्राप्त थइ परतु परमार्थ रीते तो चिंतामणि ज अर्पण करे छे एवो व्यवहार जगतमा प्रवर्त्यो छे, तथाप्रकारे जिनम-

णित आगमानुसार उपादेय–हेयादिमा प्रवृत्ति–निवृत्ति करनार आत्माने अलौकिक लोकलोकोत्तर सिध्धियो तत्काल सहजतया उपलब्ध थाय छे एटले–" व्यवहारमा जेम अमुक माणसनी सलाहथी अमुक माणस कोइ जातनु कार्य अगर व्यापार करे एव मार्गमा गमन करे अने तेमा ज्यारे पोते फतेह मेळवे त्यारे ते माणस एमज समजे छे के अमुकनी सलाहथी–वचनथी हु फाल्यो माटे ते माणसे ज मने सुखी कर्यो " अत्र माणसना वचनथी जे सिद्धि थइ ते माणसे ज सिद्धियो अर्पी एवु उच्चारता, मानता अने व्यवहार करता जनताने आपणे सामान्य दृष्टिथी जोइये छीये, तो पछी अहीं भगवानना वचनाधारे प्रवृत्ति करनार आत्मा जे सिद्धि मेळवे ते भगवाने ज अर्पण करी ए व्यवहार शामाटे अनुचित मानवो ? अर्थात् भगवान ज अर्पण करे छे ए उक्तिमा काइ अनौचित्यपणु समजातु नथी. अत भगवानने चिंतामणिनी उपमा बराबर चरितार्थ थइ शके छे.

" अनौपम्य भगवान "

वधुमा भगवान तो चिंतामणिनी अपेक्षाए अधिक फल अर्पणकर्ता होवाथी भगवाननी आगल चिंतामणी पण सामान्य पत्थरवत् समजवो, कारण के चिंतामणि तो मात्र इहलोक सबधी ज तुच्छ पदार्थो अर्पण करे छे पण जन्मातरना सुखो आपवाने समर्थ नथी थतो, ज्यारे भगवान तो लोक लोकोत्तरना दिव्य सुखो अर्पण करी अखड आत्मानदने

अर्पण करे छे, जेथी आत्माने आ ससारना भयानक स्वप्नाने जोवानो समय फरीने आवतो नथी

"प्रभुथी समरस लाभ"

आ ज वातनो उद्देश ग्रथकर्ता जणावे छे के–"तेनैव भवति समरसापत्तिः" भगवद् वचनाधारे प्रवृत्ति करवानु, भगवाननु बहुमान के पूजा करवानु खरु फल ए छे के आत्मा भगवत जेवो उपशमभाव प्राप्त करे–एटले कषायोनी क्षीणता थइ जाय हेतु ए के-कषायोनी क्षीणता विना साक्षात् भगवद् प्राप्ति थती नथी अने आत्मानो वास्तव धर्म उपशमभाव-स्वस्वभावमा रमणता करवानो ज छे. आ स्वरूप खरी रीते भगवानना वचनोथी आत्माने उपलब्ध थाय छे, माटे अहीं जणाव्यु के भगवान पासेथी ज आ समरस–उपशमरसनी प्राप्ति थाय छे, कारण के प्रभुकथित वचनरूपी अमृत एवु छे के आत्मा तथाप्रकारे वर्ते तो जरुर अमृतभावमय ज थइ जाय

"समापत्तिनु स्वरूप"

अथवा टीकाकार "तेनैव भवति समरसापत्तिः" ए चरणनो अन्यार्थ निकाले छे. "ते भगवानथी ज आत्मा समरसनी प्राप्ति करे छे" अत्र 'रस' शब्द भाव अर्थनो वाचक छे एटले समभावनो लाभ पामे छे. जिनभगवतोए स्ववचनथी जेम जगतना कल्याण माटे [illegible]
[illegible] छे तेम परमेश्वरनु पण यथार्थ

सकोने प्रकाश्यु छे, जेथी आगमना अभ्यासी अने आग
नुसार प्रवृत्तिकारको पोतानु कल्याण निराबाधपणे साधी श
अर्थात् आगमोक्त मार्गमा चाली जे साधनोद्वारा परमेश्व
प्राप्ति जणावी छे ते साधनो उपलब्ध करी, परमेश्वर
हृदयमा बराबर स्थापन करी सर्व वृत्तियो-विकल्पो
केवल परमेश्वरना ज ध्यान-विचारमा तन्मय थने छे
आ समये ते विशिष्टात्मा अने परमेश्वरनो जाणे अभे
थयो होय तेवो आ आगमोक्तकारी आत्माने अनुभव
आनु नाम आचार्यश्री 'समापत्ति' ध्यान कहे छे

" ध्याता, ध्येय अने ध्यान "

आ विषयने समजाववा टीकाकार योगशास्त्रने
छे. 'क्षीणवृत्तेरभिजात्यस्येव मणेर्ग्रहीतृ
तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः" ध्याता, ध्येय
त्रिकोटीनी ज्यारे ऐक्यता थाय त्यारे ते 'समा
प्राप्ति कही छे जेम सुंदर अने स्वच्छ जा

स्थानमा विराजमान छे एम दृष्टाने (जोनारने) प्रत्यक्ष मालुम थाय छे. एटले ग्राह्यवर्ण, ग्रहीतृमणि अने वर्णने स्वीकारी तन्मय थवानो मणिनो स्वभाव ते ग्रहण–आ त्रणे भाववर्ण अने मणिमा साक्षात् अनुभवाता होवाथी स्वच्छ अने निर्दोष सुंदर मणि लाल, पीळु, आस्मानी, कृष्ण वर्णवाळु आपणे सौ साधारण दृष्टिथी जोइ शकीए छीए परमार्थ के–मणि कपडाना सबंध मात्रथी तथाप्रकारना वर्णमय थइ जाय छे ए ज रीते अहीं आत्मा अने परमेश्वरमा आ दृष्टान्तनी बराबर साम्यता–घटना समजवी आत्मा ज्यारे आगमोक्त परमेश्वरनु स्वरूप समजी–विचारी तदीय ध्यानमा तन्मय बनी परमात्मा साथे एकाकार बने छे त्यारे आत्मा पण सर्वज्ञरूप–परमात्मरूपपणानो परमार्थथी अनुभव करे छे एटले ध्येय परमात्मा, ध्याता–विचारकर्ता आत्मा अने ध्यान ते परमात्माना स्वरूपनो विचार–आ त्रणेनो समागम ते ' समापत्ति ' परमात्मा सर्वेने ध्येयस्वरूप प्राप्तव्य होवाथी परमात्मा ध्येय अने तेमना स्वरूपनो–गुणोनो अभ्यास, परिशीलन, विचार ते ध्यान, तथा विवेकी आत्मा आ स्वरूपनो विचार–अभ्यासकर्ता होवाथी ते ध्याता आ त्रणेनो ज्यारे समागम–ऐक्यता थाय त्यारे विवेकी आत्मा सर्वज्ञना ध्यानरूप ग्राह्य आलंबनद्वाराए सर्वज्ञरूपनो अनुभव करे छे एटले ते आत्मा पण सर्वज्ञरूप कहेवाय, कारण के–आ समये ते आत्मा ' मयि तद्रूप स एवाहं ' 'मारामा भगवाननु रूप छे, अने हु भगवद्रूप छु ' ए ज भाव विज्ञानद्वाराए अनुभवे छे. माटे

अहीं ग्रथकर्ताए उल्लेख कर्यो के–आ पूर्वोक्त ' समापत्ति ' रूप भावावस्था आत्माने परमात्मारूप बाह्य आलंबनद्वारा ज उपलब्ध थाय छे; सिवाय ते अवस्था अप्राप्य ज जाणवी.

" योग तथा योगि अने योगिमाता "

आटलो निर्देश करी फरी ग्रंथकर्ता आ ' समापत्ति ' नी प्राधान्यता, आराध्यतानी अलौकिकता सिद्ध करवा उत्तरार्धथी प्रकाड प्ररूपणा करे छे. ' सैवेह योगिमाता ' दर्शित ' समापत्ति ' ज अहीं–जैनदर्शनमा अथवा सर्वदर्शनमा योगि-योनी माता कही छे ' मोक्षेण योजनात् योग ' जेथी आत्मानो मोक्ष साथे बराबर संबंध थाय ते योग. आ योगने जेओ पाम्या तेओ योगि कहेवाय योग तथा योगि शब्दनो भत आ अर्थ होवाथी सम्यक्त्व, ज्ञान, संयम, कषायविजय, इंद्रियनिग्रह, शान्ति, शौच, ब्रह्मचर्य, निर्ममत्व–आ सर्व योग-मार्गो छे अने ते मार्गमा चालनार सर्व योगि जाणवा. खाली बाह्यथी जटा वधारी, कौपीन वल्कल के व्याघ्र के मृगचर्म धारी, भस्म चोळी वेश करवो ते काइ योगिपणु न कहेवाय. जेमा मोक्षनो संबंध आत्मा साथे न थाय तेनु नाम योग नथी कह्यो. आ योगियोने उपरोक्त योग धारवानु मुख्य फल परमात्म-प्राप्ति सिवाय अन्य अभीष्ट नथी कह्यु, अर्थात् आ सर्व योगियो पण योगमार्गना पथमा विचरी परमात्माना ध्यान-रूप ' समापत्ति ' अवस्थानो लाभ करी ते द्वाराए अनुक्रमे परमात्मा अने पोते बन्ने तुल्यस्थान स्थित बने छे एटले

परमार्थ ए के–योगियो ' समापत्ति ' ध्याननी सिद्धि माटे ज आ सम्यक्त्व आदि योगो धारे छे ज्यां सुधी आ ध्यान-सिद्धि न थाय त्यां सुधी योगियोनो योगप्रयत्न अर्थहीन जेवो मान्यो छे, माटे योगियोनी सर्व कार्यसिद्धि आ ' समापत्ति ' ध्यानथी ज थाय छे अतएव आ ' समापत्ति ' ने नितान्त योगियोनी माता अहीं जणावी

" निर्वाणफलदर्शन "

ए ज वात अन्यत्र कही छे–" सम्यक्त्वज्ञानचारित्र-योग सद्योग उच्यते । एतद्योगाद्धि योगी स्यात् परमब्रह्मसाधकः " ॥ १ ॥ अन्तमा ग्रंथकर्त्ता आ ' समापत्ति ' ने ' निर्वाणफलप्रदा प्रोक्ता ' निर्वाण–मोक्षफल दात्री महर्षियोए कही छे एवो निर्देश कर छे निष्कर्ष ए के–आ ' समापत्ति ' प्राप्त थया पछी मोक्षफल अवश्यमेव आत्माने सुलभ्य थाय छे " इलिका भ्रमरीं ध्यायन् भ्रमरीत्व-मुपतिष्ठते " ' इयल भ्रमरीनु ध्यान करवाथी छेवटे भ्रमरी-पणाने पामे छे ' तथाप्रकारे योगियो पण परमात्मानु ' समापत्ति ' रूप ध्यान पामी परमात्मावस्थाने–मोक्षभावने पामे छे, आम अनुभववेदी सर्वदर्शी महापुरुषो अने पूर्वधर आचार्यो कहे छे द्रुकमा आगमानुसारी प्रवर्तक स्वहृदयमा पूर्वोक्त न्याय्ये आगमद्वाराए परमात्माने स्थापन करी ते परमात्मरूप आल-बनथी ' समापत्ति ' रूप खरु ध्यान पामी छेवटे मोक्षस्थानमा विराजे छे अतएव आगमवचननी आराधना ते ज वास्तव धर्म

अहीं 'बुध' वर्ग माटे दर्शाव्यो अतः उपदेशके पण आ स्वरूप बराबर ध्यानमां राखी तथाप्रकारे बुधजनने उपदेश करवो.

"आ अधिकारना प्रारंभमां ग्रंथकर्त्ताए बाल, मध्यम, बुध माटे उपदेशविधिनो प्रकार तत्त्वज्ञोए जे प्रमाणे कर्यो छे तथाप्रकार जणाववानुं कह्युं हतुं" तो अहीं सुधी उपर दर्शाव्या प्रमाणे सिद्धान्तानुसारी उपदेशविधिना प्रकारो कह्या. एटले आचार्यश्रीए 'यथोद्देशः तथा निर्देशः' ए महर्षियोनुं कथन चरितार्थ कर्युं हवे आ 'विधि' नो उपसंहार करी तथाप्रकारे उपदेशदाननुं अपूर्व फल दर्शावी उपदेशकोने ए दिशामां ज गमन करवानी सूचना आपी आ अधिकारने पूर्ण करे छे"

इति यः कथयति धर्मं,
विज्ञायौचित्ययोगमनघमतिः ॥
जनयति स एनमतुलं,
श्रोतृषु निर्वाणफलदमलम् ॥२-१६॥

मूलार्थ.—अनघमति-शुद्धमतिमान् एवा जे धर्मगुरु बाल, मध्यम आदिनी योग्यता बराबर परीक्षी योग्यता प्रमाणे धर्मोपदेश करे छे, तो तेओ श्रोताना हृदयमां मोक्षफलने अर्पण करनार एवा अनन्य-असाधारण धर्मभावनी श्रद्धा स्थापन-उत्पन्न करे छे.

" उपसहार "

स्पष्टीकरण'—उपदेशविधिना प्रकारो दर्शाव्या अत्र तो तेनु फल प्रकाश्यु छे प्रथम तो उपदेश आपवानो अधिकार आगल दर्शाव्या प्रमाणे " धम्मो जिण पण्णत्तो पकप्प जयिणा कहेयव्वो " जिनकथित धर्म कल्प प्रकल्पयति (गीतार्थमुनिए) ज प्ररूपवो, अर्थात्–त्यागी, मोक्षमार्गस्थित अने गुरुकुलवासमा रही योगादि क्रिया आराधी जघन्यथी पण आचारांगादि पाच सूत्रोमा निपुण एवा गीतार्थमुनिए ज धर्मव्याख्या करवी, सिवाय अन्यने तो बोलवानो पण अधिकार नथी तो पछी धर्मदेशनानी वात ज क्या रही ? आ मुनि पण 'अनघमतिः' पापबुद्धि रहित एटले केवल पवित्राशयवान् होय ते ज हेतु ए के–स्वार्थी के आग्रही कदापि शुद्ध उपदेश आपी शक्ता नथी ते पण बाल, मध्यम आदि वर्गनी प्रथम चेष्टा, क्रिया, अभिरुचि, बुद्धि, विचार आदि साधनद्वाराए योग्यतानो बराबर ख्याल करी, तपास कया पछी ते लोकोने धर्मनो बोध थाय, श्रद्धा अने अभिरुचीमा वधारो थाय, उत्तरोत्तर उत्तम उत्तम अवस्थाओ प्राप्त कर तथाप्रकारे पूर्वोक्त उपदेशके तेओना अधिकार प्रमाणे उपदेश आपवो उपदेश आपती वखते एटलु तो खास ध्यान राखवु के उपदेशमा भगवत तथा पूर्वाचार्योना व्हाने स्वमतिकल्पना के आग्रहनु मिश्रण करी श्रोताओने उपदेश न अपाय, कारण के एथी उपदेशक अनतससारनी वृद्धि करी श्रोताने पण कल्याणना बदलामा अकल्याण प्रति घसडी जाय छे एव आज्ञाभाव तथा-

मान–प्रतिष्ठानो लोभ छोडी परिश्रम के शरीरखेदनो विचार कर्या विना मात्र श्रोतानु कल्याण क्या प्रकारे थाय तेवा पवित्र विचारोपूर्वक ज उपदेश आपवो

" उपदेशनु श्रवण फल "

आ रीते उत्तम उपदेश आपवाथी वक्ता आचार्य स्वनुं (पोतानु) कल्याण साधनापूर्वक श्रोताने उत्तम धर्मज पमाडे छे आचार्यश्री कहे छे के–' जनयति स एनमतुल श्रोतृषु निर्वाणफलदमलम् ' आ रीते धर्मोपदेश आपवाथी उपदेशक सारी रीते श्रोताओना चित्तमा असाधारण एवो धर्मप्रेम उत्पन्न करे छे, जेथी श्रोताने एवो दृढ धर्मप्रेम जाग्रत थाय छे के जे परिणामे अवश्यमेव निर्वाण–मोक्षरूप फल अर्पण करवा समर्थ बने छे निदान के–श्रोता छेवटे मोक्ष पामी स्वात्माने कृतकृत्य करवा समर्थ थाय तेवो उत्तरोत्तर शुद्धतर धर्म पामे छे टुकमा–आचार्यना उपदेशमा एवो तो अद्भूत चमत्कार तथा आकर्षण होय के श्रोताने कटाळो के अभाव कदापि उत्पन्न न थाय, किंतु मोरलीना नादथी आकर्षायेला नागनी माफक खेंचाइ खेंचाइने उपस्थित थइ अधिकाधिक श्रवण करवामा दत्तचित्त बने ने पछी परिणामे तथाप्रकारे उपदेशना बलथी उत्तम पंथानुयायी थाय आथी श्रोता अने वक्ता उभयनु परिणामे कल्याण ज थाय छे वधुमा उमास्वाती महाराज कहे छे के–" वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति " आवो उपदेश आपनार आचार्य छेवटे काइ नहीं तो पोताना निर्जरा–तप नि सदेहपणे करे छे.

(३) धर्मलक्षणषोडशकम् ।

" शंका अने संबंध "

गत अधिकारना प्रारंभमां 'बाल' आदि वर्गने सद्धर्मनी देशना आपवानुं जणाव्युं हतुं अने अंतमां " तथाप्रकारे उपदेश आपवाथी उपदेशक श्रोताने असाधारण धर्मप्रेम पेदा करे छे " एटले बन्ने स्थलमां धर्म ए शब्द आवे छे तो धर्म कोने कहेवो ? तथा धर्मनुं लक्षण शुं ? ए आशंकानो उत्तर जणाववा द्वाराए पूर्वाधिकार साथे सुसंबधतया स्थित आचार्यश्री धर्मस्वरूपदर्शक तृतीयाधिकारनो आरंभ करे छे. उपदेशबलथी आत्माने जे धर्म प्राप्त थाय अथवा धर्म उपजावाय ते धर्म कोने कहेवो ? ए शंसय अशंसयपणे उत्पन्न थाय. अत बीजा अधिकार पछी उपरोक्त शंकाने दूर करवाना संबंधवाळो आ त्रीजो अधिकार दर्शावे छे. एटले आ अधिकार संबंधशून्य छे ए शंकाने अहीं अवकाश मळतो नथी.

अस्य स्वलक्षणमिदं
धर्मस्य बुधैः सदैव विज्ञेयं ।
सर्वागमपरिशुद्धं
यदादिमध्यांतकल्याणम् ॥ ३–१ ॥

मान-प्रतिष्ठानो लोभ छोडी परिश्रम के शरीरखेदनो विचार कर्या विना मात्र श्रोतानु कल्याण क्या प्रकारे थाय तेवा पवित्र विचारोपूर्वक ज उपदेश आपवो

" उपदेशनु स्वरु फल "

आ रीते उत्तम उपदेश आपनारी वक्ता आचार्य स्वनु (पोतानु) कल्याण साधवापूर्वक श्रोताने उद्दाम धर्म ज पमाडे छे आचार्यश्री कहे छे के–'जनयति स एनमतुल श्रोतृषु निर्वाणफलदमलम्' आ रीते धर्मोपदेश आपनारी उपदेशक सारी रीते श्रोताओना चित्तमा असाधारण एवो धर्मप्रेम उत्पन्न करे छे, जेथी श्रोताने एवो दृढ धर्मप्रेम जाग्रत थाय छे के जे परिणामे अवश्यमेव निर्वाण–मोक्षरूप फल अर्पण करवा समर्थ बने छे निदान के–श्रोता छेवटे मोक्ष पामी स्वात्माने कृतकृत्य करवा समर्थ थाय तेवो उत्तरोत्तर शुद्धतर धर्म पामे छे टुकमा–आचार्यना उपदेशमा एवो तो अद्भूत चमत्कार तथा आकर्षण होय के श्रोताने कटाळो के अभाव कदापि उत्पन्न न थाय, किंतु मोरलीना नादथी आकर्षायेला नागनी माफक खेंचाइ खेंचाइने उपस्थित थइ अधिकाधिक श्रवण करवामा दत्तचित्त बने ने पछी परिणामे तथाप्रकारे उपदेशना बलथी उत्तम पथानुयायी थाय. आवी श्रोता अने वक्ता उभयनु परिणामे कल्याण ज थाय छे वधुमा उमास्वाती महाराज कहे छे के–" वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति " आवो उपदेश आपनार आचार्य छेवटे काइ नहीं तो पोताना अनतपापकर्मोनी निर्जरा–क्षय नि सदेहपणे करे छे.

(३) धर्मलक्षणषोडशकम् ।

" शंका अने संबंध "

गत अधिकारना आरंभमां 'बाल' आदि वर्णने सद्धर्मनी देशना आपवानुं जणाव्युं हतुं अने अंतमां " तथाप्रकारे उपदेश आपवाथी उपदेशक श्रोताने असाधारण धर्मप्रेम पेदा करे छे " एटले बन्ने स्थलमां धर्म ए शब्द आवे छे तो धर्म कोने कहेवो ? तथा धर्मनुं लक्षण शुं ? ए आशंकानो उत्तर जणाववा द्वाराए पूर्वाधिकार साथे सुसबंधतया स्थित आचार्यश्री धर्मस्वरूपदर्शक तृतीयाधिकारनो आरंभ करे छे. उपदेशबलथी आत्माने जे धर्म प्राप्त थाय अथवा धर्म उपजावाय ते धर्म कोने कहेवो ? ए संशय अशंसयपणे उत्पन्न थाय अंत बीजा अधिकार पछी उपरोक्त शंकाने दूर करवाना संबंधवाळो आ त्रीजो अधिकार दर्शावे छे एटले आ अधिकार संबंधशून्य छे ए शंकाने अहीं अवकाश मळतो नथी.

अस्य स्वलक्षणमिदं
धर्मस्य बुधैः सदैव विज्ञेय ।
सर्वागमपरिशुद्धं
यदादिमध्यांतकल्याणम् ॥ ३–१ ॥

मूलार्थ—धर्मनी परीक्षामां निपुण एवा बुधजनोए प्रथम धर्मनुं लक्षण हम्मेशा आ प्रमाणे जाणवुं के जे सर्व शास्त्रोवडे अतिशुद्ध होय अने फरी आदि, मध्य तथा अंतमां कल्याण फलने ज अर्पण करे

" बुधने सूचना "

स्पष्टीकरण—पदार्थनुं स्वरूप विचारवा पूर्वे प्रथम विद्वानो पदार्थना लक्षणनो विचार करे छे, कारण के लक्षणो करीने अव्यवस्थित पदार्थ स्वरूपमां पण अव्यवस्थित ज होय छे, एव लक्षणद्वारा पदार्थनुं सामान्यतः स्वरूप पण समजवामां आवी जवाथी पश्चात् विशेष स्वरूप समजवाने सरलता पण थाय छे. अतएव प्रथमा उद्दिष्ट पदार्थोनुं स्वरूप वर्णन करवा पूर्वे समर्थ विद्वानो पदार्थनुं लक्षण पहेलाथी ज प्रकाडतया कथन करे छे आ नियमनो बाध न थाय ते माटे ग्रंथकर्ता आ प्रकरणनी आदिमा ज ग्रंथपरीक्षक विद्वानो प्रति स्पष्ट विद्वत् प्रणालिकानुं दर्शन करावे छे के—अत्र धर्मस्वरूप–निरूपणमां बुधजनोए हम्मेशा धर्मनुं लक्षण आगलना आर्यामां जणावेले तथाप्रकारे जाणवुं, धर्मपरीक्षकोए तथा धर्मेप्सु (धर्म इच्छनारा) महानुभावोए धर्म ग्रहण करवा पूर्वे अहीं जे धर्मनुं लक्षण कह्युं छे तथाप्रकारनुं लक्षण स्वीकृत, स्वीकार्यमाण धर्ममा अविरोधपणे सुघटित छे के नहीं? एवो विचार प्राज्ञहृदयथी अवश्य करवो, जेथी मुग्धहृदयने पदार्थ स्वीकार्या पछी पश्चात्ताप के खेदनो प्रसंग न आवे; कारण के घणी वार धर्मश्रद्धालु विद्वानोनुं पण मन आतुरतामा

अथवा विचाराभाव के अन्य कोइ विचित्र कारणोथी धर्माभाव-स्थलमां धर्मनी मान्यता करवाने ललचाय–मुग्ध थाय छे.

" लक्षण'नुं लक्षण "

अत्रे लक्षण ते ज जाणवुं के जेनाथी उद्दिष्ट पदार्थथी इतर पदार्थनो निषेध थाय अने अभीष्ट पदार्थनुं बराबर पूर्णपणे ज्ञान थाय जेवुं के–' उष्णस्पर्शवत्तेजः ' ' उष्ण एवो स्पर्श जेमां होय ते अग्नि ' अत्रे अग्निनुं लक्षण " उष्ण-स्पर्शपणुं " कर्युं आथी अग्नि सिवाय जेटला पदार्थो तपासीए ते दरेकमां भिन्न भिन्न स्पर्शो कोइमां थंडो, कोइमां काठीण्यता, कोइमां कोमलता विगेरे छे खरा पण उष्ण एवो स्पर्श तो अग्निमां ज छे, अन्य पदार्थमां नथी देखातो गरम जल गरम लोढुं विगेरेमां जे जणाय छे ते पण अग्निनो ज गुण छे, कारण के ते पदार्थो तो जाते थंडा, मृदु अने कठीण छे. सूर्यनो ताप अने विजलीने पण नैयायिको अग्नितत्त्व ज माने छे, एटले आ लक्षणथी अन्य पदार्थनो निषेध थवाथी अग्निपदार्थनुं स्पष्ट स्वरूप समजाय छे. फरी आ लक्षण अतिव्याप्ति, अव्याप्ति,

१ " तदेव हि लक्षणं यदव्याप्त्यतिव्याप्त्यसंभवरूपदोष-शून्यम् " २–" अतिव्याप्तिर्नाम अलक्ष्ये लक्षणसत्त्वम् " निषिद्ध पदार्थमां लक्षणनी प्रवृत्ति ते अतिव्याप्ति, जेमके ' गो' नुं लक्षण 'महिषि' मां लागु थाय ते ३–" अव्याप्तिर्नाम लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम् " लक्ष्यना एक ज देशमां लक्षण लागु थाय ते अव्याप्ति, यथा 'गो' नुं लक्षण अमुक ज 'गो' मां लागु थाय ते.

४असभव दोषत्रयशून्य होय तो ज समिचीन कह्यु छे

"स्वलक्षण"

अत्र धर्मनु स्वलक्षण जणाववा पूर्वे ग्रथकर्त्ता कहे छे के–इच्छित धर्मनु स्वलक्षण केवळ सामान्य न जाणवु, किन्तु आ लक्षण "सर्वागमपरिशुद्ध" छ दर्शनना जे जे शास्त्रो ते ते शास्त्रोनी कसोटीद्वारा सर्वतोप्रकारे शुद्ध–निर्दोष होवु जोइए. अर्थात् धर्मनु स्वलक्षण एवु दर्शाववु–दर्शाव्यु छे के छए दर्शनोना विद्वानो पोताना शास्त्ररूपी हथोडावडे घणुये कूटे तो पण जे खडित न थाय, परतु सत्य सुवर्णनी माफक निर्दोष अने स्वीकार्यरूपे जाहेर थाय एव खाली निर्दोष अने स्वीकार्य होय आटलु ज नहीं किन्तु आचार्यश्री वधु भार दइने कहे छे के–" यदादिमध्यान्तकल्याणम् " जे धर्मनु स्वलक्षण आदिमा, मध्यमा अने अतमा कल्याणस्वरूप कल्याण फलप्रदाता होय एटले नितान्त लक्षण ज एवु छे के–ज्यारे तथाप्रकारना धर्मनो आदर करे ते समये, आदर कर्या पछी, एव धर्मना अतमा ज्या देखो त्या मोदक के साकरनी माफक सुदर फलने ज अर्पण करे छे अर्थात् तेनो कोइ पण अश एवो नथी के ज्या कल्याण ज न होय. टुकमा

४–"असभवो नाम लक्ष्यमात्रे क्वापि लक्षणासत्त्वम् " लक्ष्यमा लक्षण सर्वथा लागु न थाय ते असभव, यथा ' गो ' नु लक्षण 'गो' मा लागु ज न थाय ते

सर्व शास्त्रोने मान्य अने सर्वथा कल्याणफलप्रदाता एवा आ धर्मना स्वलक्षणनी परीक्षा विद्वानोए प्रथम तपासवी.

आटलो उद्देश कर्या पछी धर्मनु स्वलक्षण कयु छे ? ए प्रश्नना उत्तरमा आचार्यश्री हवे बीजी आर्यामा धर्मनु स्वलक्षण प्रकाशे छे

धर्मश्चित्तप्रभवो यत
क्रियाधिकरणाश्रय कार्यं ॥
मलविगमेनैतत्खलु
पुष्ट्यादिमदेष विज्ञेयः ॥ ३—२ ॥

मूलार्थः—चित्त-मनथी जे उत्पन्न थाय ते धर्म कारण के विधि, प्रतिषेधरूप क्रिया मनथी ज प्रवर्ते छे अने आ क्रिया ते तो कार्यरूप छे, तथा क्रियारूपी कार्यनु अधिकरण—स्थान शरीर ज छे एव क्रियाप्रेरक मन शरीराश्रयी छे, एटले पुष्टि अने शुद्धिए करी अलंकृत एवु जे मन तेनी जे प्रवृत्ति ते ज निश्चयेन धर्म जाणवो

" धर्मलक्षण " (यशोभद्रसूरिजी)

स्पष्टीकरणः—आ आर्यानी व्याख्या ' यशोभद्र-सूरिजी ' थी उपाध्यायजी सर्वथा भिन्न रीते करे छे. एटले उपाध्यायजी यशोभद्रसूरिजीनी टीकाने हस्त-स्पर्श सरखो पण करता नथी एटलु ज नहीं किन्तु जे

वाचतमा यशोभद्रसूरिजी दोष जाहेर करे छे ते बाबतने पोते पहेला स्वीकार छे, माटे अहीं उभय टीकाकारोनो आशय समजवा वाचको पासे उभयथा नीकळतु स्पष्टीकरण अमे पण अलग अलग थयुं छे एके टीकाकारना आशयनी लघुता करवा अमे साहस नथी करी शकता परमार्थे तो विद्वानोए ज विचारवो

ग्रथकर्त्ता धर्मनु लक्षण दर्शावे छे लक्षणानु लक्षण गत आर्याना स्पष्टीकरणमा तपासी गया तथाप्रकारे अहीं पण घटना पाठकोए करी लेवी. "चित्तप्रभवो धर्मः" "चित्त–मननी उत्पत्ति ते ज धर्म" चारित्र–वर्तनमात्र, क्रियारूप प्रवृत्तिमात्र मनपूर्वक ज थाय छे, एटले हृदयना सकल्पो ते ज अहीं धर्म जाणवो, कारण के श्लोकातर्गत 'चित्तप्रभवो' ए वाक्यनो विशेषणसमास अत्र स्वीकारवो "चित्त स चासौ प्रभवश्च चित्तप्रभवः" "चित्त–मन तेनो ज प्रभव–जन्म–आविर्भाव ते ज चित्तप्रभव" एटले आनु नाम धर्म. अत्रस्थ यत् शब्दथी चित्तनु ग्रहण करवु. परमार्थे ए के–कोइपण विधेय या निषिद्ध क्रियामां आत्मानी गति थाय छे ते मननी प्रेरणा विना तो नहीं ज, एटले मननी इच्छाद्वाराए क्रियाकाड बने छे; माटे चित्त ए क्रियोत्पादक होवाथी कारण जाणवु अने क्रिया ए निष्पद्यमान होवाथी तेने कार्य कह्यु छे हवे जे क्रियाओने जन्म आपनार मन छे ते काइ निराधारपणे स्वतत्र रही शकतु नथी, तेमज क्रियाओ पण मनना

आधार उपजती नथी, किन्तु-" अधिकरणाश्रय कार्य "
अत्र अधिकरण शब्द सामान्येन आधारवाचक छे तो पण
प्रकरणवशात् मनतु जे अधिकरण-आश्रयस्थान शरीर ते ज
लेवु. हेतु ए के-शरीरना आधारे ज मननी अवस्थिति होय छे
अने क्रियाओ सर्व शरीरद्वाराए ज बने छे. तत्त्व एटलो के-
मनथी इच्छाओ थाय, पश्चात् शरीरद्वारा आत्मा चेष्टाओ-नवा
नवा व्यापारो करे छे अत जे चित्त इच्छाओ करे छे ते ज
चित्ततु नाम अहीं धर्म जाणवो एटले के-शरीरद्वारा जे जे
कार्यो थाय छे ते धर्म न समजवो, किन्तु ते तो चित्तरूप
धर्मना व्यापारकार्यो जाणवा आ परथी जेओ शरीरनी
यथेष्ट अमुक जातनी क्रियाप्रवृत्तिने धर्मपणे निर्देश करे छे
तेओ भ्रान्त छे-धर्मलक्षणथी अनभिज्ञ छे एटलो निर्णय
समजवो. टुकमा टीकाकारना मतथी दान, पूजा, सामायिक
आदि ए बधुये धर्मनो व्यापार छे धर्म तो आतरनु जे तथा-
प्रकारनु मन ते जाणवो छता आ क्रियाओने धर्मतया माझपुरुषो
व्यवहार करे छे ते तो धर्मनो क्रियामा कारणनो उपचार करीने ज,
एटले कारण कार्यने जरुर पेदा करे जे कारण कार्यने पेदा
न करे ते कारण ज न कहेवाय आथी जेओ क्रियाप्रवृत्ति विना
अथवा क्रिया अप छे एम कही क्रिया नकामी जणावी स्वा-
त्माने मननी पवित्रता मात्रथी धर्मी माने छे तेओ पण नितान्त
भ्रान्त छे एम समजवु, कारण अहीं तो टीकाकार, क्रियो-
त्पादक एवु जे मन तेने ज धर्म जणावे छे. प्रथम कह्या प्रमाणे
अहीं विशेषणसमास स्वीकारवाथी 'चित्त' ए विशेषपदार्थ

अने 'धर्म' ए विशेषण पदार्थपणे स्थिर थाय छे एटले अहीं जे जे विशेषणो आप्या छे ते सर्वने 'चित्त'नी साथे घटाववा अर्थात् आ विशेषणो चित्तने सम्यक्तया लागु थइ शके छे यदि आ प्रमाणे समास न स्वीकारता "चित्तात्प्रभवतीति चित्तप्रभवः" "चित्तथी-मनथी जे पेदा थाय ते चित्तप्रभव" धर्म जाणवो. ए रीते कर्मधारय समास स्वीकारीए तो 'धर्म' विशेष्य अने चित्त विशेषण थाय आम थवाथी श्लोकोक्त सर्व विशेषणो 'धर्म' ने ज लागु करवा जोइए फरी यत् शब्दथी पण 'धर्म' पदनु ग्रहण करवु घटे आ स्थितिमा श्लोकनो भाव दुर्गम्य थइ जाय छे एटले एके विशेषण 'धर्म' पदनी साथे सुघटेसतु नथी-पद्युमा क्लिष्टता प्राप्त थाय छे आ दोषो उपजता होवाथी प्रारभोक्त समास स्वोकारी व्याख्या समजाववी अनुकूल थइ शके छे

"लक्षणमा वधारो"

उपर कथित लक्षणवाळो धर्म स्वीकारवाथी चोरी, जूठ, व्यभिचार, हिंसा आदि क्रियाने पण धर्मतया व्यवहार करवो जोइए, कारण के ते ते व्यवहारो पण मनथी ज पेदा थाय छे, मन विना एक पण विशिष्ट शुभाशुभ कार्य थतु नथी अत ए आपत्तिने दूर करवा ग्रथस्था उपरोक्त लक्षणमा वधारो करवानु जणाव छे "मलविगमेनैतत्खलु पुष्टयादिमदेव विज्ञेयः" अत्र 'खलु' शब्द निश्चयार्थवाचक जाणवो.

एटले ' निश्चयेन राग, द्वेष, मोह आदि रहित मळो अने पुष्टि तथा शुद्धिमय एवु जे चित्त ते ज धर्म विद्वानोए जाणवो ' जे चित्तथी राग, द्वेष, मोहना भावो-विकारो वगरनी इच्छाओ जन्मे अने ते पण आगल जेनु स्वरूप कहेवाशे तेवा प्रकारनी पुष्टि तथा शुद्धिमय होय ते ज ' चित्त ' ने अहीं धर्म मान्यो छे. अतएव धर्मनुं अव्याहत लक्षण आ प्रमाणे छेवटे सिद्ध थयु " मलविगमेन पुष्ट्यादिवत् चित्त-प्रभवो धर्मः " " मळ रहित अने पुण्यादिमय एवा चित्तनो जे आविर्भाव ते धर्म " आथी चोरी विगेरे विकारवालु मन मलरहित न होवाथी तेने धर्म न ज कहेवाय निदान के-पवित्र चित्तनी वासनाओ, अध्यवसायो अने तज्जन्य पवित्र क्रिया-ओने ज वास्तव धर्म कही शकाय.

" धर्मलक्षण " (उपाध्यायजी)

" धर्मश्चित्तप्रभव " ' चित्तथी उत्पन्न थाय ते धर्म ' चित्त-मनथी जे जे कार्यो प्रवर्ते तेनु नाम अत्र धर्म जाणवो एटले के-" चित्तात्प्रभवतीति चित्तप्रभव " ए प्रमाणे कर्मधारय समास स्वीकारवाथी उपरोक्त अर्थ कथित्वनो प्राप्त थाय छे परमार्थ ए के-खाली आग्रह वगरनी संमूर्छिम जेवी क्रिया ते अहीं धर्मतया अभीष्ट नथी मनथी, मनथी शून्य क्रिया ते तो अहीं एक व्यवहार तुल्य स्वाकारी छे आ परथी अहीं आटलु जाणवु के मनना संकल्पपूर्वक आत्माना ते प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप व्यापार तेनु नाम धर्म.

केवल सकल्पमात्रने उपाध्यायजी धर्मतया स्वीकारता नथी आ व्याख्यामा 'यत्' शब्दनो 'धर्म' साथे सबध करी उपाध्यायजी कहे छे के 'यतः धर्मात्' जे माटे धर्मथी, विहित क्रियानु आचरण अने निषिद्ध क्रियानो त्याग तद्रूप क्रियानी प्राप्ति थाय छे. फरी मूलस्थ अधिकरण शब्द अधिकारवाचक छे एटले क्रियारूप जे अधिकार तेना निमित्तथी–आश्रयथी भवि आत्माने ससारनी उदासीनता, विषयथी विमुखभावरूप कार्यो निष्पन्न थाय छे मनथी धर्म, धर्मथी क्रिया, तथा क्रियाना आधारथी भवनिर्वेदरूपकार्योनो जन्म थाय छे; माटे अत्र 'चित्तप्रभवो धर्मः' ए रीते धर्मनु लक्षण जाणवु.

"विशेष कथन"

आ व्याख्यामा "यत्, अधिकरण, क्रिया, कार्य" आ शब्दोना सबध माटे, तेना अर्थ माटे अन्यान्य कल्पनाओ के अधिक विचारो करवानी मुश्केलीओ नडती नथी. अहीं मार्गानुसारीनी जे प्रवृत्ति ते धर्म जाणवो आ लक्षणवाळो धर्म मार्गानुसारीमा समजे, परतु अभव्य के दुर्भव्यमा आ धर्म न होय कारण के त्या तो मनना धर्मीय सकल्पपूर्वक विहिताचरण अने निषिद्ध त्यागरूप क्रियानो सभव ज न होय

"लक्षणशुद्धि"

आ 'धर्म' पण रागादि मलविकारो रहित अने शुचि शुद्धिवाळो ■ जाणवो. एटले रागादि विकारवान्

चित्तना अभिप्रायपूर्वक जे क्रियाव्यवहार ते अहीं धर्मपणे स्वीकार्य नथी. निदान के–अत्र ' धर्म ' पद विशेष्य होवाथी ' मलविगमेन पुष्टयादिमत् ' ए शब्दो धर्म-पदना विशेषणपणे जाणवा अत' आ व्याख्यापक्षमा " चित्तप्रभवः मलविगमेन पुष्टयादिमान् धर्म. " ए प्रकारे धर्मनु अध्याहृत लक्षण जाणवु

" तात्पर्य "

साराश के–उभय पक्षमा ' धर्म ' ना लक्षणमा अने तेना परमार्थमा भेद नथी मान्यो, मात्र श्लोकोक्त पदोनो भाव क्यो निकाळवो ? समास क्यो लेवो ? अने विशेष्य विशेषणपणे क्या पदो स्वीकारवा ? अमुक शब्दनो कोना साथे सबध जोडवो ? आटलो ज भेद पाड्यो छे. मूल वस्तुने बाधा न थाय तेवी रीते अन्यान्य युक्तिथी व्याख्याओ करवी तेमा शास्त्रीय विरोध आचार्योए मान्यो नथी. प्रथम व्याख्यामा मनने धर्म मान्यो छे अने मनोविचारजन्य क्रियाने उपचारथी धर्म कह्यो छे, ज्यारे उपाध्यायजी मनोविचारजन्य अध्यवसायपूर्विका क्रियाने विना उपचारे सीधी रीते धर्म कहे छे, आटलो भेद उभय पक्षमा छे खरो बन्ने पक्षमा जे लक्षण धर्मनु दर्शाव्यु छे ते एवु छे के सर्वदर्शनमान्य थाय, कोई पण दर्शनवाला गमे तेटली युक्तियोथी अत्रोक्त धर्मलक्षणनु खडन करवा समर्थ नथी, एव आ लक्षण सर्वतो कल्याणप्रदाता पण

अवश्यमेव छे अत धर्म परीक्षक बुधजनोए धर्म स्वीकारवा पहेला आ लक्षण ध्यानमा राखी तथाप्रकारनो धर्म स्वीकारवा प्रयत्न करवो एटले ज्यारे आ लक्षण अव्याहत रीते समन्वित थाय त्यार ज ते सत्य अकृत्रिम धर्म छे एवु समजवु. परमार्थ ए के–आवो 'धर्म' सर्वज्ञप्रवचन सिवाय अन्यत्र पामवो अशक्य ज छे

"धर्म' ना लक्षणमा "मलविगमेन पुष्ट्यादिमद्" ए जणाव्यु तो अहीं मलो क्या ? अने चित्त अथवा धर्मनी पुष्टि–शुद्धि ते केवी रीते ? आ भाव दर्शाववा श्रोतामति आचार्यश्री कथन करे छे"

रागादयो मला
खल्वागमसद्योगतो विगम एषां ।
तदय क्रियात एव हि
पुष्टि शुद्धिश्च चित्तस्य ॥ ३–३ ॥

मूलार्थ—राग, द्वेष, मोह आदि मनना मेलो छे, आ मलोनो निश्चयेन आगम–सर्वज्ञवचनना सद्व्यापारथी नाश थाय छे; माटे सत्क्रियाथी ज आ मननी पुष्टि–पुण्यवृद्धि तथा चित्तनी शुद्धि–निर्मळता सुदर रीते बने छे

" मनना मेलो "

स्पष्टीकरण—"रागादयो मलाः" शुद्ध पदार्थने जे

अशुद्ध–अपवित्र करे ते मल पवित्र वस्त्रने मटी, काजल आदि मलिन करे छे, मणि अने काचनने माटी अशुद्ध कर छे माटे ते तेना मलो कहेवाय छे. एव शुद्धभावस्थ आत्मा तथा मनने रागादिको मलीन–अपवित्र बनावे छे, अतः ते तेना मलो कह्या. " रजन राग, द्वेषण–कोपन द्वेषः कोपः, मोहन मोह. " जेनाथी आत्मा–चित्त रगाय–खुशी थाय–प्रेमी बने ते, जेनाथी आत्मा–चित्त द्वेषी–क्रोधी बने–तपी जाय–अग्निस्वरूप धारण करे ते अने जेनाथी आत्मा–चित्त व्या कुळना पामे–लिपटाय जाय–मुग्ध बनो आसक्तिपूर्वक मूर्च्छा धारण करे ते अनुक्रमे राग, द्वेष तथा मोह आदि मलो विकार-कारको जाणवा

" मलनो प्रभाव "

जेम माटी आदि मलना सयोगथी मणि, काचनतु असल स्वरूप व्हार आवतु नथी अने तेम थवाथी मणि अने काचन माटी जेटला ज आदरणीय अने निर्मूल्य बराबर गणाय छे तथाप्रकारे अहीं आत्मा या चित्त ज्या सुधी आ मलोनी सगतीमा रही रागी, द्वेषी, मोहीपणु धारण करे त्यासुधी आत्मा पोताना अमल स्वरूपथी दूरतर ज रहे छे अने आत्मा आदरमानने कदापि पामतो नथी. ए तो ज्यारे माटी आदिना सगथी निर्मुक्त थाय त्यारे ज मणि अने काचन मूल्य पदार्थनी ... आवे छे तथाप्रकार ... प्रकटशो ... रागपात्र, अनिष्ट

मात्र अने विषयो, लक्ष्मी, स्वजनो, शरीर आदिनो मोहमात्र दूर करे–अल्प करे तो ज आत्मा आदर पामे–अमूल्य पदार्थनी पक्तिमा आवे परमार्थ ए के–आत्मा असलथी सर्व पदार्थनो साक्षात् प्रकटकर्ता, सर्वनो द्रष्टा, अनत अनिरूपम सुखनो भोक्ता, अनत उपमातीत बल धारणकर्ता, केवल सत्–चित्–आनद ए त्रिपुटीनो मालिक, दु ख, क्लेश, विषयविकार रहित एक अलौकिक ज्योतिरूप पदार्थ छे रागी, क्रोधी, मोही आदि भावो आत्माना नथी परतु अनादिथी आ सर्व विकारो–मलो आत्मापर घेरो नाखीने पड्या छे, जेथी–" जेम सिहनु बच्चु माता मरी जवा पछी शियालना समूहमा उछरी मोटु थवा पछी पण शियालना समागमथी पोते सिह–शृगालशत्रु छता स्वात्माने शियालपणे ज मानवा लाग्यु " तेम आ आत्मा पण ते ते मलोना ससर्ग–एकाकार सबधथी पोताने तथाप्रकारे रागी, द्वेषी, मोही, विषयीपणे माने छे अतएव–आ विकारो आत्माने मलीन–अपवित्र भ्रान्तकर्ता होवाथी शास्त्रकर्त्ता महर्षियो तेओने मलतया व्यवहरे छे. आ मलोनु विस्तृत स्वरूप शास्त्रोमा अनेक स्थले वर्णव्यु छे अहीं तो मात्र श्लोकनो मात्र देखाडवा पूरतो ज अमारो प्रयास छे. एटले कषायोना विस्तृत विचारमा उतरवु ते ग्रथनु कलेवर वधारवा जेवु होवाथी अमे नथी उतर्या अथवा ज्या जेटला विवरणनी जरुर छे त्या तेटलो विचार अवसरे आपवा अमे प्रयत्न साचवीशु–ु छे

" मलो धोवानो मार्ग "

मणि तथा काचनने लागेल माटीरूप मल शास्त्र–अग्नि आदिनी क्रियाद्वाराए दूर थाय छे, एव आत्मा–चितने लागेल पूर्वोक्त मलोनो दूर करवानो उपाय ग्रथकर्त्ता जणावे छे " आगमसयोगतो विगम एषा " ' जिनप्रणीत जे आगम तेना सद्बोध–सम्यग्ज्ञानथी आ मलोनो विगम–नाश थाय छे.' " शियाळिभूत सिंहने ज्यारे अन्य सिंहनो समागम थयो अने तेणे कह्यु के–भाइ ! तु पण मारा जेवो ज छे आ टोळामा तुं क्याथी भळ्यो ? आ लोको तो आपणो खोराक छे तने विश्वास न आवतो होय तो तु विचारी जो के तारु शरीर, वर्ण, आकृति, शब्द अने क्रियाओ आ लोकोथी केटला जुदा छे? आ वचन श्रवण कर्या पछी ज्यारे तेणे विचार्युं अने बराबर समजायु त्यारे सिंहनाद कर्यो एटले पोताना स्वरूपने तेणे ओळखी लीधु " ए ज रीते अहीं पण आत्मानु अनादि शुद्धरूप अने रागादि भावोनो विकार आ बन्नेनी भिन्नता, कर्मोनी लीला अने स्वरूप, पुद्गल अने पोतानो भेद, ज्ञानादि गुणोनो चमत्कार, सद्गति तथा दुर्गतिना कारणो, उपादेय क्रियाओनुं आचरण, हेय भावोनो त्याग–आ सर्व पदार्थने प्रकाशतया जणावनार एवु जिनभगवतना आगमनु ज्ञान आत्माने प्राप्त थवाथी पोतानु कर्तव्य तेने समजाय छे. एटले आत्मा विहिताचरण अने निषिद्धना त्यागरूप क्रियामा प्रवर्तन करे छे, जेथी उपरोक्त मलोनो अवश्यमेव नाश ज थाय छे निदान के–

आत्मा पोताना असल स्वरूपने समजी मलस्वरूपथी अलग थवा प्रयत्न करे छे अतएव-'तदय क्रियात एव हि' आ क्रियाद्वाराए ज मलो नाश थवाथी 'पुष्टि' शुद्धिश्च चित्तस्य' चित्तनी पुष्टि तथा शुद्धि थने छे अत्र पुष्टि अने शुद्धिनु स्वरूप उत्तर श्लोकमा दर्शावशे ते अहीं जाणवु अर्थात् पूर्व श्लोकमा 'पुष्ट्यादिमत्' ए प्रकारे चित्तनु विशेषण कह्यु हतु तेमा पुष्टि-शुद्धि चित्तनी क्या प्रकारे थाय ? ए शंकानो प्रत्युत्तर आ श्लोकना स्पष्टीकरणथी समजाइ जाय छे

"मलोनो विगम थवाथी चित्तनी पुष्टि तथा शुद्धि प्रगटे छे ए भाव गत आर्यामा दर्शाव्यो अहीं पुष्टि तथा शुद्धिनुं स्वरूप शु ? आ शंसयने दूर करवा माटे अत्र आचार्यथी पुष्टि अने शुद्धिनु लक्षण दर्शावे छे."—

पुष्टिः पुण्योपचय

शुद्धि पापक्षयेण निर्मलता ॥

अनुबंधिनि द्वयेऽस्मिन्

क्रमेण मुक्तिः परा ज्ञेया ॥ ३-४ ॥

मूलार्थ—पुण्य-शुभकर्मनो उपचय-वृद्धि ते अत्रे पुष्टि, तथा पाप-अशुभकर्मनो क्षय-नाश थवाथी चित्तनी जे निर्मलता-स्वच्छता ते अहीं शुद्धि जाणवी आ उभयना अनु-

बध-परपराथी अनुक्रमे आत्मानी उत्कृष्ट शुद्धि थाय छे ए तत्त्व जाणवु.

"पुष्टि-शुद्धि लक्षण"

स्पष्टीकरण—"उपचीयमानपुण्यता पुष्टिः" अनुक्रमे पुण्य-सुखरूप फलप्रदाता कर्मनी वृद्धि तेनु नाम अने पुष्टि अभिप्रेत छे, अने पूर्वबद्ध ज्ञानावरणीयादि सम्यग्ज्ञानादि गुणघातक कर्मनो अनुक्रमे क्षय थवाथी आत्मानी स्वच्छता ते अहीं शुद्धि मानी छे तत्त्व ए के-पूर्व श्लोकमा दर्शाव्या प्रमाणे आत्मा सिद्धान्तज्ञानना सयोगथी पवित्र एवी दान, तप, शील, पूजा, इंद्रियदमन, कषायविजय, सामायक आदि क्रियाओनु आचरण तथा हिंसा, जूठ, चोरी, मैथुन आदि पापक्रियानो त्याग करे एटले आ क्रियाद्वाराए आत्मा अने तदाधारभूत चित्त बन्ने पवित्रतर थवाथी शुभ-पुण्यकर्मनो ज बध करे छे, भविष्यमा जेथी सुख मळे तेवा ज कर्मो बाधे छे अने सम्यग्ज्ञानादि गुणोनो नाश करनार एवा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अतराय, मोहनीय ए चार घातीकर्मनो अनुक्रमे नाश करे छे. आथी आत्मा तथा तत्सबधी चित्त उभय स्वच्छ-निर्मल थाय छे अने दर्शित चारे कर्म आत्माना मुख्य एवा ज्ञान, दर्शन, एकान्त शुद्ध स्वरूप तथा वीर्य गुणोनो नाशकर्ता होवाथी ते घातीकर्म कह्या छे. अत्र क्रियाद्वारा पापकर्मनो नाश सर्वथा अथवा देशथी थाय ते उभयथा निर्मळता समजवी आ-स्थळमा, मूळकर्ताए जे 'चित्त'नी निर्मळता-

जणावी 'चित्त' शब्दनु ग्रहण कर्यु छे आथी अत्रे चित्त शब्दथी भावमनरूप आत्मा ज जाणवो. 'चित्त' द्रव्य अने भाव एम बे प्रकारनु कह्यु छे आत्मा औदारिक आदि स्थूल देहना प्रयत्नथी विविध विकल्पो-विचारो करवा माटे मनोवर्गणाना द्रव्योने ग्रहण कर छे जे द्रव्योवडे आत्मा अनेकधा विचारो करे छे आ द्रव्यनु नाम जैनशास्त्रकारो द्रव्यमन कहे अने विचाररूप अथवा विचारकर्त्ता आत्मा ते अहीं भावमन मान्यु छे, तेमा द्रव्यमन पुद्गलस्वरूपी होवाथी तेनी पुष्टि-शुद्धि दर्शाववाना कइ तत्त्व नथी मात्र विचाररूप जे भावमन तेनी ज पुष्टि अने शुद्धि कर्मनाशद्वारा थवाथी अहीं आ विचाररूप भावमननु ज ग्रहण कर्यु छे, परतु द्रव्यमन लीधु नथी. हवे आ पुष्टि तथा शुद्धिनु फल उत्तरार्धथी आचार्यश्री जणावे छे

" पुष्टि शुद्धिनु फल "

उपरोक्त पुष्टि तथा शुद्धिनो अनुबंध-परपरा चालवाथी अर्थात् प्रथम दर्शावेल क्रियाओमा निरतर प्रवृत्ति करवाथी, कदापि क्रियामा त्रुटीयो न आववाथी, क्रियाथी भ्रष्ट मनने पण अनुसधान करी पुन क्रियामा दाखल करी अस्खलित क्रियाओ करवाथी आत्मा शुभकर्मनो बध अने अशुभ-पापकर्मनो क्षय अधिकाधिक कर्ये जाय छे. आथी परिणामे आ जन्ममा के परजन्ममा अधिक शक्ति विस्तारी ते ज क्रियाना अभ्यासबलथी शुभाशुभ उभय कर्मनो सर्वथा नाश करी

मुक्तिस्थान आत्मा पामे छे. निदान के–आ जन्ममां यदि आ आत्मानी मुक्ति न थाय तो पण अभ्यास करेल ते ते क्रियाओथी उत्तर (पर) जन्ममां उच्च स्थान पामी त्यां तेने ते ज क्रियाना संस्कारो उदयमां आवे छे, अने फरी आ संस्कारनुं एटलुं उत्कृष्ट बळ आत्मा पामे छे के जेथी पोते सर्व कर्मनो क्षय करवाने समर्थ बने छे एटले आत्मा तात्त्विकी मुक्ति जरुर पामे छे. आ ज परमार्थ दशवैकालिकना चतुर्थ अध्ययनमां शय्यंभवसूरिजी मानकमुनिजीना कल्याण माटे बहु सुंदर रीते जणावे छे, जेनो टुंक भावार्थ पाठकोने उपयोगी धारी अमे अहीं आप्यो छे.

" क्रियानो अनुबंध "

" जो आत्मा जीवादिकनुं स्वरूप बराबर समजे तो पछी
" विषयभोगादिकथी अवश्य विरक्त थाय, एटले गमे तेवा
" सुंदर पण भोगोनो बाह्य–आभ्यंतर उभय रीते त्याग करे,
" अने आ त्याग–परिणाम प्राप्त थवाथी आत्मा अवश्यमेव गृह-
" संसारथी विमुख थई अनगार–साधुपणुं स्वीकारे साधुपणुं
" स्वीकार्या पछी स्वात्माना पूर्ण कल्याण माटे उत्कृष्ट संवर-
" मार्ग (जेथी नवां कर्म न आवे)मां आरूढ थई असाधारण
" धर्ममां स्थिर थाय छे आथी मिथ्यात्वभावथी पूर्वोपार्जित
" कर्मरूपी रजनो नाश करे छे. कर्मरजनो नाश करवाथी
" आत्मा सर्व पदार्थने प्रकाश करनारुं एवुं केवळज्ञान पामे छे,
" लोकालोकनुं स्वरूप जाणनार केवळज्ञानी जिनभगवंत बने
" छे. केवळज्ञानी थया बाद अवशेष कर्मनो सर्वथा नाश करवा

" माटे मन, वचन, कायाना योगोनो निरोध करी शैलेशि
" भाव पामे छे एटले समग्र कर्मथी छूटी सिद्धिस्थानमा चौद
" राजलोकना मस्तक भाग पर बीराजी शाश्वत [illegible] सिद्धस्व
" रूप प्राप्त करे छे." ए रीते उत्तरोत्तर पवित्र क्रियामा आगळ
" वधवाथी आत्मा आत्मानु पूर्ण कल्याण करे छे ए ज वात
" सक्षेपमा अमे आगल जणावी गया छीए जेओ चारित्र-
" पतित थया होय तेना माटे पण कह्यु छे के—पच्छावि ते
" पयाया, खिप्प गच्छति अमरभवणाइ । जेसिं
" पिओ तवो, सजमो अ खती अ बभचेर च " ॥ १ ॥
" जे आत्माओ प्रथम चारित्रभ्रष्ट थया होय परतु पाछळथी
" स मार्गमा आरूढ थइ आराधना पामे छे तेओ मत्यु पामी देव-
" विमानोमा उपजे छे के जेओने तप, सयम, क्षमा, ब्रह्मचर्य
" आदि गुणो पर प्रेम होय छे " परमार्थ ए के—उपरोक्त
क्रियाथी छेवटे देवलोकमा पण आत्मा जाय छे.

जेओ आ उपरोक्त पुष्टि—शुद्धिनो अनुबध पामे तेओ मुक्ति पामे छे ए मात्र गत श्लोकना अतमा कह्यु, तो आ 'अनुबध' कोण न पामी शके ? तेनो खुलासो ग्रथकर्त्ता अत्रे जणावे छे.

न प्रणिधानाद्याशय—
सविद्व्यतिरेकतोऽनुबधि तत् ॥
भिन्नग्रथेर्निर्मल—
बोधवत. स्यादिय च परा ॥ ३—५ ॥

मूलार्थः—प्रणिधान आदि पाच धर्मना अध्यवसाय हवे आगल दर्शावे छे. आ अध्यवसायनो जेने बोध न होय तेओने आ पुष्टि-शुद्धिनो अनुबंध पण न होय, तेमज जेओए ग्रंथीभेद कर्यो छे अने उत्तम एवो शास्त्रनो बोध प्राप्त कर्यो छे तेओने तो आ पुष्टि-शुद्धिनो अनुबंध उत्कृष्टतया होय ज

" अनुबंध साधनो "

स्पष्टीकरण :—' पुष्टि तथा शुद्धि ' ना अनुबंधना तिनु मुख्य साधन ' प्रणिधान ' विगेरे पाच आशयनु ज्ञान अने अनुभव अहीं ग्रंथकर्ता दर्शावे छे. आ ' प्रणिधान ' आदि पाच अध्यवसायनु स्वरूप अने तेना नामो शास्त्रकर्ता आगलना श्लोकोथी जणावशे यद्यपि अंतःकरणथी उद्भवता विचारो अनेक प्रकारना कह्या छे तो पण धर्मक्रियाना पोषक अने वर्धक एवा सर्व अध्यवसायो पाच अध्यवसायनी अंतर्गत होवाथी विशिष्टपणे पाच ज अध्यवसायो जाणवा अहीं आचार्यश्री जणावे छे के—आ प्रणिधान आदि अध्यवसायनु प्रथम बराबर ज्ञान थाय अने त्यारपछी तेनो जेने योग्य रीते अनुभव थयो होय तेने ज आ दर्शित ' अनुबंध ' नो लाभ थाय एटले के-जेने आ अनुभव नथी मल्यो तेने ते ' अनुबंध ' नो लाभ न ज थाय अतः टीकाकार पण मूलस्थ ' संवित् ' पदनी व्याख्यामा " संवित् संवित्तिः संवेदनमनुभवः " संवित्

एटले ज्ञान, संवेदन–अनुभव–आ उभयनो ज्या 'व्यतिरेक' अभाव होय त्या पुष्टि–शुद्धिना अनुबंधनो पण अभाव जाणवो एवो भाव देखाड्यो छे परमार्थ ए के–प्रथम हृदयनी थोड़ी स्वच्छता थाय त्यारपछी ज पवित्र एवा आ अध्यवसायोनो आविर्भाव थाय, माटे आ आशयो प्राप्त करवा पहेला हृदयना दुष्ट मिथ्यात्व आदि मलो साफ करवा प्रयत्न करवो उचित गणाय दुष्ट मिथ्यात्व आदि मलनो नाश तीव्र भयानक एवा रागद्वेष आदि भावो ज्या सुधी घर करीने बेठा होय त्या सुधी तो न ज थाय, माटे शास्त्रकर्ता आ 'अनुबंध' कोण पामी शके ? एनो खुलासो उत्तरार्धथी जणावे छे

" ग्रंथीभेद "

" भिन्नग्रंथेर्निर्मलबोधवतः " ग्रंथीनो भेद जेणे कर्यो होय अने निर्मल बोधवान् जे होय तेने " स्यादियं च परा " आ उत्कर्षवती 'अनुबंधश्रेणी' नी प्राप्ति थाय अत्र ग्रंथीभेदनु स्वरूप आ रीते जाणवु समकित–शुद्ध मान्यता प्रति जेओ वळ्या होय अथवा वळवा तैयार होय–थशे तेओ ज आ ग्रंथीभेद करे, सिवाय कोइ पण न करे आत्मा अनादिथी मिथ्यावासनाथी आकंठ घेरायेल होवाथी सत्य पदार्थनु ज्ञान अने मान्यता करी शकतो नथी, अतएव जे आत्मा प्रथम तो आ ससारमा रूलतो रूलतो अने अनंत कष्टो भोगवतो थको जेम पर्वतथी उतरती नदीना जलप्रवाहमा तणाता अथडाता–स्वयमेव चोखुणा, त्रिखुणा, गोळ थइ जाय छे

तथाप्रकारे यथाप्रवृत्तिकरण आत्मा पोताना स्वाभाविक अपूर्व वीर्यबलथी आयुष्य सिवायना सात कर्मोनी बृहत् स्थितिनो नाश करी मात्र पल्योपमना असख्यात भागन्यून एक कोटाकोटी सागरोपम जेटली स्थितिवाला कर्मोने करी मूके अहींथी आगळ वधवा जेटलु बल जेओमा नथी होतु, तेओ तो अहींथी पाछा पडी जाय छे अने घणाओ अहीं ज उभा रहे छे, कारण के आ स्थलमा दुर्भेद्य वज्रनी गाठ जेवी कठोर रागद्वेष परिणतियो उपस्थित थाय छे जेथी आत्मा पाछो पडी जाय छे आने ज महर्षियो ग्रथी कहे छे. अभवि आत्माओ अहीं सुधी अनतीवार आवी आवीने पाछा वळी गया छे, एव अहीं भवि अभवि असख्यकाल यावत् स्थिर पण थाय छे यावत् अभवि तो चारित्र धारण करी अपूर्ण एवा दशपूर्व पर्यंतनो अभ्यास पण करे छे, छता तेओना ज्ञानने मिथ्याज्ञान कह्यु दशपूर्व अने चौदपूर्वनो अभ्यास तो समकितीने ज होय. " चउदस दस य अभिन्ने नियमा सम्म तु सेसए भयणा तु " हवे कोइ कोइ भवि आत्माओ तो अपूर्व-करण-अद्भुत पराक्रमवडे उपरोक्त रागद्वेषनी ग्रथीने भेदी नाखी मिथ्यात्वस्थितिना उदयकाल सर्वथा अतर्मुहूर्त काल जेटला भोग्यकर्मने छोडी, त्यारपछीना भविष्यमा उदय आवनार एवा अतर्मुहूर्तकाळ जेटला मिथ्यात्व-कर्मना प्रदेशोने नाश करी शके एवु ' अन्तरकरण ' आत्मा नामे कोइ सर्वोत्तम बलवडे रचे छे अहीं

एटले ज्ञान, सवेदन–अनुभव–आ उभयनो ज्या 'व्यतिरेक' अभाव होय त्या पुष्टि–शुद्धिना अनुबधनो पण अभाव जाणवो एवो भाव देखाड्यो छे परमार्थ ए के–प्रथम हृदयनी काइक स्वच्छता थाय त्यारपछी ज पवित्र एवा आ अध्यवसायोनो आविर्भाव थाय, माटे आ आशयो प्राप्त करवा पहेला हृदयना दुष्ट मिथ्यात्व आदि मलो साफ करवा प्रयत्न करवो उचित गणाय दुष्ट मिथ्यात्व आदि मलनो नाश तीव्र भयानक एवा रागद्वेष आदि भावो ज्या सुधी घर करीने बेठा होय त्या सुधी तो न ज थाय, माटे शास्त्रकर्ता आ 'अनुबध' कोण पामी शके ? एनो खुलासो उत्तरार्धथी जणावे छे

" ग्रथीभेद "

" भिन्नग्रंथेर्निर्म्मलबोधवतः " ग्रथीनो भेद जेणे कर्यो होय अने निर्मल बोधवान् जे होय तेने " स्यादिय च परा " आ उत्कर्षवती 'अनुबधश्रेणी' नी प्राप्ति थाय अत्रे ग्रथीभेदनु स्वरूप आ रीते जाणवु समकित–शुद्ध मान्यता प्रति जेओ वळ्या होय अथवा वळवा तैयार होय–थशे तेओ ज आ ग्रथीभेद करे, सिवाय कोइ पण न करे आत्मा अनादिथी मिथ्यावासनाथी आकठ घेरायेल होवाथी सत्य पदार्थनु ज्ञान अने मान्यता करी शक्तो नथी, अतएव जे आत्मा प्रथम तो आ ससारमा रुलतो रुल्तो अने अनंत कष्टो भोगवतो थको जेम पर्वतथी उतरती नदीना जलप्रवाहमा तणाता अथडाता अथडाता पथ्थरो स्वयमेव चोखूणा, त्रिखूणा, गोळ थइ जाय छे

तथाप्रकारे यथाप्रवृत्तिकरण आत्मा पोताना स्वाभाविक अपूर्व वीर्यवलथी आयुष्य सिवायना सात कर्मोनी बृहत् स्थितिनो नाश करी मात्र पल्योपमना असख्यात भागन्यून एक कोटाकोटी सागरोपम जेटली स्थितिवाला कर्मोने करी मूके अहींथी आगळ वधवा जेटलु वल जेओमा नथी होतु, तेओ तो अहींथी पाछा पडी जाय छे अने घणाओ अहीं ज उभा रहे छे, कारण के आ स्थलमा दुर्भेद्य वज्रनी गाठ जेवी कठोर रागद्वेष परिणतियो उपस्थित थाय छे जेथी आत्मा पाछो पडी जाय छे आने ज महर्षियो ग्रंथी कहे छे. अभवि आत्माओ अहीं सुधी अनंतीवार आवी आवीने पाछा वळी गया छे, एव अहीं भवि अभवि असख्यकाल यावत् स्थिर पण थाय छे यावत् अभवि तो चारित्र धारण करी अपूर्ण एवा दशपूर्व पर्यंतनो अभ्यास पण करे छे, छता तेओना ज्ञानने मिथ्याज्ञान कह्यु दशपूर्व अने चौदपूर्वनो अभ्यास तो समकितीने ज होय. "चउदस दस य अभिन्ने नियमा सम्म तु सेसए भयणा तु" हवे कोइ कोइ भवि आत्माओ तो अपूर्वकरण-अद्भुत पराक्रमवडे उपरोक्त रागद्वेषनी ग्रंथीने भेदी/नाखी मिथ्यात्वस्थितिना उदयकाल सबंधी, अंतर्मुहूर्त्त काल जेटला भोग्यकर्मने छोडी, त्यारपछीना भविष्यमा उदय-आवनार एवा अंतर्मुहूर्त्तकाळ जेटला ज मिथ्यात्वकर्मना प्रदेशोने नाश करी शके एवु 'अन्तरकरण' आत्मा अनिवृत्ति नामे कोइ सर्वोत्तम वलवडे रचे छे अहीं

'अन्तरकरण' एटले अंतर्मुहूर्त यावत् मिथ्यात्वकर्मने सर्वथा दबावी राखवा ते. आ अन्तरकरणना पहेलाना टाइममां मिथ्यात्वनो उदय होवाथी आत्मा मिथ्यात्वी जाणवो अने अन्तरकरणना प्रथम समयथी ज मिथ्यात्वनो उदय न होवाथी आ समये आत्मा 'उपशम' नामे कषाय अने मिथ्यात्वकर्मना उदयाभावरूप समकितने पामे छे, एटले आत्मा साची मान्यता–वीतराग धर्मनो बराबर आदर करे छे.

" बे-पक्षो "

आ स्थानमां बे पक्षो छे–एक तो आगमपक्ष अने बीजो कर्मग्रंथनो पक्ष. कर्मग्रंथकार जणावे छे के–यदि अनादि मिथ्यात्वी आत्मा समकित नवेसरथी पामतो होय तो ते अन्तरकरणे करी दबावेला कर्मोनो शुद्ध, अर्धशुद्ध, अशुद्ध एम त्रण पुंज करी उपशम समकित पाम्या विना ज 'क्षायोपशमिक' समकित पामे छे, शिवाय अन्य जीव एटले के पहेला समकित पाम्यो हतो अने पछी पडी गयो छे ते जीव समकित पामतो होय तो पुंजत्रयनी रचना कर्या विना ज प्रथम तो उपशम समकित पामे छे, माटे आ जीव उपशम समकितथी पडीने नियमा मिथ्यात्वे जाय छे आगमिक पक्षमां तो पूर्वोक्त रीते उपशम समकित पाम्या पछी आत्मा नियमेन मैणमय कोद्रवाने साफ करवथी कोद्रवा शुद्ध, अर्धशुद्ध अने अशुद्ध एम त्रण प्रकारे विभक्त थाय तथाप्रकारे अध्यवसाय वडयो मिथ्यात्वना प्रदेशोने साफ करतो शुद्ध, अर्धशुद्ध,

छे एम शास्त्रमा सुलसु जणाव्यु छे आटलो अत्रे अधिक खुलासो जाणवो हेतु ए के–निर्मलबोधनु मुख्य फल अध्यवसायो अहीं कायम होवाथी ते विमलबोध ज कहेवाय. आवा आत्मा माटे ग्रंथकर्ता जणावे छे के–'स्यादियं च परा' 'प्रणिधान' आदि आशय संबंधी अनुभव प्राप्ति आ आत्माने उत्कृष्ट–माधा यतावाली होय, अत' आ आत्माने ज पुष्टि-शुद्धिनो खास अनुबंध लाभ थाय

" आटलु जणावी हवे ' प्रणिधान ' आदि आशयोनी नामग्रहणपूर्वक संख्या ग्रंथकर्त्ता जणावे छे. "—

प्रणिधिप्रवृत्तिविघ्न—

जयसिद्धिविनियोगभेदत• प्राय• ।

धर्म्मज्ञैराख्यात•

शुभाशुय• पञ्चधाऽत्र विधौ ॥ ३–६ ॥

मूलार्थ—पुष्टि–शुद्धिनी अनुबंधविधिमा मुख्य हेतु अने पवित्र एवा पाच आशयो–आत्माना विशिष्टाध्यवसायो धर्मज्ञ महापुरुषोए आ प्रमाणे कह्या छे प्रणिधि, प्रवृत्ति, विघ्नजय, सिद्धि अने विनियोग ए पाच शुभ आशयो जाणवा

" स्पष्टीकरण "

आ आर्यानो भाव स्पष्ट ज छे. पुष्टि तथा शुद्धिनो अनुबध पवित्र एवा शुभ परिणामोने आधारे ज थाय एम दर्शाव्यु हतु. अत' आ परिणामो माटे अहीं ग्रंथकर्त्ता

थई छे के धर्मज्ञ–धर्मना सत्य मर्मने जाणनार एवा पूर्व महा-पुरुषोए शास्त्रोमा पाच प्रकारना शुभ परिणामो जणाव्या छे यद्यपि शुभ परिणामो असंख्य प्रकारना कह्या छे, तो पण अहीं जे पाच परिणामो दर्शाव्या छे तेमा ते सर्व परिणामोनो समावेश थइ जवाथी पाचथी अधिक परिणामो विशेष-रीत्या गण्या नथी. एव 'पुष्टि–शुद्धि' नो अनुबध पण आ पाच आशय सिवाय अन्य आशयोथी थतो नथी एवो धर्मज्ञ पुरुषोनो अनुभव होवाथी मूलमा मूलकर्ताए 'प्रायः' पद आप्युं यहोल्लताये प्रणिधि, प्रवृत्ति, विघ्नजय, सिद्धि, विनियोग–आ पाच आशयो ज अत्र अनुबधविधिमा मुख्य कारणो जाणवा परमार्थ ए के–जेने आ पाच आशयोनो लाभ थाय तेने ज पुष्टि–शुद्धिनो अनुबध प्रवर्ते, एटले पुष्टि–शुद्धिनो अनुबध प्राप्त करवा आ पांच आशयोनुं ज्ञान करी तेने मेळववा प्रयत्न करवो विवेकीनु कर्तव्य गणाय अहीं जे पाच आशयोना नामो दर्शाव्या तेमा तथाप्रकारना गुणो अने स्वरूप होवाथी तेमज अन्याशयोमा तथाप्रकारनी विशिष्टता न होवाथी पण अत्रे ए ज पाच आशयो दर्शाव्या आटलो विशेष खुलासो जाणवो

" गत आर्यामा नाममात्रथी दर्शावेल पाचे आशयोनु क्रमशः स्वरूप दर्शावता ग्रथकर्ता प्रथम 'प्रणिधान' नामे आशयनु स्वरूप एक आर्याथी बहु सुंदर अने स्पष्ट रीते दर्शावे छे. "

प्रणिधान तत्समये
स्थितिमत्तदध कृपानुगं चैव ॥
निरवद्यवस्तुविषयं
परार्थनिष्पत्तिसारं च ॥ ३–७ ॥

मूलार्थ—धर्म सबधी जे जे मर्यादा-प्रतिज्ञा स्वीकारी होय तेमा जे अविचलपणु अने पोतायी नीची स्थितिना-धर्मप्रतिज्ञाहीन मनुष्यो उपर अनुकपा करवी, एव जे कार्योथी अन्यनो उपकार थाय अने विशेष पाप न होय, तथा अगीकृत धर्ममर्यादाने अनुकूल ज वस्तुनु ध्यान बन्या रहे, एवा परिणामने ' प्रणिधान ' नामे आशय कह्यो छे

" प्रणिधान "

स्पष्टीकरण—' प्रणिधान प्रणिधिः ' प्रणिधान ते प्रणिधि अहीं प्रणिधाननो सामान्य अर्थ एटलो ज के अतःकरणनी मक्कमता, एटले पवित्र हृदयनी खास दृढता आ दृढता पण अनेक प्रकारनी छे तो ते दृढता केवी ? अने कया कया प्रकारनी ? अहीं समजवी, एव आ आर्यामा ' प्रणिधान ' ए विशेष्य पद अने ते सिवायना अन्य तेना विशेषण पदो छे अत' आ ' प्रणिधान ' पदना विशेषणपणे अन्य पदोनी व्याख्या करवानु खास ध्यान राखवु, एटले प्रणिधान नामे आशय कोने समजवो ? ते विशेषणद्वारा ग्रथकर्ता समजावे छे.

' तत्समये स्थितिमत् ' समय'–अधिकृत धर्मस्थान सबंधी जे प्रतिज्ञा अर्थात् जेनाथी आत्माने धर्मलाभ थाय तेवा प्रकारनी धर्म संबंधी जे प्रतिज्ञा तेमा, जेम ' मास अमुक काल या जींदगीपर्यंत न खावु ' एवो धर्म जाणी आत्मा प्रतिज्ञा–पच्चख्खाण–सोगन–नियम करे तो आ सोगन धर्मकारक होवाथी धर्म संबंधी प्रतिज्ञा कहेवाय एटले आ अने तेवी ज अन्य धर्म्य प्रतिज्ञाओ स्वीकार्या पछी ते ते प्रतिज्ञाओ पालवामा अनुकूल एवा जे विचारो, अथवा स्वीकृत प्रतिज्ञाथी आत्मा गमे तेवा संयोगमा पण चलायमान न ज थाय उपाध्यायजी महाराज कहे छे के–जे विषय संबंधी प्रतिज्ञा करी तत्विषयनी सिद्धि न थाय त्या सुधी जेमके–' हु आजथी चार मास सुधी जिनपूजा कर्या विना भोजन नहीं करीश ' बस आ प्रतिज्ञा स्वीकार्या पछी एवा प्रबल संयोगो आवी लागे छे के पूजा करवानो समय न ज मले, छता आत्मा पूजाना संस्कारोथी एवो तो देवाइ जाय के गमे तेटलो टाइम थइ गयो होय अने भूख्या मरवानो समय आवी लागे तथापि भूख्या मरवु ए स्वीकारी ले परन्तु प्रतिज्ञानो भंग न ज करे प्रतिज्ञा पूरी न थाय त्या सुधी आवी दृढता सर्वांशे कायम राखवाना जे शोभन विचारो ते अंतःकरणनी सक्रमता.

" तदधः कृपानुग चैव "—' प्रतिपन्न धर्मस्थानथी वंचित जनो पर अनुकंपा तत्पूर्वक.' उपर दर्शाव्या प्रमाणे जे जे धर्मविषयक प्रतिज्ञाओ आपणे स्वीकारी होय

थवाने तेवा तेवा अनुकूळ विचारो ज आपवा ;विचारी आत्माने दृढ बनावी तथाप्रकारे धर्म्य प्रतिज्ञामा निश्चलता पामीए. आ पछी आ स्थितिना मुकावले आपणाथी अन्य जनता उतरती देखाय त्यारे ते गुणहीन नीची कोटीना छे एम धारी तेना पर यदि द्वेषबुद्धि अथवा घृणा के निर्दयपणु जो उद्भवे तो ते 'प्रणिधान' नामक आशय न कहेवाय हेतु ए के–धर्म्य प्रतिज्ञा स्वीकार्या छता जे आत्मा पोताने ते धर्म्यस्थानना बहाना नीचे गर्वी, द्वेषी बनावी अधिक पाप पेदा करे छे ते धर्मस्थाननी साध्यता चूकी जाय छे. अत आ 'प्रणि-धान' आशय सबधी विशेष खुलासो करवा ग्रथकर्ता अन्य विशेषण दर्शावे छे. आपणाथी धर्मस्थानवचित या पतित एवी अन्य जनताने देखी तेना पर अनुकपा धारवी. जेमके–' हु पूजा कर्या विना भोजन करतो नथी अने तेवी प्रतिज्ञा में लीधी छे. तमे शु करवाना ? तमारामा क्या तेवी शक्ति छे ? तमारो तेवो पुण्योदय क्याथी होय ? तमे अधर्मी पापी छो. तमाराथी थोडो पण धर्म थतो नथी धिक्कार छे तमारा जन्मने !' ए रीते गर्व के द्वेष न करवो किन्तु ' अहो आ लोको मनुष्य जन्म, बुद्धि, बल, आरोग्यता विगेरे पामवा छता काइ पण धर्म-साधन करता नथी. आ लोकोनी शी दशा थशे ? आ लोकोनो काइ दोष नथी तेओ तो कर्माधीन छे ' आ प्रमाणे तेओना पर अनुकपा भाववी आवी अनुकपा सहित धर्मविषयक प्रतिज्ञामा हृदयनी जे दृढता–परिणति ते ज अत्र 'प्रणिधान' आशय कहो छे

आ आशयनी प्राप्ति जेओ अतिपापकारी आरंभोमां सर्वदा प्रवर्तनशील होय अने पोतानो ज स्वार्थ मुख्य रीते साधवामां जेओनी प्रधान दृष्टि होय तेओने तो न ज थाय, कारण के आवी दृष्टिवाळामां बहोलताये अनुकंपाबुद्धिनो सर्वथा लोप ज थयो होय छे, अने ज्यां अनुकंपा न होय त्यां धर्म ए खाली नाममात्र ज समजवो अने अहीं अनुकंपा तो खास मुख्य मानी छे अतः ग्रंथकर्ता उत्तरार्धथी अधिक खुलासो करे छे के–'निरवद्यवस्तुविषयं, परार्थनिष्पत्तिसारं च ' ' परोपकारसिद्धि प्रधान अने निर्दोष पदार्थ संबंधी जे विचार ' जे कार्यो करवाथी पोते अंगीकृत धर्ममर्यादानुं पोषण थाय एटले नित्य पण ज पदार्थनुं ध्यान रहे के स्वीकृत धर्म संबंधी प्रतिज्ञानो कदापि भंग न थाय तथा प्रत्येक कार्यो अने तत्संबंधी विचारो द्वारा अन्यनो मुख्यतः उपकार ज थाय किन्तु पोतानो स्वार्थ मुख्य न सधाय एवी रीते पापनो परिहार करी प्रधान कार्यो करवाने हम्मेशा ध्यान करवु–विचारो करवा आवा विचारोने हुन्मा धर्म संबंधी स्वीकृत प्रतिज्ञामां दृढता अने गुणहीन जनो पर अनुकंपाबुद्धिपूर्वक परोपकारप्रधान पापनिर्मुक्त वस्तुओनुं हम्मेशा चिंतवन–ध्यान–आने ज शास्त्रकर्ता ' प्रणिधान' नामक आशय जणावे छे.

" 'प्रणिधान' नामे पहेला आशयमां केवल मानसिक तथाप्रकारनी सुंदर बुध्धि दर्शावी. हवे आवी बुध्धिनो जन्म थया पछी तेना फलरूप अने प्रथम आशय पछी जेथी सुंदर

आचरण प्रकटे के जेने प्रत्यक्ष व्यवहारमां देखी शकाय एवो ' प्रवृत्ति ' नामे बीजो आशय दर्शावे छे. "

तत्रैव तु प्रवृत्तिः
शुभसारोपायसंगतात्यन्तम् ॥
अधिकृतयत्नाति-
शयादौत्सुक्यविवर्जिता चैव ॥३—८॥

मूलार्थः—स्वीकृत धर्म संबंधी प्रतिज्ञामां पवित्र अने उत्कृष्ट एवा उपायो-साधनो योजवामां अतिशयेन निपुण एवो जोरदार प्रयत्न-उद्यम करवो, तथा मानसिक उत्सुकता अथवा अकाले ते धर्म संबंधी फलप्राप्तिनी वाञ्छा रहित एवो जे प्रयत्न करवो तेने अहीं ' प्रवृत्ति ' जाणवी

" प्रवृत्ति "

स्पष्टीकरण—शोभन—अशोभन प्रवृत्तिनुं मूल शोभन-अशोभन विचारश्रेणी सिवाय अन्य नथी. अतः प्रवृत्ति उत्पादक ' प्रणिधान ' नामे पहेलो आशय जणाव्या पछी आ आर्यामां 'प्रवृत्ति'नुं स्वरूप दर्शावे छे. अहीं पण 'प्रवृत्ति' ए विशेष्य अने अन्य तेना विशेषण पदो जाणवा. दुनियाना सर्व व्यवहारने लोको प्रवृत्ति ज कहे छे अत अत्र कया प्रकारनी प्रवृत्ति समजवी ? आनो खुलासो आचार्य जणावे छे. ' तत्रैव तु ' पूर्वे प्रणिधान नामे आशयना अधिकारमां जे धर्मविष-

यक प्रतिज्ञानी दृढता अने तत्संबंधी विशेष आशयनी शुध्धि दर्शावी ते ज आशयशुध्धिपूर्वक धर्म संबंधी प्रतिज्ञामां 'प्रवृत्ति.' गमन करवुं परमार्थ ए के-अहीं प्रवृत्ति मात्र शून्यचित्तवाली क्रियारूप न लेवी, किन्तु अभिप्रायपूर्वक बाह्यक्रियारूप आत्मानी विशिष्टि चेष्टा तद्रूप प्रवृत्ति अत्र जाणवी पूर्वे कह्या प्रमाणे " हुं आजथी हम्मेशां पूजन करीश " आ प्रमाणे प्रतिज्ञा गुरुसमक्ष स्वीकार्या बाद ज्यांसुधी आ प्रतिज्ञानो समय पूरो न थाय त्यांसुधी ते प्रमाणे वर्तन कर्या ज करवुं, परंतु अंतरमां मात्र प्रतिज्ञा लेवानी इच्छा उद्भवी ते इच्छारूपे ज बन्या रहे तेम नहीं अथवा तो लीधा पछी तेना पालन प्रति वेदरकारी या तो एक वेठरूपे पूरी थाय तेवी नहीं परंतु "शुभसारोपायसंगतात्यंतम्" 'शुभ-सुंदर, सार-उत्कृष्ट एवा उपायोवडे अत्यंत युक्त' स्वीकृत धर्म संबंधी प्रतिज्ञाना पालन माटे हम्मेशां जेम बने तेम शोभन अने उत्कृष्ट एवा उपायो बुद्धिबलवडे योजी योजीने आदरपूर्वक अत्यंत क्रियानुं आचरण करवुं एटले जे जे प्रतिज्ञाओ स्वीकारी होय तेना पालननी वृद्धि माटे क्या क्या साधनोनी अपेक्षा रहे छे ? तेमां केवा विवेकनी जरूर रहे छे ? आवा आवा विचारो करी, धर्मज्ञ पुरुषोने पूछी पूछी तथाप्रकारे सुंदर आचरण करवुं. 'गतानुगतिक' न्याये अथवा पहेलाथी ओघबुद्धिए जेम क्रिया करीए तथाप्रकारे कर्या करवी. अगर तो कोइ सुधारवानुं कहे तो पण न सुधारतां पोतानुं ज धार्युं करवुं

आवी प्रवृत्ति अत्र अपेक्षित नथी; कारण के आवी क्रिया तो समूर्छिम जेवी अथ अने मूढ क्रिया ज कही छे. अतएव उपाध्यायजी स्वकृत टीकामां विशेष खुलासो करे छे–'उपायः प्रेक्षोत्प्रेक्षादिः' अत्र उपाय ते प्रेक्षा–सामान्यथी धर्मप्रतिज्ञा माटे विचारो करवा, आलोचन करवु, दृष्टिद्वारा जीवोनी तपास करवी. उत्प्रेक्षा–विशेषपणे विचारो करवा, रजोहरण आदि साधनोवडे पडिलेहण करवी

फरी–' अधिकृतयत्नातिशयात् ' अंगीकृत धर्ममर्यादानु पालन करवा माटे प्रयत्न–उद्यम एटलो होय के जेमां लेशमात्र प्रमादने अवकाश न मले अर्थात् प्रमादने दूर करी विशिष्ट रीते प्रतिज्ञा–पालन माटे उद्यम करवो जेमके–अमुक प्रकारनी धर्म सबधी प्रतिज्ञा लीधा पछी आनु पालन करवामां बिल्कुल प्रमाद न करवो, किन्तु दिवसे दिवसे उद्यम अधिक ज जेमा कराय आवी ... ' औत्सुक्यविवर्जिता चैव ' जे प्रवृत्ति–क्रियामा शीघ्रता–मननी उतावळ न होय अथवा इच्छानो वेग न होय तेवी, एव बीजा अर्थमा आ क्रिया कर्या पछी अनवसरे आ क्रियाना फलनी इच्छा करवी तेणे करीने जे वर्जित होय आवी प्रवृत्ति ते अत्र ' प्रणिधान ' नामे आशयना फलरूप सत्य प्रवृत्ति जाणवी अनवसरे फलनी इच्छा करवी ते पण एक आर्त्तध्यान कहु छे–' विपरीत मनोज्ञानाम् ' ' इष्ट पदार्थोनी इच्छा ते आर्त्तध्यान ' 'निदान च' विषयसुख माटे जे प्रार्थना ते पण आर्त्तध्यान,

अतएव अहीं फलनी इच्छा रहित एवी प्रवृत्ति जणावी परमार्थ ए के-कोइ पण धर्मसाधनमा फलनी इच्छा कर्या विना अने मन तथा कायानी उत्सुकताने छोडीने प्रवृत्ति करवी, तो ज ते प्रवृत्ति नामे पवित्र एवो धर्म सबधी बीजो शुभ आशय कहेवाय, अन्यथा ते धर्म नहीं किन्तु एक जातनी धमाळ ज कहेवाय अत्रे आ सर्व प्रवृत्ति क्रियारूप छता तेमां आशयनी मुख्यता होवाथी अहीं तेने आशय कह्यो छे

" प्रवृत्ति नामक आशयपूर्वक क्रियामा प्रवर्तनारने विघ्नो कदाचित् आवे खरा, अत. प्रवृत्तिरूप आशय साथे सबध राखनार ' विघ्नजय ' नामे त्रीजा आशयनुं स्वरूप ग्रथकर्त्ता दर्शावे छे. "

विघ्नजयस्त्रिविधः

खलु विज्ञेयो हीनमध्यमोत्कृष्टः ॥

मार्गे इह कंटक–

ज्वरमोहजयसम प्रवृत्तिफल ॥३–९॥

मूलार्थ.—प्रवृत्तिरूप आशयना फलने अर्पनार एवो, मार्गमा कटक, ज्वर तथा मोहजयनी माफक जघन्य, मध्यम अने उत्कृष्ट एम त्रण प्रकारनो निश्चयथी विघ्नजय अत्रे जाणवो.

" विघ्नोनुं बल "

स्पष्टीकरण—पापक्रियामा प्रवर्तनारने कदाचित् विघ्नो न

आवे त्यारे धर्मक्रियामा गमन करनारने बहुधा जरुर विघ्नो नडे छे
खरा " श्रेयासि बहुविघ्नानि भवति महतामपि ।
अश्रेयसि प्रवृत्ताना कापि यांति विनायका " ॥१॥
एटले जो प्रवर्तनार निर्मल मननो होय तो ते क्रियाथी पाछो
पडी जाय, अत पोताना साध्यपर्यंत ते पहोंची शकतो नथी,
माटे प्रवर्तनारे हिम्मतपूर्वक एवी रीते प्रवर्तवु जोइए के गमे
तेवा विघ्नो आववा छता ते सर्वनो विजय करी पोताना साध्य
प्रति बरावर पहोंची शकाय. ' प्रवृत्ति ' रूप आशयनु फल
विघ्ननो विजय करवाथी ज प्राप्त थाय. अन्यथा ' प्रवृत्ति '
ते अप्रवृत्तिभूत ज गणाय अत अहीं प्रवृत्ति नामे आशय
कह्या पछी विघ्नजय नामे आशयनु स्वरूप दर्शाव्यु छे आ
विघ्नजय नामे आशयनु बल ज्यासुधी आत्मा प्राप्त न करे
त्यासुधी उपर कहेला बन्ने आशयो नकामा जाणावा. अहीं
क्रियामा प्रवर्तनार जघन्य, मध्यम, तथा उत्तम एम त्रण प्रका-
रना मनुष्यो होय छे तेमा ' विघ्न आवशे तो ? ' एवा भयथी
जेओ क्रिया न करे ते जघन्य, प्रवर्तवा छता विघ्न आव्या
पछी वचमा ज अटकी जाय ते मध्यम अने अनेक विघ्नो
आववा छता अचल रही सर्वनो विजय करी कार्य साधे
ते उत्तम "प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचै , प्रारभ्य
विघ्नविहता विरमति मध्या. । विघ्नैः पुनः पुनरपि
प्रतिहन्यमाना , प्रारभ्यमुत्तमजना न परित्यजन्ति"
॥८॥ एवी ज रीते धर्मकार्योमा गति करनारने जे विघ्नो आडा

आवे छे तेने अहीं ग्रथकार त्रण विभागोमा वहेंची दृष्टातो साथे घटना करी समजावे छे 'विघ्नजयस्त्रिविधः' विघ्ननो जय त्रण प्रकारनो 'विज्ञेय.' जाणवो 'हीन मध्यमोत्कृष्ट.' हीन, मध्यम अने उत्कृष्ट. अत्र आर्याना पूर्वार्धमा 'खलु' ए वाक्यनी शोभा अर्थे आप्यो छे अथवा तेनो निश्चय एवो अर्थ करीए तो अहीं विघ्नो त्रण प्रकारना ज छे. ए प्रमाणे भावार्थ जाणवो आटलु कह्या पछी आ भावने समजाववा हवे ग्रथकर्ता दृष्टात कहे छे

" विघ्न प्रकारो "

'मार्गे इह' इष्ट अर्थ माटे घणा मनुष्यो ग्रामांतरे जवा निकळ्या होय त्या मार्गमा ज काटाओ, बुखार, आधी विगेरे कष्टो आवी पडे छे, छता प्रबल मनुष्य आ सर्वनो विजय करी जेम ए्ट अर्थनी अवश्य सिद्धि करे छे तथाप्रकारे अहीं पण 'कटकज्वरमोहजयसम' कटक समान हीनविघ्न, ज्वर समान मध्यमविघ्न अने आधी समान उत्कृष्टविघ्ननो विजय करे ते ज स्वसाध्य स्थळे पहोंची शक

" कटकविघ्न "

परमार्थ ए के–मार्गे जवा नीकळेल मनुष्यने कदाचित् मार्गमा काटाओ, काकराओ, पत्थराओ पगमा खुचे–लागे छता कोइक हिम्मती अने समर्थ मनुष्य आ सर्वने अलग करी, सावचेती राखी, जोइ जोइने पग मूकतो जराये खेद न करतो पोताना स्थाने पहोंचे

छे, एव अहीं पण स्वीकृत धर्मप्रतिज्ञाना पालन करवामा प्रवर्तना-रने कदाचित् कांटा आदि समान ठंडी, गरमी, क्षुधा, पिपासा, डास-मच्छर, याचना आदि परीसहो प्राप्त थाय, जे परीसहो आववाथी आत्मा त्रास पामे, कंटाळी जाय, चलितपरिणामी थाय, मेघकुमार मुनिनी माफक आर्त्तध्यान करे अतएव धर्मस्थानथी आत्माने आ परीसहो यत्किंचित् खसेडनार होवाथी आ परीसहो हीनविघ्न कंटक तुल्य कथा. हीनवा एटला माटे के आ परीसहोनो आत्मा सहजे विजय करी शके छे काइ स्वार्थ के लालचथी पण लोको आवा दुःखोने गणता नथी. जे लोको आ विघ्नोनो विजय करी आगळ वधे एटले पोतानी धर्मविषयक प्रतिज्ञानु रक्षण करे, विघ्नोथी कदापि न डरे, किन्तु बहु आनद साथे तेनी सामे खडा रहे ते ज योग्य छे.

" ज्वरविघ्न

तथा ते ज मनुष्य कांटा आदिथी नहीं डरतो आगळ वधता मार्गमा यदि तेने बुखार आवी जाय तो ते आगळ वधवामा हिम्मत हारी जाय छे. एटले आगल जवानी इच्छा छता बुखारना कारणथी जइ शकतो नथी, छता जवाने थोडुघणु साहस करे तो पण तेना पग बराबर चालता नथी. एटले कंटकविघ्न जीतवा पूरतु जे बळ होय तेना करता पण तीव्र अधिक बल ज्यारे होय त्यारे ज ते आगल वधी शके एव अहीं पण धर्मप्रतिज्ञा स्वीकार्या पछी कदापि शरीर सबधी अनेक

व्याधियो आवी पडे आथी धर्म आराधनानी इच्छा छता ते रोगोना कारणे धर्मने पडतो मूके माटे आ विघ्नो विशिष्ट अंतरायभूत होवाथी मध्यम विघ्नो ज्वार तुल्य कह्या; किन्तु जे पुरुष गमे तेवा व्याधिना समयमां पण पोतानी धर्मप्रतिज्ञाओ अचल राखी नित्य कर्त्तव्य नियमोमा खामी आववा न दे अने विशिष्ट उत्साहथी शुभ धर्मनी आराधना करे तो ज दर्शाव्या प्रमाणे कटकतुल्य हीनविघ्नजय अने ज्वरतुल्य मध्यमविघ्नजय नामे शुभ आशयनो आविर्भाव थयो छे तेवु जाणी शकाय आवु अद्भूत बल प्राप्त थवाथी ज प्रथम कह्या प्रमाणे ' प्रवृत्ति ' नामक आशयनी सफलता थाय छे.

" मोहजयविघ्न "

फरी मार्गमा आन्धी, रजोवृष्टि, जलवृष्टि अने धूमस विगेरे होय तो ते उपरना बने प्रकारना विघ्नो जीतवानु सामर्थ्य छता घणा माणसो पूर्व-पश्चिम विगेरे दिशाओ भूली जवाथी मार्गमा ज इधरउधर आथड्या करे छे, उलटा मार्ग पर चडी जाय छे अगर तो नाहिम्मत थइ बेसी जाय छे पाछा फरी जाय छे; किन्तु विवेकी पुरुष आवा संयोगोमा पण विशिष्ट विचारो करी पोतानी निश्चल बुद्धिनी परीक्षाथी निडरपणे आगळ वध्यो जाय छे अथवा बीजाओथी मार्गनु ज्ञान करी तेनापर विश्वास राखी तीव्र उत्साहनु अवलंबन करी मार्ग संमुख चाल्यो जाय छे तथाप्रकारे अहीं पण धर्ममार्गमा

चालता थका कदाचित् मिथ्यात्वभावना उदयथी पण धर्ममां कयो धर्म सत्य हशे ? जैनधर्मना प्रवर्तको सर्वज्ञ हता के नहीं ? धर्मनु फल परजन्ममां मळशे के नहीं ? निगोद विगेरे भावो कह्या छे ते शु सत्य छे ? आवा आवा मनना विभ्रमो-भशयो पेदा थाय एटले आत्मा तेनाथी व्याकुल थई धर्ममां अस्थिर परिणामी थई जाय, सम्यक्तया धर्माराधन करी शके नहीं एटले मिथ्यात्वभावना कारणथी आत्मा धर्मपथने छोडी अधर्मना मार्गे चढी जाय छे. माटे आ विघ्न अनर्थकारी जाणी तेनो सर्वथा विजय ते ज करी शके के जे सम्यक् धर्ममार्गनी पोतानी अपूर्व शुद्ध-बुद्धिथी परीक्षा करी चलितपरिणामी न थाय या तो अन्य गुर्वादिको जे धर्ममार्ग दर्शावे तेना पर बराबर श्रद्धा-विश्वास राखे अने मनना खोटा असद्भूत सशयोने आधीन न थाय आ त्रण प्रकारना विघ्नो आत्माने धर्मथी भ्रष्ट करे छे, तो आत्मानी निश्चल परिणति स्थिर करी, मनना विभ्रमोनो नाश करी जे धर्माराधन करवानु अद्भुत बल धारण करे, कोई पण विघ्नोथी पराभूत न ज थाय ते ज आत्मा धर्ममार्गना इष्ट स्थान प्रति पहोंची शके छे आवा आशयनु नाम अत्र 'विघ्नजय' नामे त्रीजो आशय कह्यो छे.

" परामर्श "

अने आ त्रण प्रकारना विघ्नो पैकी कटक तुल्य शीत, उष्ण आदि परीसहरूप हीनविघ्नो मात्र धर्माराधनामां आत्माने कायर प्रमादी बनावे छे, अने ज्वर तुल्य रोगादिरूप

मध्यम विघ्नो धर्ममा प्रवृत्ति करवानी आत्मानी इच्छाओने मद करे छे, किन्तु आत्माने सर्वथा धर्मभ्रष्ट करी मिथ्यात्वना मार्गे घसडी शकता नथी एटले ते विघ्नो अहीं सामान्य कोटीना जणाव्या ज्यारे मोहजय नामे उत्कृष्ट विघ्न तो आत्माने अवळा मार्गमा उतारी नाखे छे, एटले आ विघ्नने नाश करवानु सामर्थ्य जेमा होय ते आत्मा कदापि प्रथमना ते प्रकारना विघ्नोथी पराभूत थतो नथी; अने उपरना बन्ने विघ्नोथी जे पराभव पामे ते तो निश्चयेन त्रीजा नवरना विघ्नथी पराभूत थाय ज अनएव आ विघ्न जीतवानी शक्ति प्राप्त करवी अधिक आवश्यक गणाय, कारण के प्रथम कह्या प्रमाणे धर्ममा गति करनारने विघ्न तो जरुर आवे, माटे विघ्नोथी डरी धर्ममा गति न करवी या तो धर्म छोडी देवो तेनु नाम धर्मीपणु न ज कहेवाय किन्तु खरी रीते विघ्नोनी सामा थइ धर्माराधन करवु ते ज सत्य धर्मीपणु कहेवाय अने तो ज 'प्रवृत्ति' नामक आशयनु फल प्राप्त थयु बराबर गणाय. अर्थात् आ 'विघ्नजय' करवो ए अहीं 'प्रवृत्ति' आशयनु प्रधान फल गण्यु छे आथी ज मूलकर्ताए कह्यु 'प्रवृतिफल' मक्षेपमा–उपर कह्या प्रमाणे जेओ विघ्नोनो विजय करी धर्ममा 'प्रवृत्ति' करे तेओमा मुख्य रीते 'प्रणिधान, प्रवृत्ति' अने 'विघ्नजय' आ आशयोनो आविर्भाव थयो छे एम प्रवृत्तिद्वारा जाणी शकाय

"ए रीते विघ्ननो जय कर्या पछी अवश्य मस्तुत धर्मनी सिद्धि थाय, अत 'सिद्धि' नामे चतुर्थ आशयनु स्वरूप ग्रथकर्ता मन्त्रे दर्शावे छे."

सिद्धिस्तत्तद्धर्मस्थाना-
वाप्तिरिह तात्त्विकी ज्ञेया ।
अधिके विनयादियुता
हीने च दयादिगुणसारा ॥ ३–१० ॥

मूलार्थः—पोते अंगीकृत तत् तत् धर्ममर्यादाओनी प्राप्ति ते ज अत्र परमार्थभूत ' सिद्धि ' नामे आशय जाणवो. आ आशय त्यारे ज थयो जाणवो के ज्यारे पोताथी अधिक गुणी जनो पर विनय आदि गुणयुक्त होय अने गुणहीन जनो पर अनुकंपादि गुणप्रधान होय

" सिद्धि–भेदो "

स्पष्टीकरण—आशयो–परिणामोना भेदो पैकी 'सिद्धि' नामे चतुर्थ आशय छे ए वात आगल जणावी गया छीए. ' सिद्धिः '–निष्पत्ति सिद्धि एटले निष्पत्ति तैयार थवु प्रथम तो क्रियामा प्रवर्तवु, वचमा उद्भवता विघ्नोनो विजय करवो, एटले पछी बराबर क्रियानी सिद्धि–निष्पत्ति थाय आ रीते आ आशयनो पूर्वोक्त आशयो साथे अनंतर संबंध सुसंगतता बने छे, एटले आशय अधिकारमा आनी 'विघ्नजय' पछी स्थापना बराबर योग्य रीते थाय छे 'सिद्धि' बे प्रकारनी कही, एक तो परमार्थभूता तात्त्विकी अने बीजी अपरमार्थभूता अतात्त्विकी, अथवा व्यवहारिक, कार्यो संबंधी अने

आत्मिक अधिकार संबंधी. जेथी आत्मानुं आलोक तथा परलोक उभय लोकमां कल्याण थाय ते तो तात्त्विकी अने जेथी आत्मानु कदाचित् आ लोक संबंधी ज हित सधाय ते अतात्त्विकी व्यवहार संबंधी. प्रस्तुत अधिकारमा जे सिद्धि नामे चतुर्थ आशय कह्यो छे ते केवल तात्त्विक-आत्मिक कल्याण संबंधी ज आशयवाळो जाणवो, परंतु व्यवहारिक कार्योनी सिद्धिरूप आशय अहीं न लेवो अतएव ग्रंथकर्त्ताए आ सिद्धिनु 'तात्त्विकी' ए व्यवच्छेदक विशेषण आप्यु, तथा आ सिद्धिनो सत्य अर्थ आचार्यश्री पोते ज दर्शावे छे.—

" सिद्धि-स्वरूप "

'सिद्धिः—तत्तद्धर्मस्थानावाप्तिः' सिद्धि एटले ते ते धर्मस्थानकोनी प्राप्ति, अर्थात् पूर्वे आत्माए जे जे धर्म संबंधी मर्यादाओ-प्रतिज्ञाओ स्वीकारी होय तेनी अखंड रीते बराबर समाप्ति करी, आत्माने ते ते धर्मप्रतिज्ञाना संस्कारोथी बराबर वासित करी उत्तम परिणतीवान् बनाववो जेमके—सामायिक, पूजा आदिना नियमो लीधा पछी निर्विघ्नपणे अखंडपणा दोष रहितपणे पूरा पाळवा टीकाकार अहीं खुलासो कर छे के—" विवक्षितस्य-धर्मस्थानस्याहिंसादेरवाप्तिः प्राप्तिः सिद्धिरुच्यते " विवक्षित-स्वीकृत धर्मस्थान जे अहिंसा आदि तेनी प्राप्ति-लाभ ते सिद्धि कहेवाय छे. एटले आत्मा अहिंसा आदि व्रतोनी बराबर निष्पत्ति जे आशयना बलथी

फर ते आशयनु नाम ' सिद्धि ' जाणवु नितान्त आ' आश यना जोरथी आत्मा परमार्थभूत धर्ममा कुशलता प्राप्त करे छे. मात्र लोकदृष्टिए धर्ममा निपुणता करवी ते काइ सिद्धि न कहेवाय कारण के बाजा प्रकारनी निपुणताथी काइ आत्मानु कल्याण थतु नथी, किन्तु तेनाथी तो मात्र यत्किंचित् सुख के मानप्रतिष्ठा मळे छे, माटे ज आ सिद्धिने पारमार्थिकी दर्शावी, ज्यारे पहली सिद्धिथी निश्चयेन आत्मानु अद्भुत कल्याण थाय छे. अतएव आने तात्त्विकी ए विशेषण आप्यु वधुमा परमार्थ तथा धर्ममार्गमा निपुणता प्राप्त थवाथी आत्मा आकरा प्रबल कषायोथी निर्मुक्त थाय छे हेतु ए के-प्रबल कषायोदयवान् आत्मा कदापि उत्तम धर्ममार्गमा पवित्र आशय साथे प्रवृत्ति करी शकतो नथी, किन्तु जेना कषायो नरम हीन बली थया होय ते ज प्रवृत्ति करी शके, अत आ आशयना प्रबल प्रतापथी आत्मा जेना साथे नित्यना वैरी होय तेनो पण नाश करे छे एटले अमुक अशे मैत्री, प्रमोद आदि भावनाओना सरकारवालो बने छे माटे पण आ आशयने तात्त्विक आशय कह्यो छे.

" प्रधान सिद्धि "

फरी ग्रथकर्ता आ आशयनी प्राधान्यता देखाडवा उत्तरार्धमा बीजा बे विशेषणो आपी अधिक पुष्टि करे छे " अधिके विनयादियुता " एटले स्वात्माथी अधिक गुणवान् जे सज्जनो, वडीलो, महापुरुषो पर बहुमान, विनय आदि करवा, अथवा तेवा श्रेष्ठ पुरुषो के

जेमणे सूत्र-अर्थनो अभ्यास कर्यो होय, महाव्रतोनी भावनाओ-नो अभ्यास जेओए कर्यो होय एवा तथा साक्षात् तीर्थ समान गुरुमहाराज आदिनी भक्ति, सेवा, वैयावच्च, विनय आदि करवा भावार्थ ए के--धर्ममार्गनी सिद्धि आ गुणो सिवाय अपूर्ण ज कहेवाय, एटले सिद्धिनी सिद्धि करवा आ गुणो तो अवश्यमेव आत्माए प्राप्त करवा जोइए. जे आत्मा गुणीजनोनो सत्कार विनय आदि करे छे ते ज आत्मा धर्ममार्गनी सिद्धि पामे छे, अतः विद्वानोए स्वात्माने गुणी बनाववा माटे प्रधानमार्ग ए ज दर्शाव्यो छे के--तीर्थभूत गुरु आदिनो विनय विगेरे करवो. अत्र महाव्रतो तथा दर्शनादिनी भावनानु स्वरूप आचारांग तथा तत्त्वार्थसूत्रमा कह्यु छे ते विचारवु.

" व्रत-भावना "

१ " तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पंच पंच " त० अ०७ सू० ३। जिनभगवतोए प्रत्येक महाव्रतोनी स्थिरता माटे पांच पांच भावनाओ दर्शावी छे 'प्राणातिपातविरमण' नामक पहेला महाव्रतनी रक्षा माटे--इर्यासमिति--साडात्रण हाथ जेटली जमीनमा बराबर जोइने चालवु मनोगुप्ति--अशुभ विचारोने बंध करवा, एषणासमिति--४२ दोष रहित आहार ग्रहण करवो, आदानभंडमत्तनिक्षेपणासमिति--वस्त्र--पात्र आदि तपासी-पडिलेही पछी ग्रहण करवा के मूकवा, आहारादि तपासीने खावा 'मृषावादविरमणव्रत' नामे बीजा व्रतनी रक्षा माटे--हितमित वचन बोलवु, क्रोधनो त्याग, लोभनो त्याग, आकस्मिक

आम छता यदि स्वात्मा अनुकंपाहीन होय, दुःखीओनो बेली परोपकारी न होय तो ते धर्मनी सिद्धि करी शकतो नथी; माटे अहीं ग्रंथकर्त्ता वधु विशेषण आपी खुलासो करे छे के-'हीने दयादिगुणसारा' पोतानी अपेक्षाए न्यूनगुणी जनो पर अनुकंपा-दयाभाव राखवो, अर्थात् गुणहीन मनुष्योनी प्रवृत्तिओ देखी तेना पर द्वेष न करवो किन्तु तेओना पर दयाना विचारो करवा एटले ते लोको पण गुणवान बने तेवी भावना

वर्यो मरणभयथी निडरता, हास्य आदिनो त्याग करवो 'अदत्तादानविरमण' व्रतना रक्षण माटे-विचारपूर्वक शुद्ध स्थाननी याचना, जेकर होय त्यारे अवग्रहनी याचना करवी पण पहेलाथी संग्रह न करवो, सौनोपेत वस्तुनी याचना करवी, एक गैच्छना मुनिओ पासे जयानी याचना करवी, गुरु आज्ञाथी पान भोजन लेवा. 'मैथुनविरमणव्रत' माटे-ज्यां स्त्रीओ, पशुओ, नपुंसको रहेता होय एवा स्थाननो त्याग करवो, स्त्रीयो साथे प्रेमालाप न करवो, कामिनीयोनुं रूप इद्रियोनुं अवलोकन न करवुं, प्रथम सेवेल भोगादिनुं स्मरण न करवुं, स्निग्ध पदार्थोनो त्याग करवो 'परिग्रहविरमण' व्रत माटे पांचे इद्रियोना इष्ट विषयो पर मोह अने अनिष्ट विषयो पर द्वेष न करवो आ प्रमाणे नित्य भावनाओनो अभ्यास करवाथी आत्मा महाव्रतोने अविचलपणे पाळी शके छे ने लेश पण विघ्न उद्भवता नथी माटे ज आने महाव्रतोनी भावनाओ कही पुनः पुन अभ्यास करवो, विचारवुं, ध्यान करवुं तेनुं नाम

राखवी, आटलुं ज नहीं परंतु आपत्तिग्रस्तनो उद्धार करवा प्रयत्न करवो, दुःखीयोने दान आपवु, तेओनुं दुःख दूर करवु विगेरे चेष्टा करवाथी आत्मा योग्य रीते धर्मनी सिद्धि करी शके छे. अहीं अधिकगुणी तथा हीनगुणीनुं ग्रहण करवाथी मध्यमगुणीजनोनु पण ग्रहण थई जाय छे, अतः मध्यमगुणी जनो पर पण अनुकंपा, उपकार विगेरे करवा. आ रीते भावि-

---

भावना आनुं विशेष स्वरूप तत्त्वार्थटीका अने आचारांगमां भावनाध्ययनमां बहु सारी रीते दर्शाव्युं छे, तथा प्रशस्त अने अप्रशस्त ए रीते भावना बे प्रकारनी पण कही छे दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वैराग्य संबंधी जे वारंवार अभ्यास करवो ते प्रशस्त भावना अने क्रोध, लोभ, मोह आदि पापोनो वारंवार अभ्यास करवो ते अप्रशस्त भावना

" दर्शन-भावना "

दर्शन आदि भावनानुं स्वरूप खास विचारवा योग्य होवाथी अमे अहीं टिप्पणीमां आपवु उचित धार्यु छे-" तीत्थगराण भगवओ पवयणपावयणिअइसइड्ढीण। अभिगमणनमण-दरिसणकित्तणसंपूअणाथुणणा ॥ १ ॥ जम्माभिसेयनिक्खम णचरणनाणुप्पया य निव्वाणे। दियलोअभवणमंदरनदी-सरभोमनगेसु ॥ २ । अट्ठावयमुज्जिंते गयग्गपयए य धम्म-चक्के य। पासरहावत्तनगं चमरुप्पायं च वंदामि ॥ ३ ।"

" तीर्थंकर भगवंतो, द्वादशांगधारी आचार्यो, केवलज्ञानी, मन पर्यायज्ञानी, अवधिज्ञानी, चौदपूर्वधरो, आमौषधी

फगुणीनो विनय विगेरे, मध्यमगुणी तथा हीनगुणी पर दया भाव करवाथी आत्मा धर्ममार्गनी बरावर सिद्धि करवाने समर्थ बने छे आवी चेष्टाओद्वारा धर्मी आत्मामा सिद्धि नामनो चतुर्थ आशयनो जन्म थयो छे एम जाणी शकाय दुकमा-

---

आदि लब्धिधरो आदिनी सामा जबु, तेओना दर्शन, गुणानुवाद, शुभद्रव्योथी पूजा—नमस्कार आदि करवा आम करवाथी नितान्त स्वसम्यक्त्वनी शुद्धि थाय छे, तथा जिनेश्वरोना जन्म, दीक्षा, केवल, निर्वाणभूमिना देवलोक, मेरुपर्वत, नदीश्वरद्वीप, पातालभुवन, आदिना शाश्वत चैत्योना, अष्टापद, रैवताचल, गजाग्रपद, तक्षशिला बाहुबलीजीनी राजधानी, धरणेन्द्र महाराजे ज्या पार्श्वनाथजीनो महिमा कर्यो हतो ते स्थानमा, रथावर्तपर्वत, जे स्थलेथी वीरभगवाननु शरण लइ चमरेन्द्रे उत्पात कर्यो हतो, आ सर्व स्थानोना दर्शन, स्पर्शन, पूजा, नमस्कार करवाथी पण समकित निर्मल थाय छे ” पुनः “ गणिय निमित्त जुत्ती सदिट्ठी अवितह इम नाण । इय एगतमुवगया गुणपच्चइया इमे अत्था ॥ १ ॥ गुणमाहप्पा इसिनामकित्तण सुरनरिंदपूया य । पोराणचेइयाणि य इय एसा दसणे होइ ” ॥ २ ॥ “ पवित्र बुद्धिमान् आत्मा आ आचार्यभगवत बीजगणित तथा निमत्तशास्त्रोना पारगत छे दृष्टिवादमा उक्त नानाप्रकारना द्रव्यसयोगो—चूर्णो बहु सरस रीते जाणे छे अचल समकित अने अविसवादि निर्दोष ज्ञानना धरनार छे इत्यादि रीते आचार्योनी गुणप्रशसा करवाथी, तथा

ज्यारे आ प्रकारनो सिद्धि नामनो आशय प्राप्त थाय त्यारे ज पूर्वना त्रणे आशयो सफल थाय, अन्यथा ते नकमा जेवा गणाय, माटे उपरोक्त त्रण आशय पाम्या पछी आ आशयने पामवा प्रयत्न सेववो उचित गणाय. तथा सिद्धिना अगना जे जे गुणो आर्यामा आचार्योए दर्शाव्या ते ते गुणोनी प्राप्ति थाय त्यारे ज सिद्धि नामना आशयनी सिद्धि थइ जाणवी.

पूर्व महात्माओनु नामस्मरण, देवेंद्र नरेंद्रोए करेल पूजा आदिनी स्तुति, प्राचीन मंदिरोनी पूजा विगेरे करवाथी पोतानु समकित बराबर निर्मलतर करे छे "

" ज्ञान–भावना "

तत्तं जीवाजीवा नायव्वा जाणणा इह दिट्ठा । इह कज्ज-करणकारगसि कारगसिद्धी इह बंधमुक्खो य ॥१॥ बद्धो य बंधहेउ बंधण बंधप्फलं सुकहियं तु । संसारपवंचोवि य इह य कहिओ जिणवरेहिं ॥ २ ॥ नाणं भविस्सइ एवमाइया भावणाइयाओ य । सव्झाए आउत्तो गुरुकुलवासो य इय नाणे ॥३॥ " आ भूतलमा सत्य पदार्थनु स्वरूप प्रतिपादन करनार केवल जिनप्रवचन ज छे, तेम ज साची श्रद्धा तेनाथी ज आत्माने मले छे कारण के जीव अजीव आदि पदार्थनु परमार्थ स्वरूप तेमां दर्शाव्यु छे, तथा मोक्षरूपी कार्य अने तेने साधनार सम्यक्त्व ज्ञान–चारित्ररूपी कारण, पुन तेमा प्रवर्तनार साधु ए रीते कार्य, कारण तथा कारकनु स्वरूप पण आर्हत प्रवचनमा ज देखाड्यु छे कर्मनो बंध, कर्मोनो नाश, आत्मा आठ

ए प्रमाणे सिद्धिनुं स्वरूप कह्या पछी तेना फलभूत 'विनियोग'नु स्वरूप कहे छे —

कर्मथी बद्ध छे, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, योगो ए रीते कर्मरचना हेतुओ, कर्मनुं स्वरूप, चार गतिरूप कर्मनु फल, समारंभपणनु स्वरूप अने आत्महितकारी पंथो ए सर्वे अहीं जिनप्रवचनमा ज दर्शाव्यु छे, किन्तु बौद्ध, सांख्य, वेदान्त आदि कोइ पण मतमां दर्शाव्यु नथी आवा आवा विचारो करवाथी आत्माने जरुर तत्त्वज्ञाननी प्राप्ति थाय छे, तथा वारवार अभ्यास करवाथी पण ज्ञाननो लाभ थाय छे, सूत्र-अर्थनो स्वाध्याय करवाथी अने गुरुकुलमा वास करवाथी ज्ञाननी प्राप्ति थाय छे "

" चारित्र-भावना "

" साहुमहिंसा धम्मो सच्चमदत्तविरई य बंभ च। साहुपरिग्गहविरई साहु तवो बारसंगो य ॥ १ ॥ वेरग्गमप्पमाओ एगग्गे भावणा य परिसग। इय चरणमणुगयाओ भणिया इत्तो तवो वुच्छं " ॥ २ ॥ " अहिंसा मुख्य धर्म, सर्वथा शुद्ध सत्य, अदत्तनो एकान्त त्याग, नववाडे शुद्ध ब्रह्मचर्य, मूर्च्छारूप अपरिग्रहनो त्याग बार भेदवाली तपस्या-ए सर्व अत्र जिनमतमा ज कह्यु छे वैराग्यनी भावना-संसारसुखनी गर्हा, अप्रमाद मांस-मदिरा विगेरे कर्मबंधनां कारणो कह्या छे एकाग्रभावना-ज्ञान दर्शनमय मारो आत्मा

सिद्धेश्चोत्तरकार्यं
विनियोगोऽवन्ध्यमेतदेतस्मिन् ।
सत्यद्वयसंपत्त्या
सुन्दरमिति तत्परं यावत् ॥ ३–११ ॥

शाश्वतो तथा एकलो ज छे अने सिवाय अन्य बाह्य पदार्थो अशाश्वत–विनाशी होय छे–आवा आवा विचारो करवाथी आत्मा चारित्रभावनी पुष्टि करी शके छे

" तप–भावना "

किह मे हविज्जऽवज्झो ? किं वा पहू तव काउ । को इह दव्वे जोग्गो खित्ते काले समयभावे ॥ १ ॥ उच्छाहपालणाए इति तवे सजमे य संघयणे । वेरग्गोऽणिच्चाई होइ चरित्ते इह पयाय " ॥ २ ॥ तपस्यावडे मारो दिवस सफल क्यारे थशे ? हु कइ तपस्या करी शकीश ? क्यु क्षेत्र अने द्रव्य आदिमा हु तपस्या करी शकु ? अत्र तप माटे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आश्रयी विचार करवो द्रव्य–वाल, चणा विगेरे ज लेवा, क्षेत्र–ज्या स्निग्ध पदार्थो वधारे मले, काल–शीत अगर गरमीनो समय, भाव–अखेदपणे–ए रीतनो विचार करी तपोवृद्धि थाय तेम तप संबंधी भावनाओ विचारवी करी अणशण माटे स्वात्माने उत्साहित करवो पूर्वे लीधेल नियमोनु बराबर पालन करवु संयम–इन्द्रिय मन आदिना निग्रहरूप

मूलार्थ—सिद्धिनुं उत्तरकार्य अर्थात् फल विनियोग एटले जे धर्मस्थानोनी सिद्धि थया पछी अन्य जनोने ते धर्मस्थानो योग्यतया पमाडवां आ विनियोग नामक लक्षण पाम्या पछी ' अहिंसा, दान ' आदि धर्मो क्दापि निष्फल थता नथी, किन्तु परंपराए अहिंसा आदि धर्मस्थानो सुन्दरताने पामी उत्कृष्ट रूपने धारण करे छे भावार्थ निश्चयतया मोक्षने अर्पे छे

स्पष्टीकरण—

पूर्वना श्लोकमां ' सिद्धि 'ना उपायो बताव्या. अहिं सिद्धि कर्या पछी ' विनियोग ' नामक धर्मनुं पांचमुं लक्षण आचार्य दर्शावे छे. प्रथम तो आत्माने अमुक अमुक धर्मोनी योग्यतावाळो संपूर्णतया बनाववो तेम थया पछी अन्यने पोताना समान करवा प्राप्तधर्मों अन्यमां विनियोग–स्थापन करी धर्मस्थानोनी अविच्छिन्नता करवी, जेथी स्वात्मा ज भावमां सुगमतया ते ज धर्मो पामी अखंड कल्याणनो अनुभवी बने ए ज भाव अहीं आचार्य स्पष्ट समजावे छे

करनार सज्झायध्यानादि आदि, वैराग्यभावना–अनित्य आदि द्वादश भावना, आ सर्व विचारो तथा भावनाओ आत्मानी शुद्धि अर्थे कही छे संक्षेपमां आ सर्व विचारो जिनेश्वरोए कर्मनिर्जरा अने कल्याण अर्थे जणाव्या छे माटे उपर कह्या प्रमाणे अर्थी अने धर्मी मनुष्ये तेनो वारंवार अभ्यास करवो जेथी महाव्रतोनी अचलता अने दर्शन–ज्ञान–चारित्रनी नितान्त पुष्टि थाय

प्रथम पदार्थनी सिद्धि–उत्पत्ति अने पछी ज तेनो व्यापार कराय, अतएव सिद्धिनुं उत्तरकार्य–फलकार्य ' विनियोग ' व्यापार–स्थापन नामे पांचमो आशय सिद्धिना फलरूपे कह्यो एटले अहिंसा, सत्यवाक्, ब्रह्मचर्य, दान, पूजा विगेरेनी पूर्ण कुशलता आव्या पछी ज अन्य आत्माने ते ते कार्योमां जोडवा प्रयत्न करवो. भावार्थ ए के–स्वआत्मामां प्रत्येक धर्मस्थानो प्राप्त थया पहेला, योग्यता आव्या पहेला, बराबर परिणम्या पूर्वे, विधि ज्ञान अने स्वरूप समज्या विना अन्यने उपदेशवा प्रयत्न करवो ते विना रसवतीए भोजननो आग्रह करवा बरोबर रहेवाय. एवं अपूर्ण धर्मस्थान अवस्थामां अन्यने उपदेश करवाथी स्व अने पर बन्नेने हानिकारक थाय छे आ विनियोग नामे आशय आव्या पछी अहिंसा आदि धर्मस्थानो कदापि निष्फल बनता नथी एटले अहिंसादि धर्मस्थाननुं मुख्य फल निर्जरा करवा साथे आत्मा नितान्त धर्ममय बने छे, तेमज अन्यने उपदेशवाथी ते ते धर्मो अविच्छेदरूप कायम बन्या रहे–नाश न पामे भावार्थ ए के–विनियोगकर्त्ता जो कदाचित् धर्मभावथी खसी पण जाय तथापि कलकफलशभग ए न्याये फरी धर्म संस्कारोनी जागृति थवाथी जन्मांतरनी परंपराए ते धर्मो कायम स्थिर रहे छे अने परिणामे [illegible] धर्मस्थाननी सरहद भूमि पर आत्माने दोरी जइ यावद् मोक्षरूप उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करावे छे अतएव प्रथम [illegible] प्राप्ति करवी अने त्यारबाद स्वपरना [illegible]

जे कारणथी द्रव्यक्रियाने तुच्छ गणी भावनी प्राधान्यता कही ते कारण श्रीमान् हरिभद्रसूरिजी बतावे छे—

> अस्माच्च सानुबन्धा-
> च्छुद्ध्यन्तोऽवाप्यते द्रुत क्रमश. ।
> एतदिह धर्मतत्त्व
> परमो योगो विमुक्तिरसः ॥ ३–१३ ॥

मूलार्थ—उपरोक्त भावनी परपराथी ज क्रमे क्रमे शीघ्र अन्त करणनी शुद्धिनो वधारो प्राप्त थाय छे एटले अविच्छिन्न भावनी परपरा चाले छे, तेमज उपरोक्त भाव ए ज धर्मनु खास तत्त्व छे अने भाव ए ज परम योग छे–भाव ए ज विशिष्ट मुक्तिनो रस छे

स्पष्टीकरण—

पूर्वे कहेल पाच आशयोनो वारवार अभ्यास करवाथी भावनी दृढता थवे छे आत्मामा शुभ सस्कारो स्थापवा शुभक्रियानो वारवार अभ्यास करवो एम शास्त्रो उपदेशे छे अतएव 'प्रणिधान' आदि भावोनो अभ्यास करवाथी तेनी दृढता थाय अने तेथी अनुबध प्राप्त थाय छे. पछी तेनी अविच्छिन्न परपरा चाले जेथी अत करणनी तीव्रशुद्धि शीघ्र दीर्घकालना विलब वगर पमाय छे अन्तमा आ जन्म अथवा अन्य जन्ममा तीव्रशुद्धि थवाथी अधिक कर्मक्षय आत्मा करे छे अहीं आ भाव ज धर्मतत्त्व छे के अन्य काइ

धर्मतत्त्व छे ? एना उत्तरमां ग्रंथकर्ता 'एतदिह धर्मतत्त्व' ए पदथी पूर्वे कहेल पांच आशयो-भावो ए ज सत्य रीते धर्मनुं तत्त्व छे अर्थात् भाव वगर अन्य कांइ पण धर्मतत्त्व नथी, भाव विनानो धर्म उपरनी टापटीप ज कहेवाय. 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध' मनना विचारो-विकल्पनो रोध करवो ते ज 'योग' कह्यो छे आ योगनी प्राप्ति शुभ अनुष्ठाननो व्यापार करवाथी ज बने, एटले मनने शुभ ध्यान, अभ्यास, ईश्वरगुणस्मरण आदिमां जोडवाथी अन्य विकल्पो बंध थाय छे अने परिणामे निर्विकल्प दशामय मन बने छे अहीं उपरना आशय-भावने पामवाथी चित्तनी शुद्धि ने छेवटे संपूर्ण कर्मक्षय थवाथी "मोक्षेण योजनाद्योग" 'मोक्षनी साथे जे संबंध करावी आपे ते ज वास्तविक योग कहेवाय' ए प्रमाणनो योग-शब्दार्थ आ भावोने लागु पडवाथी आ पांच भावोने ज शास्त्रकार 'परमयोग' पणे सबोधे छे, तथा आ भावमां ज विशिष्ट कर्मक्षयरूप मुक्ति आपवानी शक्ति-प्रीतिविशेष रस होवाथी भाव ए ज 'विमुक्तिरसः' जणाव्यो परमार्थ ए के-भाव ए ज धर्मतत्त्व, परमयोग अने विमुक्तिरस छे. आ हेतुथी प्रथम तत्त्वबोध उपरना आशयो प्राप्त करवा ए ज फलितार्थ अने धर्मतत्त्वनो मथितार्थ छे

उपर 'पांच आशयद्वारा मननी तीव्रशुद्धि थाय' एम कह्युं अने प्रथम 'शुद्धि पापना क्षयथी थाय' ए प्रमाणे कहेवायुं हवे पाप तो अतीत-अनादि कालमां

अनेकधा आराधए सेव्युं, तो पापस्वभावभूत आत्मा पापनो त्याग करी 'पाप भावनी' ज अभिलाषा करे अने पापने बहुमान भावथी न माने ए केम बने ? अर्थात् पूर्व कालथी जेनी साथे गाढ मग्नता-तन्मयता छे एवा पापभावने मूकी शुभ आशयोनी प्राप्ति आत्माने क्याथी थाय ? परमार्थ ए के न ज थाय, ए शंकाना निरसन माटे आचार्य हरिभद्रसूरिजी कहे छे—

अमृतरसास्वादज्ञ
कुभक्तरसलालितोऽपि बहुकालम् ।
त्यक्त्वा तत्क्षणमेन
वाञ्छत्युच्चैरमृतमेव ॥ ३-१४ ॥

मूलार्थ.—अमृतना भोजननो स्वाद जाणनार लांबा कालथी तुच्छ भोजनना रसथी पुष्ट थयेल होय तो पण अमृत जे वखते मळे ते ज क्षणे तुच्छ भोजनने त्यजी दइ केवल अमृतना भोजननी ज इच्छा करे छे

स्पष्टीकरण—

स्पष्टिकरण—जेम कोइ मनुष्य दरिद्र कुटुंबमा जन्म पाम्यो तेने जन्मथी ज तुच्छ मकाइ, जुवार आदिना भोजन मळे, तेनाथी ज ते मोटो थयो होय, परतु अन्य स्वादिष्ट उत्तम भोजन देख्या पण न होय तो पछी तेण देवताओनुं भोज्य अमृतभोजन तो क्याथी देख्युं होय ? आ मनुष्य पर कोइ

देवादि तुष्ट थाय अने अमृतभोजननो स्वाद, तेना गुणो, तेनु स्वरूप अने तेनी दुर्लभता तेने जणावे, एटले तुरत ज आ पेलो मनुष्य लावा कालनु पोतानु तुच्छ भोजन छोडी दइ ते ज उत्तम दुर्लभ देवभोज्य अमृत भोजननी इच्छा करे छे, पण दीर्घ कालना कुभोजननी चाहना करतो नथी

तथाप्रकारे—

एवं त्वपूर्वकरणात्-
सम्यक्त्वामृतरसज्ञ इह जीव ।
चिरकालसेवितमपि
न जातु वहुमन्यते पापम् ॥ ३–१५ ॥

मूलार्थ—एवी रीते अपूर्वकरण नामे उत्तम अध्यवसायथी सम्यक्त्वरूपी अमृतरसनो ज्ञाता आत्मा अहीं दीर्घ कालथी अनुभवेला एवा पण पापोने क्यापि काले वहुमाननी दृष्टिथी मानतो नथी-इच्छा करतो नथी.

" स्पष्टीकरण "

यथाप्रवृत्तिकरणना वलथी आत्मा शुद्ध परिणतिमय वनी ग्रंथिभेदनी भूमिका पर आवीने उभो रहे छे, एटले विशुद्धतर परिणामना वराथी ग्रंथिभेदनी क्रिया करे छे त्यारपछी अनादिथी अप्राप्त अने अतएव अपूर्व–नवीन एवा अपूर्वकरण नामे अध्यवसायविशेषथी शुद्ध तत्त्वमार्गनी रुचिरूप सम्यक्त्वना

अपूर्व लाभने पामे छे, जेथी अहीं आत्मा हिंसा-अहिंसा, सत्य-असत्य, त्याज्य, आदेय, ज्ञेय, भोज्य-अभोज्य, ग्राह्य-अग्राह्य, देव-कुदेव, गुरु-अगुरु, धर्म-अधर्म, तत्त्व-अतत्त्व, पापकारणो-पुण्यकारणो विगेरे सर्व पदार्थोने यथार्थतया निर्धारे छे, अने पछी विवेकने आपनारी अपूर्व आनदने अनु भवे छे एटलु ज नहीं किंतु क्रोधादिनो उपशम, ससार पर अप्रेम, विषयोथी कटाळो, दान-हान-दुःखी पर दयालु, तत्त्वमा ज प्रेम अने अतत्त्व पर अश्रद्धा प्राप्त करी, ससारना कारणोनी अरुचि लाग्वा एकान्त नि श्रेयसभावना कारणो प्रति आत्मा आत्माने प्रेरे छे एटले आ प्रकार अपूर्वकरण अध्यवसायना बळथी सम्यक्त्वरूप अमृतनु पान कर्या पछी, अथवा सम्यक्त्वनु बराबर स्वरूप जाण्या पछी दीर्घ कालथी आसेवल विपरीत मान्यता, ज्ञान, ज्ञानी, धर्म, देव आदिनी निन्दा, नाश, आशातनारूप पापोने बहुमानभावथी कदापि ते आत्मा मानतो नथी

अहीं अमृतरस ते सम्यक्त्व अने पाप ते मिथ्या रुचि अथवा प्रवचन-सघ प्रथम गणधर, द्वादशांगी विगेरे, तेनी निंदा, उपघात, आशातना विगेरे पूर्वना श्लोकमा आ विषय समजवा माटे ग्रथकार प्रथम दृष्टात कही गया एटले आ दार्ष्टान्तिकनु स्वरूप अहीं जणाव्यु. पूर्वे दीर्घकालिक जेम कुभोजनने अमृतनो स्वाद जाणनार इच्छतो नथी तेम अहीं कुभोजन समान दीर्घकालिक अभ्यस्त मिथ्यात्वादि पापोने अमृतभोजन तुल्य

सम्यक्त्वना स्वरूपने जाणनार 'कदापि इष्टपणे मानतो नथी परमार्थ ए के–मिथ्यात्वादि पापोनी इच्छा ज्या सुधी समकितनु स्वरूप यथार्थ जाण्यु नथी त्या सुधी ज आत्मा करे छे, अर्थात् समकितने ओळख्या पछी करतो नथी.

'सम्यक्त्वरूपी अमृतरसने जाणनार आत्मा कदापि पापने इच्छतो नथी' एम कहु, तो पछी जैन कोइ प्रकारना सामान्य विशेष व्रतो–नियमो नथी एवा सम्यक्त्वधारी जीव जगतमा पाप करे छे एम प्रत्यक्ष अनुभवाय छे तेनु शु ? आ प्रश्ननु समाधान कर्या पछी आचार्यश्री आ प्रकरणनी समाप्ति करे छे

> यद्यपि कर्मनियोगात्
>
> करोति तत्तदपि भावशून्यमलम् ।
>
> अत एव धर्मयोगात्
>
> चिप्र तत् सिद्धिमाप्नोति ॥ ३–१६ ॥

मूलार्थ—जो के कर्मना संयोगथी ते ते पापकर्मो समकितधारी आत्मा करे छे, तो पण ते आत्मा ते ते पापो विना भावथी करतो होवाथी कालांतर धर्मसंयोगना साधनो द्वारा पूर्वना सर्व पापोनो अल्प कालमा नाश करी सिद्धि–मोक्षने प्राप्त करे छे

"स्पष्टीकरण"

केवळ नितांत सम्यक्त्वधारा यदि निकाचित चारित्र

मोहनीय कर्मना उदयथी देशथी अथवा सर्वथी व्रतो स्वीकारी न शकवाथी आरंभ, समारंभ, परिग्रहादि पापोने सेवे छे, तो पण ते सर्व पापो अकर्तव्यबुद्धिए अशक्यपणाथी ज करतो होवाथी तेने पापकार्योमां आसक्ति–तीव्रता–गाढ प्रेम न रहेवाथी तेने विशिष्ट निकाचित पापबंध थतो नथी, कारण के–पापना तीव्र अगर मन्द बंधनो मुख्य आधार अध्यवसाय पर ज होय छे. एटले आसक्तिपूर्वक करनारो तीव्र बंध करे अने आसक्ति–भावविना करनारो मंद बंध करे छे कह्युं छे के–"सम्मद्दिट्ठी जीवो जइ वि हु पावं समायरे किंचि। अप्पो सि होइ बंधो जेण न निद्धंधसं कुणइ" ॥ १ ॥ इत्यादि एक–सम्यक्त्वधारीनी प्रवृत्ति 'तप्त लोहपदन्यास' 'तपेला लोढापर जेम पग स्थापन कराय ए न्यायथी पापकार्योमां सभयपणे ज होय छे आ कारणथी ते आत्मा पापने बहुमानथी मानतो नथी, जेथी छेवटे धर्मना योगथी धर्मना अति उत्साह धारण करी तुरतज धर्मनी संपूर्ण सिद्धि पामे छे, अर्थात् समकिती जीव पापनो अल्प-बंध करे छे ने धर्मना यथार्थ फलो पामे छे. एटले तीव्र बंध न थवाथी संसारभ्रमण तेने दीर्घ कालपर्यंत करवु पडतु नथी

अहीं 'समकिति जीव पाप करे छे?' ए प्रश्नतु समाधान करीने ग्रंथकर्ताए धर्मसिद्धि पामवानी योग्यता केम पमाय ए विषयनु विस्तृत कथन कर्या पछी 'धर्मसिद्धि' नामे आ अधिकारनी संपूर्णता जणावी.



(४) धर्मेच्छुलिंगषोडशकम् ।

गत प्रकरणमां " अस्य स्वलक्षणमिदं धर्मस्य० " ए श्लोकोथी धर्मनु लक्षण, धर्मनु .स्वरूप अने तेनु साध्य आशयो तथा तेनु स्वरूप, तेम ज धर्मसिद्धिना अधिकारी विगेरे जणाव्या हवे ए रीते सिद्ध थयेल धर्म धर्मीमां छे के नहीं ते लिंग–चेष्टा, क्रिया, लक्षणो विना ओळखी शकाय नहीं, तेम ज ' धर्मसिद्धि ' कार्यद्वाराए ज जाणी शकाय छे अतएव ' धर्मसिद्धि ' नामे अधिकार कह्या पछी ते ज धर्मतत्त्वना विस्तारथी लिंग–चेष्टाओ, हेतुओ दर्शाववा माटे श्रीमान् हरिभद्रसूरिजी चतुर्थ षोडशकनामा प्रकरण कहे छेः—

सिद्धस्य चास्य सम्यग्
लिंगान्येतानि धर्मतत्त्वस्य ।
विहितानि तत्त्वविद्भिः
सुखावबोधाय भव्यानाम् ॥ ४–१ ॥

मूलार्थ—श्रद्धा प्रमाणे सिद्ध थयेल धर्मतत्त्वने जाणवा माटे योग्य पुरुषो सुखथी समजी शके ते हेतुथी आ

अविपरीत यथार्थ लिंगो–लक्षणो तत्त्वज्ञपुरुषोए आ प्रमाणे कह्यां छे

"स्पष्टीकरण"

गत प्रकरणमां जे कह्युं ते प्रमाणे वर्तवाथी जरूर धर्मनुं यथार्थ स्वरूप अने तेनी सिद्धि आत्मा पामी शके ए संदेह रहित छे आ धर्मसिद्धिने योग्य पुरुषो–जेने धर्मनुं तत्त्व अने तेनी सिद्धि करवानी अपेक्षा होय एवा जनो–अल्प प्रयत्नथी केम जाणी शके एवा उद्देशथी धर्मतत्त्वना लिंगो–लक्षणो तत्त्वदर्शी जनोए कह्यां छे, जे लिंगो अहीं बतावाशे लक्षणोथी 'धर्मसिद्धि' जाणी शकाय तेमज 'धर्मसिद्धि'ना अर्थीओ लक्षण जाण्या विना धर्मसिद्धि पामी शके नहीं एटले आ अधिकारमां ते ज लक्षणो परमार्थज्ञाता पूर्वपुरुषोए जे प्रमाणो कह्यां छे ते ज लक्षणो आचार्य अहीं दर्शावे छे

आ लक्षणो प्रथम ग्रंथकार स्वरूपमात्रथी शरुआतमां दर्शावे छे

औदार्यं दाक्षिण्यं
पापजुगुप्साथ निर्मलो बोध ।
लिंगानि धर्मसिद्धेः
प्रायेण जनप्रियत्वं च ॥ ४–२ ॥

मूलार्थ—उदारता १, दाक्षिण्यता २, पापनी निंदा ३,

सुदरबोध ४ अने बहुलनाए लोकप्रिय ५ ए प्रमाणे- आ पाच लक्षणो ' धर्मसिद्धि ' ना पूर्वपुरुषोए कह्या छे

"स्पष्टीकरण"

औदार्य-विशाल चित्तनी वृत्ति, दाक्षिण्य-सर्वने अनुकूल वर्तन, पापजुगुप्सा-पापनो त्याग, पापनो खेद निर्मलबोध-यथार्थ तत्त्वज्ञान, जनप्रियत्व-लोकोनो प्यार. आ पाचे धर्मसिद्धिना चिन्हो-लक्षणो आणवा आर्थी धर्मनी सिद्धि बराबर जाणी शकाय छे. पूर्वोक्त प्रत्येक लक्षणनु स्वरुप ग्रथकार पोते ज आगल दर्शावे छे एटले अहीं तेनो विस्तार करवो अनुचित जणाय छे अहीं लोकोनो प्यार गमे तेटला सुदर सद्वर्तनथी सर्वथा प्राप्त करवो कठिन छे, कारण के दुर्जनस्वभाव कोइथी बोलाय तेवो नथी एटले सर्वेशो पण सर्वना प्रेमने पामवा असमर्थ बन्या छे, तो सामान्य सज्जनप्रकृति केम सर्वना लोकप्यार पामी शके ? एटला ग्रथकर्ताए मूलमा ' प्रायेण ' ए वाक्यथी बहुधा लोकप्रियत्व ए गुण दर्शाव्यो

" औदार्य ' नामे प्रथम लक्षणनु स्वरुप दर्शावे छे. "

औदार्यं कार्पण्यत्यागा-
द्विज्ञेयमाशयमहत्त्वम ।

उदारताना कार्यो जाणवा परमार्थ ए के-मानयोग्य जनो अने दीन, दुःखी, अपंग, अंध, कृपण जनो साथे उचित सद्भाव राखवो, हृदयनी विशाल भावना धारण करवी, कजुसाइने मूकी सर्वे धर्मकार्योमा प्रति उचित बुद्धि, गंभीर अंतःकरण धारवु आनु नाम 'औदार्य' नामे धर्मनु प्रथम लक्षण शास्त्रकार कहे छे.

क्रम प्राप्त 'दाक्षिण्य' नामक गुणनु स्वरूप दर्शावे छे

दाक्षिण्य परकृत्येष्वपि
योगपर शुभाशयो ज्ञेय ।
गाभीर्यधैर्यसचिवो
मात्सर्यविघातकृत्परम' ॥ ४–४ ॥

मूलार्थ—अन्य जन मवर्धी कोइ पण कार्य होय ते कार्य करी आपवामां अडग उत्साहथी सामेल थवु एवो जे शुभ अध्यवसाय, ते पण गाभीर्यता अने धैर्यतानी साथे मत्सरभावनो नाश करीने ज प्रवर्ते त्यारे परम उत्कृष्ट आ शुभ दाक्षिण्य गुण आव्यो कहवाय.

"स्पष्टीकरण"

'दाक्षिण्यता' नो टुक अर्थ एटलो ज के-सर्वने अनुकूल पोतानु वर्तन राखवु, अर्थात् हीन, मध्यम अने उच्च एवा त्रणे वर्ग पैकीना कोइ पण मनुष्य साथे एवु वर्तन राखवु

के जेथी स्वनिमित्ते ते ते आत्माओने नकामो क्लेश अथवा अधर्म न थाय, अथवा जे कार्यो अगर क्रियाओ करवाथी अन्यना कार्योनी हानि थाय तेवा कार्यो बंध करवा अहीं टीकाकार आ गुणनी विशिष्ट व्याख्या आपता बहु उदारपणु बतावे छे प्रथम कह्या प्रमाणे वर्तन राखनारो होय, अने विशेषतया ज्यारे अन्यजनोना कार्यो पोतानी दृष्टिए देखवामा आवे त्यारे त्यारे ते लोको पोतानी सहायता याचे अथवा न याचे तो पण पोतानी शक्तिने लोप्या वगर मनसा, वाचा अने काया ए त्रणे योगथी ते कार्यो सम्पूर्णतया विना चुकवाने सार्थी आपवामा उत्साहित दिल धारवु, आनु नाम तात्त्विक 'दाक्षिण्यता' कही छे 'दाक्षिण्यता' नो केटलीकवार लोको एवो अर्थ करे छे के–कोइने पण खोटु न लगाडवु, कोइना दिलोने न दुःखवत्रा आथी सर्वने राजी राखवा जूठ, प्रपंच अने खोटी खुशामतो करवी, आनु नाम 'दाक्षिण्यता' मानी तेवु वर्तन पोते राखे छे अने अन्यने राखवा तेवो उपदेश पण आपे छे. यदि बीजाओ आ उपरनी मान्यता न कबूले अने न सेवे तो तेने हलको गणवो, उतारी पाडवो, पोताना टोळाथी ते बहार छे, दुर्गुणी अने आचारहीन छे, व्यवहारने समजतो नथी इत्यादि प्रकारे निंदे छे. आथी वस्तुतः खरी 'दाक्षिण्यता' नु स्वरूप मरी जवाथी अने आ गुणने [illegible] लोको समजी जइ तेवा टोळामा सामेल बने छे [illegible] मान्यतानो आशय मोटा जनसमूहमा

अने प्रतिष्ठित साधुसमुदायमां पण घर करी गयो छे, परतु वस्तुत. ए 'दाक्षिण्यता' नामक गुण नथी किंतु 'दाक्षिण्यता'ना व्हाना नीचे मानलोलुपीपणु, पूजावानी लालसाओ अने बिना गुणे गुणीपणामां खपवानी प्रपंची तृष्णाओने पोषवानो एक मार्ग छे एटर दाक्षिण्यपणु सूरिजीए जे कह्यु ते ज कहेवाय अर्थात् जेओ अन्यना कार्योंना हानि कर्या वगर पोताना प्रत्येक कार्योंने साधे अने अन्यना कार्योंनी वखते पोताना लाभोने पण मूकी दइ ते कार्यो पेला पार पहों चाडवाने अहर्निश कटिबद्ध रहे

अहीं केटलीकवार केटलाको अन्यना कार्यो सारी आपे छे तेना माटे अपूर्व पोताना भोगो पण आपे छे, परतु अमुक समये जनसमूहमा ते ते कार्योंने प्रकाशमा लावी कही बताये छे के 'अमुक वखते अमुकनु कार्य में कर्यु हतु' इत्यादि अथवा ते ते कार्यो करी आपी जींदगी सुधी सामानी जींदगीने पोताना गुलाम तरीके करवानो प्रयत्न करे छे केटलाको आ गुणना कार्य नीचे दबाइ जइ अति दु खने अनुभवे छे. अतएव प्रज्ञासिन्धु आचार्य-'गाम्भीर्यधैर्यसच्चिचो' ए पदथी विशिष्टता जणावे छे के-दाक्षिण्यताप्रिय उपकारबुद्धिए अन्यना गमे तेवा कार्यो करी आपे अने गमे तेवा सामाना गुप्तभेदो जाणे तथापि कालांतरे पोताना पर महान् विपत्तिनो समय आवे त्यार पण ते ते करेला उपकारो के कार्योंनी गध सरखी अन्यना कर्ण पर न लावे एटले के आंतरनो भेद

खाले नहीं आवा प्रकारनुं जे वर्तन तेनुं नाम 'गम्भीरता' कहेवाय. आ गम्भीरतावाळो आशय उपरोक्त गुणवनमां जो होय तो ज सत्य दाक्षिण्यपणुं प्रकटयुं कहेवाय अर्थात् गंभीर आशय विशिष्ट दाक्षिण्यपणुं राखनारना हस्ते उपर कहेला जुल्मो के अनर्थो थवा पामे नहीं. गंभीर आशयनुं वर्णन अन्यत्र आ प्रमाणे कर्युं छे—" यस्य प्रभावादाकारा क्रोधहर्षभयादिषु । विकारा नोपलभ्यंते तद्‌गांभीर्यमुदाहृतं " ॥ १ ॥ " जे गुणना प्रभावथी व्यक्तिगत चेष्टाओ अने हृदयना विकारो क्रोध, हर्ष अने भय आदिना अवसरे पण न जणाय तेनुं नाम गाम्भीर्यपणुं कह्युं छे. " गंभीरप्रकृतिवाळो अने परना कार्यो करवामां दाक्षिण्यतावाळो कष्ट, दुःखो के लोकभय अथवा जनापवाद विगेरे आवी पडे तो अन्यना कार्यो करी आपवा माटे पोतानी पीठ घणी वखत फेरवी नाखे अथवा तो वचमांथी पडतां मूके आवो अनुभव आपणने थाय छे अतएव मूलकर्ता भगवान् उपरोक्त गुणवाळो केवो होय तेना माटे फरीने ' धैर्यसचिव ' ए पदथी धैर्यतानी साथे ज दाक्षिण्यना धारनारो अहीं जणावे छे परमार्थ ए के–जेना हृदयनी अविचल वृत्ति एवी होय के–गमे तेवा उपद्रवो आवी पडे तो पण ' न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ' ए नियमानुसारे न्यायमार्गनुं कदापि उल्लंघन करे नहीं, तेमज आरंभेल कार्यो वचमां पडतां मूके पण नहीं. ए रीते गाम्भीर्यता, धैर्यता ए बन्ने पवित्र आशयनी साथे जेमां दाक्षिण्यपणुं होय तो ज तेनुं सत्य दाक्षिण्यपणुं कहेवाय,

अन्यथा ते वन्ने आशय विनानुं दाक्षिण्यपणुं भद्रिक आत्मान मारनारु कातिल शस्त्र जाणवुं आटलुं छता जो पोताथी अधिक गुणावंतनी प्रशंसा–कीर्ति आदिने सहन न करी शके तो, अथवा अन्य लोकोए करेल पोतानी प्रशंसा–गुणस्तुति सहन न करी शके अने मदमा चढी जाय तो उपरोक्त गुण छता पण ते आत्माओ जगतने पर्णा वखत श्रापभूत थाय छे, आथी ज ग्रंथकर्ता फरी–' **मात्सर्यविघातकृत्परम** ' ए चरणथी उपर कथित गुणनी व्याख्यामा वधारो करे छे ' मात्सर्य ' एटले अधिक गुणनी प्रशंसा अथवा स्वगुणनी प्रशंसा श्रवण करीने जे असहिष्णुपणुं अगर अभिमान उद्भवे ते आ दोषने मूलमांथी ज उखेडी नाखी अधिक गुणी परनो प्रेम अथवा पक्षपातवाली जेनी दृष्टि छे, तेमज स्वगुणनो जेने मद न होय एवो उत्कृष्ट पवित्र सुदाक्षिण्यस्वभाव जेनो होय तेनुं नाम ' दाक्षिण्य ' नामे बीजो शुभाशय जाणवो.

उपरोक्त सुगुण यदि पापकार्यो प्रति घृणानी बुद्धि न प्रगटे तो दर्गुणपणे परिणामे, अने जेन लोको छलप्रपंच के मारवणीयावालो आ गुण माने छे तेवा रूपमा ज आ गुणनी व्याख्या पर्यवसित थाय, तेम ज पापकार्यो प्रति तिरस्कारदृष्टि विनानो उपरोक्त गुण नकामो ज गण्यो छे, माटे क्रमप्राप्त "पापजुगुप्सा" नामे त्रीजा गुणनुं वर्णन ग्रंथकार करे छे

पापजुगुप्सा तु तथा
सम्यक्परिशुद्धचेतसा सततम् ।

'पापद्वेगोऽकरण
तदचिन्ता चेत्यनुक्रमतः ॥ ४-५ ॥

मूलार्थ—' पापजुगुप्सा ' एटले पापनो त्याग अर्थात् यथार्थ शुद्धचित्तवडे निरंतर पूर्वे करेल पापकार्योनी वारवार निन्दा भाखवी, अने वर्तमानकालमा पापो नहीं करवा तेम ज भविष्यकालना पापकार्योना कदापि विचार करवो नहीं, अथवा अनुक्रमे कायाथी पापो आचरवा नहीं, वचनथी करवा नहीं अने मनथी चिंतववा नहीं ए प्रमाणे ' पापजुगुप्सा ' नामे त्रीजुं धर्मतत्त्वनुं लिंग जाणवुं

"स्पष्टीकरण"

अहीं धर्मतत्त्वना बे लिंगो कह्या पछी त्रीजुं लिंग ' पापजुगुप्सा ' नामे जणाय छे ' पापजुगुप्सा ' ए पदमा पाप अने जुगुप्सा ए बे शब्दो छे, तेथी पाप एटले दुष्ट व्यापारो जेवा के—चोरी, जूठ, हिंसा, मैथुन आदि तेनी जुगुप्सा एटले निन्दा, पश्चात्ताप, खेद, फरी नहीं करवा माटेनी धारणाओ करवी अर्थात् अतीतकालमा पोताना आत्माए जे जे पापकार्यो कर्या होय तेने याद करी वारवार पश्चात्ताप करवो, जेथी पोताना आत्मा भविष्यमा फरी तेवा कार्यो करवा ललचाय नहीं. आ स्थले टीकाकार ' पापजुगुप्सा ' एटले 'पापपरिहाररूपा' पापनो त्याग करवो एवो अर्थ कर छे. परमार्थ ए के—करेल पापनो पश्चात्ताप एवो करवो के भविष्यमा

छे. "लोभमूलानि पापानि" ए नीतिवाक्य यथार्थतया सुघटित थाय छे. आ माटे ज उपमितिमां कह्युं छे " पापानां कथयाप्यल " " पापोनी वार्ता करवाथी पण पाप बधाय छे " पापकार्योमां कोइ अजब एवी जादुइ शक्ति छे के-जेम भूत-डाकणनी सामे स्निग्ध दृष्टिए देखवा मात्रथी देखनारने ते वळगे छे तेम पापो पण तेने याद करनारने वळगे छे आ हेतुथी ग्रथकार कहे छे के-तेना चिन्ता पण कोइ समये करवी नहीं ए रीते कालत्रयपण पापोनी सामे तिरस्कारनी दृष्टिथी देखवु अर्थात् सर्वथा पापोना उपेक्षा करवी अथवा अन्य प्रकार टीकाकार ' पापजुगुप्सा ' ए पदनी व्याख्या करे छे कायार्थी पापनो त्याग करवो एटले कायाथी स्वय पापो सेववा नहीं अने वचनथी पापो करवा नहीं, तेमज मनथी पाप करवानो विचार सरखो पण करवा नहीं, ए रीते अनुक्रमे काया, वचन तथा मन ए त्रण योगथी पापोनो त्याग करवो आ प्रमाणे ' पापजुगुप्सा ' नो गुण प्रगटे एटले प्रथमना ' औदार्य ' अने 'दाक्षिण्यता' ए बन्ने गुणो योग्य रीते सार्थक गणाय. अहीं आगल आगळना गुणो उत्तर उत्तरना गुणो साथे निकट सबध धरावे छे एटले उत्तरना गुणो प्रगटवाथी उपरना गुणोमा वधारे तात्त्विकता आवे छे अहीं ' धर्मतत्त्वना ' ना गुण तरीके ' पापजुगुप्सा ' नामे जे त्रीजो गुण वर्णव्यो छे तेनो अर्थ ' कालत्रयपणे अथवा त्रिकयोगथी सर्वथा पापनो अभाव करवो ' एवो न करवो, किन्तु जे जे मोटा पापकार्यो

होय तेना पर अप्रेमभाव–नहीं सेवन करवानी बुद्धि ए ज अर्थ जाणवो, अन्यथा सर्वथा पापनो अभाव तो शैलेशीकरणना अन्तिम समयमां ज थाय छे

प्रथम 'पाप' आदिनुं यथार्थ स्वरूप समजवामां न आव्युं होय तो 'पाप' नी गर्हा केम बने ? तथा समजण विनानी निन्दा पण घणी वार अधिक पापबंध करावनारी बने छे तेम ज शास्त्रवचन पण 'ज्ञात्वा' आदि वाक्योथी प्रथम तो ज्ञाननी जरुरीयात स्वीकारे छे, अतएव 'पापजुगुप्सा' ए गुणनी अधिक दृढता करनारो चतुर्थ गुण 'निर्मलबोध' नामे शास्त्रकर्ता दर्शावे छे

> निर्मलबोधोऽप्येवं
> शुश्रूषाभावसंभवो ज्ञेयः ।
> शमगर्भशास्त्रयोगा–
> च्छ्रुतचिन्ताभावनासारः ॥ ४–६ ॥

मूलार्थ—'निर्मलबोध' एटले शुद्धबोध, शम–शान्तिरसप्रधान एवां जे शास्त्रो तेने श्रवण करवानी इच्छाथी ज आ निर्मलबोध–शुद्धबोध प्रगटे छे अर्थात् वैराग्य, प्रशम आदि रसोनुं पोषण करनार शास्त्रद्वाराए जे बोध प्रगट्यो होय ते 'निर्मलबोध' नामे चोथुं धर्मतत्त्वनुं लिंग जाणवुं.

आ 'निर्मळबोध' श्रुतसार १, चिन्तासार २ अने भावनासार ३ एम त्रण प्रकारनो होय छे

" स्पष्टीकरण "

'निर्मलबोध' एटले विमलबोध अर्थात् जे ज्ञानमा अज्ञाननो–विकारभावनो मल न होय, कारण के बोध बे प्रकारनो होय छे एक तो व्यवहारिक तत्त्वनो अने बीजो धार्मिक तत्त्वनो व्यवहारिक तत्त्वनो बोध केवल उपाधि वधारनार अने समारंभादि वधारनार होवाथी शास्त्रकारोए तेने अशुद्ध बोध कह्यो छे धार्मिक तत्त्वनो बोध पण बे प्रकारनो कह्यो छे. जेमा राग, द्वेष के अज्ञानताथी आग्रहविशिष्ट पुरुषोना वाक्यो होय एवा शास्त्रो श्रवण के अभ्यास करवाथी जे बोध उद्भवे ते, अने वीतरागकथित केवल त्याग–वैराग्य समरसने ज पोषनारा शास्त्रो श्रवण तथा अभ्यास करवाथी जे ज्ञान उद्भवे ते आ बे प्रकारना बोधमा प्रथमनो बोध आत्माने खोटा मार्ग पर लइ जनार होवाथी सर्वथा उपेक्षा योग्य छे, तथा बीजा बोधमा पण वीतरागना नामे द्वेषादि उत्पन्न करनारा तथा आग्रही पुरुषोना कहेला जे जे वचनो होय ते पण उपेक्षाने ज पात्र छे आ हेतुथी ज ग्रंथकारोए मूलमा सामान्य 'बोध' ए पद न मूकता "निर्मलबोध" ए विशिष्ट पद मूक्यु छे अने टीकाकारे तेनी व्याख्या 'विमलबोध' एवी करी छे भावार्थ ए के–'विगत' मल यस्मात् स

विमलबोध 'जेमाथी मल विशेषपणे गयो छे एवो जे बोध ते विमलबोध जाणवो आ विमलबोधनी प्राप्तिनो मार्ग शास्त्रकर्ता 'शुश्रूषाभावसम्भवः' ए वाक्यथी जणावे छे' 'श्रोतु इच्छा शुश्रूषा' 'शास्त्रो श्रवण करवानी इच्छा' शास्त्रोना श्रवण विना अभ्यास न थाय तेम ज बोध पण न ज बने, माटे अहीं शास्त्रश्रवणभाव 'विमलबोध' प्राप्तिनो मार्ग कह्यो आ इच्छा परम अने अपरम ए बे प्रकारे वर्णवी छे. जे शास्त्रश्रवण करवामा विनय, भक्ति, आदर अने श्रद्धा होय ते परम, तथा जे कुतूहल, मान आदिनी बुद्धियी श्रवण कराय ते अपरम इच्छा आनु विशिष्ट स्वरूप ग्रंथकर्ता एकादश षोडश प्रकरणमा कहवाना छे एटले अहीं अमे विशेष नथी जणावता 'निर्मलबोध' नामे गुण क्या शास्त्रो श्रवण करवाथी उद्भवे ते ग्रंथकर्ता जणावे छे 'शमगर्भशास्त्रयोगात्' जे शास्त्रामा प्रशम, वैराग तथा त्यागभावनु स्वरूप यथार्थतया वर्णव्यु होय तेवा शास्त्रो श्रवण करवाथी श्रोताना हृदयमा 'निर्मलबोध' गुण प्रगटे छे, कारण के अन्यथा प्रकारना शास्त्रो श्रवण करवाथी मलिन वासनाओनु अधिक पोषण थाय माटे विमलबोध इच्छकोए केवल शृगार, वीर के हास्यरसने बतावनार शास्त्रो सामलवा नहीं आ 'निर्मलबोध' श्रुतसार, चिन्तासार अने भावनासार एम त्रण प्रकार कयो छे आ त्रणेनु स्वरूप अने प्रत्येकनी भिन्नता शास्त्रकर्ता ■ आगल विस्तारथी दर्शावशे. नितान्त अहीं समजवानु

एटलु छे के—आ ' निर्मलबोध ' गुणनी जागृति थया पछी ' पापजुगुप्सा ' नामे त्रीजा गुणनु स्वरूप बराबर ख्यालमा आवी शके छे अने तेने प्रवृत्तिमा योग्य रीते मूकी शकाय नितान्त ए गुण माया रहितपणे शुद्ध तात्त्विक भावनाने पामी शके छे अतएव ग्रन्थकर्ताए ' पापजुगुप्सा ' नी अनतर उपरोक्त ' निर्मलबोध ' नामे चतुर्थ गुण बताव्यो

प्रथम दर्शावेल औदार्य, दाक्षिण्य, पापजुगुप्सा अने निर्मलबोध ए गुणना अभावथी ज लोकनिन्दा, अपयश, मानहानि, अपकीर्ति आदि दुर्गुणो आत्माने लागु थाय छे अने ते गुणो आव्या पछी आ दुर्गुणो सत्वर नाश पामे छे. परमार्थ ए के—उपरोक्त चतुर्गुणी आत्मा अवश्य आदेयवाक्य तथा जनप्रिय बने, माटे अहीं ग्रथकर्ता उपरना चार गुणोनु कथन कर्या पछी तेना ज फलरूप ' जनप्रिय ' नामे पाचमु धर्मतत्त्वनु लिंग सातमा श्लोकमा दर्शावे छे.

अथवा प्रथम कथित चतुर्गुणी आत्मा थया पछी पण यदि तेनी वर्त्तलीक प्रवृत्ति लोकोने रुचे तेवी न होय, अगर औचित्यता, विनय, नम्रता के सभ्यजनपणु न होय तो प्रथमना चारे गुणो धर्मतत्त्वनु बराबर कार्य साधवामा निष्फल बने. आ हेतुथी पाचमु ' जनप्रिय ' नामे लिंग दर्शावे छे.

युक्त जनप्रियत्व

शुद्ध तद्धर्मसिद्धिफलदमलम् ।

धर्मप्रशसनादे-
बीजाधानादिभावेन ॥ ४-७ ॥

मूलार्थ —पोते आचरित धर्मनी लोको प्रशसा करे, तेमज अन्य लोको तेनु अनुकरण करे जेथी अनुक्रमे पुण्यानुबधीपुण्यरूप फल धर्मीजनने प्राप्त थाय, अर्थात् आ रीते अतिशे पोते करेल धर्मसिद्धिनु फल जेनाथी प्राप्त थाय छे एवु शुद्ध-निर्मल अने योग्य 'जनप्रिय' नामे पाचमु धर्मतत्त्वनु लिंग जाणवु.

" स्पष्टीकरण "

ग्रथकर्त्ता शरुआतमा ज 'जनप्रिय' नामे धर्मतत्त्वनु लिंग बराबर उचित ज छे एम 'युक्त' पदथी जणावे छे, पण अनुचित नथी एवु भार मूकीने जणावे छे, कारण के खरो 'जनप्रिय' ते ज होइ शके के दम विना धर्माचरण करतो होय तथा लोक निंदे तेवु आचरण न करतो होय 'जनप्रिय' थवाना कारणो आ प्रमाणे कह्या छे प्रथम 'जनप्रियपणु' दाभिक जूठ-कपटभावथी उपजावेलु न होवु जोइए, केमके घणा लोको जनतामा पोतानु मारु देखाडवा माटे अने सर्वने प्रिय थवा सारु अनेकधा खोटी मीठाशो तथा असत्य कपटभावो आदिने सेवे छे. आ हेतुथी ज श्लोकमा 'शुद्ध' ए विशेषण आप्यु छे एटले जे 'जनप्रिय'पणु राग द्वेष विनानु-अने दभ रहित निर्मल होय ते ज अहीं आपे-

सिक छे. आथी मनुष्यो ज परिणामे स्व तथा परने अल्प धर्मसिद्धिना फलने अर्पण कर छे. निदान ए के–दम भ्रं शुठवर्तन वगरना मनुष्यो जे काइं अल्प पण धर्म आचरे निर्मलभावथी करे छे, आथी तेओ थोडा धर्माराधनथी प घणा ज फलने पामे छे, तथा अन्य आत्माओ तेवाओनी क्रि देखी प्रशंसा–अनुमोदना करी अथवा ते ते क्रियाओ तेओ स्वी कारे छे एटले उत्तम नथी धर्म ज पामे छे, कारण के यद्यदाचरति श्रेष्ठ , तत्तदेवेतरो जनः। स यत् माणं कुरुते, लोकस्तदनुवर्तते ॥ १ ॥ "प्रतिष्ठित ज जे जे कार्योने आदरे ते ते कार्योनुं अनुकरण इतर–प्राकृत कर, तथा तेओ जेने प्रमाणतया माने तेने ज इतरजनो अ सरे " सामान्यत अल्पज्ञजनो पोतानाथी अधिक बुद्धिमान कार्यो तरफ वधारे विश्वास राखे छे हेतु ए छे के–तेओ विशेष बुद्धि, हिम्मत अने लाभालाभनो विचार करवा शक्ति अल्प होय छे, तथा बहुधा आवा लोकोनी दृष्टि अन्य अनुकरण करवानी वधार टेवायेली होय छे एटले अन्य अनुमोदनीय कार्यो अवलोकी आवा लोको पोतानी स मतिथी तेनुं अनुमोदन करी तेना उचा कार्योमां धर्ममि पाछल पाछल थोडी थोडी गति कर ने परिणामे अल्पज्ञ पण उत्तम जनोना वर्तनना आधार पोतानुं हित परंपराए सिद्ध कर छे अतएव उपदेशको, गुरुजनो अने प्रख्यात कीर्तिनायको माटे शास्त्रकर्ताए कथन कर्युं छे के यदि आ लोको जो थोडुं

पण विपरीत आचरण करे तो तेओ अनंत दुःखना भागी बनवा साथे असंख्य लोकोने अनंत दुःखना भागी बनावे छे, माटे उपदेशक गुर्वादिकोए तेवु वर्तन करवु के जे स्वपरने हितावह होय निदान ए के—उपरोक्त जनप्रियपणानी प्राप्ति अर्थे शुद्ध निर्विकारी वर्तन अने धार्मिक निर्मल क्रियाओ करवी, तथा अन्य सामान्य जनो सदाचारी धर्मीलोकोना वर्तननी प्रशंसा करी पोताना आत्माने अनुक्रमे धर्मी बनावे छे एवु समजी गुर्वादिको पोतानी महत्तानी जोखमदारी बराबर ख्यालमा लइ पोताना चारित्रने उच्चतर बनावे, कदापि दोष लागवा दे नहीं, एटले धर्मप्रशंसा धर्मीजनो अने इतरजननी हृदयभूमिमा धर्मबीजनी उच्च शुद्ध वावणी करे छे एम वावणी थया पछी जेम बीज उत्तम भूमिमा पड्या पछी अनुकूल वायु अने जलवृष्टिना संयोगद्वाराए पत्र, पुष्प तथा फलादिने उपजावे छे तेम अहीं धर्मप्रशंसा नामक बीज पण परिणामे स्व परने मोक्षरूप फल आपनारु थाय छे अने मूलमा कहेल "धर्मप्रशंसादे" ए पदनी टीकामा उपाध्यायजी आदि पदथी धर्म करवानी इच्छा, इच्छानो अनुराग, धर्मना उपायो शोधवा, धर्ममा प्रवृत्ति करवी गुरुसंयोग मेळववो अने छेवटे सम्यक्त्वनी प्राप्ति एटली वस्तुओ सूचवे छे आटला पदार्थो आदि पदथी लेता धर्मप्रशंसाने बीजनी उपमा सुष्ठुतया लागु थाय छे अन्यथा तेने बीजपणो घटाववाना कल्पनानो आश्रय लेवो पडे छे, तेमज मूलकर्ताए आपेल आदि पद पण

सार्थक बने छे यशोभद्रसूरिजीए आदि पदनी व्याख्याने टूकामां नाखी छे तेनु कारण एटलु ज के विस्तारमा न उतरवु.

फरी मूलना "बीजाधानादि" ए पदनी टीकामा आदिपदथी अकुर, पत्र, पुष्प अने फल ए चार पदार्थो सूचित कर छे अकुरादिनु स्वरुप ललितविस्तरामा आ प्रमाणे छे-" वपन धर्मबीजस्य, सत्प्रशसादितद्गतम्। तच्चिंताद्यकुरादि स्यात्फलसिद्धिस्तु निर्वृतिः ॥१॥ चिंतासच्छ्रुत्यनुष्ठान-देवमानुषसपद। क्रमेणाकुरसत्काड-नालपुष्पसमा मताः" ॥ २ ॥ " सत्पुरुषोनी प्रशसा ते बीज, धर्मनु चिंतवन-विचार करवो ते अकुर विगेर अने सिद्धिनी प्राप्ति ते फल" अथवा-" धर्मनु चितवन ए अकुर समान, धर्मनु श्रवण करवु ए राडा समान, धर्मनु आचरण ए नाल समान तथा परपराए ते धर्मसाधनथी देव, मनुष्यनी सिद्धि पामवी ए पुष्पतुल्य मानेल छे " मोक्ष ते फलतुल्य जाणवु अहीं बीज बे प्रकारनु होय छे जेने रोपवाथी फलादि प्राप्त थाय ते अने जेने रोप्या पछी निष्फल जाय ते, तेम 'धर्मप्रशसा' नामक बीजमा पण अद्भुत शक्ति होवाथी उत्तरोत्तर फल विगेरे प्राप्त थाय छे, कारण के-आ 'धर्मप्रशसा' ने शास्त्रकर्ता पुण्यानुबधीपुण्यनु कारण कहे छे. "पुण्यमनुबध्नातीत्येव शीलमिति पुण्यानुबंधि तच्च तत्पुण्य च पुण्यानुबधिपुण्य ॥" जे पुण्य कर्या पछी अनुक्रमे पुण्यकर्मोनो प्रवाह चाल्या करे, यावत् जे पुण्य

सर्वथा कर्मोनी निर्जरा करावी पछी ज आत्माथी अलग थाय आ प्रमाणे पुण्यानुबंधी पुण्यपन्नी व्याख्या करी छे, एटले धर्म अने सदाचारनी प्रशसा करवाथी प्रशसा करनार उत्तरोत्तर पुण्यकार्योनी परपरा ज हस्तगत करे छे आ ज हेतुथी सूरिजीए शुद्ध एवा ' जनप्रियत्व ' नामक पाचमा गुणने धर्मसिद्धिना फल आपनार तरीके वर्णव्यो पुण्यानुबधीपुण्य माटे ज हरिभद्रसूरीश्वरजी वदे छे के–" शुभानुबन्ध्यतः पुण्य, कर्तव्य सर्वथा नरैः । यत्प्रभावादपातिन्यो, जायते सर्वसपदः " ॥ १ ॥ सुदर महेलमा रहनार अधिक सुन्दर महेलमा निवासार्थ जाय तेम ज पुण्यना प्रभावथी मनुष्यो उत्तरोत्तर अधिक समृद्धियोने पामे छे. अतएव गुणानुबधी एवु पुण्य भविक आत्माओए सर्वथा उपार्जन करवु उचित छे, कारण के ए ज पुण्यना प्रभावथी नाश नहीं पाम नारी एवी सर्व सपत्तियो प्राप्त थाय छे. " पुण्यानुबधीपुण्यना कारणो ग्रथकर्ताए अष्टकमा आ प्रमाणे कथा छे–" दया भूतेषु वैराग्य, विधिवद्गुरुपूजनम् । विशुद्धा शीलवृत्तिश्च, पुण्य पुण्यानुबन्ध्यदः " ॥ १ ॥ एकेंद्रियथी पचेंद्रिय पर्यंत जीवोपर दया, वैराग्य, विधिपूर्वक गुरुजनोनी पूजा, विशुद्ध एटले पवित्र सदाचारो–आ कारणोथी पुण्यानुबधीपुण्य बधाय छे "

ए रीते परपराए धर्मसिद्धि अने तेना फलो आपनारी ' जनप्रियत्व ' नामे पाचमो गुण ' धर्मतत्त्व ' ना लक्षण

र्शाके योग्य अने सुसबद्ध थयो भावार्थ ए के–उपर कहल चारित्रवंतनी क्रियाओ प्रशंसापात्र थवाथी सदाचारी शुद्ध-वर्तन होवाथी लोकोने हानि न थाय तेवी प्रवृत्ति आदरवाथी हास्य अने निंदा न थने तेवु आचरण करवाथी पोते 'जन प्रिय' बनवा साथे परने अनुकरणीय चारित्रद्वारा स्वपर उभयने धर्मसिद्धिकारक बने छे अतएव आ लक्षणथी धर्म पामेल धर्मी आत्मामां 'धर्मतत्त्व' नी प्राप्ति थइ छे के नहीं एनु अनुमान सुंदर रीते करी शकाय छे

उपर कह्या प्रमाणे 'धर्मतत्त्व' ना पाच लक्षणो पाच श्लोकथी ग्रंथकर्ताए विस्तारथी बताव्या, ते परथी तेनु स्वरूप समजाव्या पछी निर्को कोइ पण आत्मा धर्मीओनी परीक्षा करवा जरुर समर्थ थाय एमा संदेह नथी, तथापि विशिष्ट परीक्षा माटे फरी ग्रंथकर्ता तेना धर्मी आत्मामां विशिष्ट दोषो जेवा के विषयतृष्णा विगेरेनो जरुर अभाव होय ते समजाववा माटे दृष्टांतपूर्वक आदि दोषोनु विस्तृत स्वरूप दर्शावे छे—

आरोग्ये सति यद्वद्
व्याधिविकारा भवन्ति नो पुसाम् ।
तद्वद्धर्मारोग्ये
पापविकारा अपि ज्ञेया ॥ ४–८ ॥

मूलार्थ—आरोग्यता–रोगनो अभाव थया पछी जेम मनुष्यने कोइ पण व्याधि संबंधी विकारो उद्भवता नथी

तेमज धर्म सबंधी आरोग्यता मल्या पछी पापरूप विकारोनो जन्म थतो नथी.

"स्पष्टीकरण"

आरोग्यता एटले तंदुरस्तीपणु, रोगनो अभाव, एटले तंदुरस्तीपणामा व्याधिओ जन्मे तो तंदुरस्तीपणु न कहेवाय, कारण के तंदुरस्तीपणु तथा व्याधियो ए बनेने परस्पर प्रतिबधक प्रतिबध्यभाव छे, ते ज प्रमाणे प्रथम जणावेल पाच लक्षण विशिष्ट 'धर्मतत्त्व' पाम्या पछी पापविकारो जेनु स्वरूप ग्रथकर्ता नीचे जणावे छे ते कदापि उद्भवे नहीं अर्थात् ए पापविकारोना बध करनार उपरोक्त धर्मतत्त्वरूप आरोग्यता जाणवी. आ श्लोकना पूर्व भागमा ग्रथकर्ताए दृष्टात आप्यु अने उत्तरभागमा दार्ष्टान्तिकनी घटना करी छे परमार्थ ए के—आरोग्यतानी सामे धर्मारोग्यता अने व्याधिओनी सामे पापविकारो ए प्रमाणे दृष्टांत दार्ष्टान्तिकनी घटना समजवी

धर्मतत्त्वना प्रभावथी जे जे पापविकारोनो नाश थाय अथवा उद्भवे नहीं तेनु स्वरूप ग्रथकर्ता विस्तारथी दर्शावे छे.

तत्रास्य विषयतृष्णा
प्रभवत्युच्चैर्न दृष्टिसम्मोहः ।
अरुचिर्न धर्मपथ्ये
न च पापा क्रोधकण्डूतिः ॥ ४–९ ॥

मूलार्थ—आ धर्मतत्त्व पामेल मनुष्यने अतिगाढ विषय-तृष्णा उद्भवती नथी तेमज दृष्टिसमोह पण पराभव करी शक्तो नथी, अने धर्मरूपी पथ्य पर अरुचि आवती नथी, एव पापीष्ट क्रोधनी खुजलीओ के जेनाथी धर्म-धननो नाश थाय ते पण आविर्भाव पामती नथी

" स्पष्टीकरण "

आ श्लोकथी मूलकर्ता धर्मतत्त्व पाम्या पछी तेना प्रभावथी शुभ आत्मान थया थया पापविकारो उद्भवता नथी तेनो केवल नामनिर्देश दर्शावे छे, कारण के नाम निर्देश कर्या पछी विशेष स्वरूप कहेवाना सुगमता थाय उपर धर्मतत्त्वना प्रभावथी पाच विशिष्ट गुणोनो लाभ थाय एवु विधिमुखे प्रतिपादन कर्यु, हवे निषेधमुखे दोषो न उद्भवे ते अहीं जणावे छे जो के गुणप्राप्ति जणाव्या पछी दोषाभाव थवानु अर्थापत्तिथी ज लभ्य छे, एटले फरी दोषाभावनु स्वरूप कहेवु शब्दत परीक्षा जेवु ज गणाय, परतु अहीं विशिष्टता आ समजवी के ज्या गुण अने दोषोनो परस्पर प्रतिबन्धक प्रति-बध्यभाव सुघटित होय त्या ज उपरोक्त न्याय लागु थाय दृष्टान्त तरीके शील अने व्यभिचार, दान तथा कृपणता विगेरेने तथाप्रकार अहीं पण उपरोक्त पाच गुणो अने आगल कथन कराता पापविकारोने परस्पर प्रतिबधक प्रतिबध्यभाव नथी, अर्थात् उपरोक्त गुणप्राप्ति थया पछी गुण आगल कथन कराता पापविकारो जागृतिने पामे छे. अतएव ग्रथकर्ताए ' दोषाभाव ' स्वरूप व्यतिरेकमुखथी विस्तृतया भवाभिनन्दो

स्पष्ट कथन कर छे अन्यथा आ 'दोषाभाव' नु भिन्न स्वरूप दर्शाववानी जरुर नथी आ पापविकारो गाढ विषयतृष्णा १ दृष्टिसमोह २, धर्मपथ्यमा अरुचि ३ अने क्रोधकण्डूति ४ जाणवा आ चार विकारोनु विशेष स्वरूप ग्रंथकर्ता पोते ज विस्तारथी दर्शावशे एटले अमे अहीं नाममात्रनु ज सूचन कर्यु.

प्रथम विषयतृष्णानु लक्षण जणावे छे.

गम्यागम्यविभाग
त्यक्त्वा सर्वत्र वर्तते जन्तु ।
विषयेष्ववितृप्तात्मा
यतो भृश विषयतृष्णेयम् ॥ ४–१० ॥

मूलार्थ—शब्द, स्पर्श, रस, रूप अने गध ए पाच विषयो छे आ विषयोथी जेओनो आत्मा सतोष नथी पाम्यो तेवाओ गम्य अने अगम्यना विवेक विचार्या वगर चार तरफ फाफा मारे छे माटे अन्य विषयवासनानी अपेक्षाए आ गाढ तृष्णा भान भूलावनार होवाथी आनु नाम विषयतृष्णा नामे पापविकार विद्वानोए कह्यो.

" स्पष्टीकरण "

विषयतृष्णा नाम प्रथम पापविकारनु स्वरूप अहीं जणावे छे तेमा ससारात अगे विषयेच्छानो सर्वथा अभाव मानवो अशक्यनीय छे अनादिनी उदयगत विषयेच्छा पूर्ण करवाने ज ससार ससारीओ रचे छे, आथी अहीं

विषयतृष्णाने वे विभागमा वहेंची शकाय' एक साधारण विषयतृष्णा अने बीजी अगाधारण अतिविषयतृष्णा अत्रपि बन्ने विषयेच्छाओने पाप ज मानी छे तदा जे विषयेच्छानी पूर्णता करवाने आत्मा पोतानो विवेक अने मर्यादा तोडवापर्यंत नीची दशामा उतर नहीं तेमज इस्लोक परलोकना अकार्योथी सभयपणे प्रवृत्ति आदर तेने साधारण विषयतृष्णा जणावी पापविकारना लक्षणथी वहिभूत माना छ, कारण के आ विषयेच्छा व्रतधारी जैना तथा सम्यक्त्वधारी आत्माओ पण एकाएक त्यागी शकता नथी अने परिणामे स्वहित साधवाने समर्थ थाय छे सम्यक्त्व पाम्या पछी भरतचक्रवर्ती चोसठ हजार राणीयो साथे भोगविलास करता हता चेडाराजा, उदायी महाराज, कृष्णवासुदेव अने श्रेणिकराजा विगेरना दृष्टांतो शास्त्रमां प्रसिद्ध छे परमार्थ ए के–धर्म अने आत्महितनु साध्य भ्रष्ट न थवु जोइए आ विषयेच्छा पण आसक्ति अने अनासक्ति भेदोथी वे प्रकारनी जाणवी तीर्थंकर विगेरना जीवो मति श्रुत-अवधिज्ञानवत छतां जे अमुक वर्षो पर्यंत गृहवासमा रही राजभोग, भोगविलासो सवता हता ते मात्र उदयगत कर्मोना फलोनी विचित्रता जाणीने तेना अनुभवार्थे ज भोगवता अर्थात् अनासक्तिपणे रहा हता अने ज्यार कर्मोदय शात थयो एटले तुरतन वस्त्राचले लागेल तृणनी माफक सर्व भोगनो त्याग करता तेमज नेमनाथप्रभुए कर्मोदय न होवाथी गृहवास सेव्यो नहीं, ए ज अनासक्त विषयेच्छानी अवधि जाणवी वासुदेव,

चक्रवर्ती अने राजाओ विगेरे धर्मस्वरूप जाण्या पछी, प्रन अने समकित पाम्या पछी जे विलासादि सेवता ते अनासक्ति नहीं किन्तु आसक्ति ज हती आ परथी समजवानु के जेओ निश्चयनी वातो करी, अध्यात्मनो डोळ घाली, तिथि के अतिथि, रात्रि के दिवस, खाद्य के अखाद्य, गम्य के अगम्यनो विचार वाजु पर मूकी विषयेच्छाओ–तृष्णाओ पूर्ण करवामा ज लीन बनी, अन्यने अमने आसक्ति नथी, मात्र कर्मोदयना लीधे ज आ अमारी प्रवृत्तिओ चालु छे, जो आसक्तिपूर्वक चेष्टा होय तो ज पुन कर्मनो बंध थाय अतएव जिनेश्वरोए शास्त्रमा अध्यवसाए बन्ध मान्यो छे ए प्रमाणे समजावे छे तेओ प्रति अहीं अमे विशेष नथी कहेवा मागता; पण आ लोकोए उपरना भेदो विचारवा तेमज पोतानी चेष्टाओ अनासक्तिपणानी छे (!) ए वात उपर दर्शित स्वरूपनी साथे विचारवी जेथी भेवडा पापथी पोताना आत्माने बचावी लेवाय

अने चालु श्लोकमा केवळ अतिविषयतृष्णानु स्वरूप ग्रथकर्ता जणावे छे, के विषयेच्छाना बलथी कोइ पण आत्मा मूढ अने विवेकमर्यादा रहित थाय. "कामान्धा न पश्यन्ति" ए न्याये कामीजनो काइ पण जोइ शके नहीं, एव परिणीत, अपरिणीत, बालविधवा, कन्या, रंडा तथा वेश्या गमे त्या गमन करे, स्वजाति तथा परजातिनो पण विचार जे करे नहीं, रात्रि–दिवसनो विभाग, तिथि–अतिथिनो विभाग पण जे जाळवे नहीं, नितान्त

चेल मनुष्यने धर्मना साधनो तथा धर्म क्याथी उपलब्ध थाय ? हेतु ए के–तेने स्वप्ने पण स्वहितनो विचार आववो अशक्य छे

आ स्थले रावणनु चरित्र हितार्थिने मनन करवा जेवुं छे रावण एक समर्थ राजाधिराजनु पद धारवा साथे विधाताने पण टकोर करनार महाप्रज्ञाशाली हतो. जेना बुद्धि–चातुर्य आगल बृहस्पति सरीखाओ पण सेवक समान मनाया हता, जेना दक्षता अने बलिष्ठता पासे दैत्यो तथा राक्षसो थरथर कंपित थता हता, जे नीतिशाली होइ प्रजानु वात्सल्यभावथी पालन करतो हतो, आवो समर्थ अने चतुर छता ज्यार सीता प्रति तेनु मन ललचायु त्यारे ते सर्व भान भूली गयो, स्वस्त्री के परस्त्री, कार्य के अकार्यनो विचार रह्यो नहीं, नितान्त तेना ज पापना दुर्बळ थवा लाग्यो छेवटे पापनो, अनीतिनो, लोकलज्जानो, अपकीर्त्ति विगेरेनो भय त्याग करी सीताने पोतान त्या उठावी लाव्यो अने तेनी साथे पोतानी वासना तृप्त करवाने घणाये गोथा खाधा. अतपा वासना पूरी थइ नहीं, कोइनु मान्यु नहीं, सर्वथा भ्रष्ट थयो अने पोतानी पाछळ जगत पर सदाने माटे अपकीर्तिनो पुंज राखी गयो

आ सर्व स्थितियो उपर कहेल अतिविषयतृष्णानुं ज कार्य समजवु. अतएव ग्रंथकार आ तृष्णाने ' पापविकार ' गणी धर्मी आत्मामा आनो अभाव जणावे छे, तेम ज खास श्लोकमा जणाव्यु छे के–' विषयेष्ववितृप्तात्मा ' आ

तृष्णाना उदयथी समर्थ आत्मा पण सर्वदा विषयोमा अतृप्त ज रहे छे, एटले गमे तेवा सुन्दर अप्राप्य अने अलौकिक भोग्य पदार्थो उपलब्ध थाय तो पण अन्य अन्य विषयो मेळववाने अभिलाषा ज रहे छे. आ हेतुथी ज आ तृष्णा त्याज्य गणी अने आ तृष्णाना उदयमा उपरोक्त 'धर्मतत्त्व' पामवो दुर्लभ बताव्यो.

हवे दृष्टिसमोह नामे बीजा पापविकारनु स्वरूप प्रगट करे छे.

> गुणतस्तुल्ये तत्त्वे
>
> संज्ञाभेदागमान्यथादृष्टिः ।
>
> भवति यतोऽसावधमो-
>
> दोष खलु दृष्टिसमोह ॥ ४-११ ॥

मूलार्थ—जेनु फल एक सरखु होय एवा बे तात्त्विक पदार्थो छे, छता बन्ने पदार्थोने नामभेदथी अथवा पोतपोताना आगममा बतावेल प्रकारथी अन्यथापणे माने एवा प्रकारनो दोष जेना बलथी प्रगटे तेने निश्चयतया विद्वानो '**दृष्टिसमोह**' नामे बीजो पापविकार माने छे.

" स्पष्टीकरण "

प्रथम पापविकार 'विषयतृष्णा' जणावी हवे 'दृष्टिमोह' नामे पापविकार जणावे छे अहीं 'विषयतृष्णा' ना स्वरूप पछी 'दृष्टिसमोह' नु स्वरूप कथन कर्यु पण प्रथम

'दृष्टिसमोह' नु अने त्यारबाद विषयतृष्णानुं स्वरूप एवो अनुक्रम केम न जणाव्यो ? ए प्रश्न सहजतया पेदा थाय छे उत्तरमां समजवानुं के—जे अहीं चार पापविकारो जणाव्या तेमां उत्पत्तिक्रमनी अपेक्षाए विचार करीए तो प्रथम क्रोधक वृत्ति, बीजो धर्मश्रद्धामां अरुचि, त्रीजो दृष्टिसमोह अने चतुर्थ विषयतृष्णा ए प्रमाणे पापविकारो उपजे छे क्रोधथी धर्मना अरुचि, अरुचिथी दृष्टिनो मोह अने दृष्टिमोह थया पछी विषयेच्छा प्रगटे—आ क्रम छतां ग्रंथकर्ताए यथाप्राधान्य न्याये एटले सर्वथी प्रधान पदार्थोनो प्रथम त्याग करवो अने पछी प्रधान प्रधाननो अनुक्रमे त्याग करवो ए रीति स्वीकारी छे

मूलना 'दृष्टिसमोह' नामे पदनी टीकामां—" दृष्टिः **दर्शन—आगम' जिनमत तत्र समोह समूढता अन्यथोक्तस्यान्यथा प्रतिपत्ति दर्शनसमोहः "** " दर्शन एटले आगम—जिनमत तेमां मूढता अर्थात् आगममा कहेल वस्तुने अन्यथापणे स्वीकारवी तेनुं नाम दर्शनसमोह जाणवुं " ए प्रमाणे कह्युं छे आथी दृष्टि एटले मान्यता—वस्तुप्रतिपत्ति तेमां मतिनी व्याकूलता ते ज दृष्टिमोहनुं खरुं स्वरूप समजवुं अहीं दृष्टिमोह वस्तुबोधमां मुझवण करावी वस्तु—स्वीकारना रागमां खेंची जाय छे, अने दृष्टिराग अमुक व्यक्तिमां राग उपजावी व्यक्तिमेम तरफ खेंची जाय छे आथी जे प्रेम बन्या पछी अनेक अनर्थो तथा आत्मअहित वेठवा छतां आ रागने समजु मनुष्य पण छोडी शकतो नथी.

उन्यथी ते ते आत्माओ पावन पापरूप न मानता कर्तव्यरूपे माने छे. आ ज दोषना बळथी उच्च भूमिकाए पहोंचेल आत्माओ उधे मुखे पडी अधोमार्गगामी बन्या छे जमाली महावीर प्रभुथी उलटो थयो, त्रैराशिकमत प्ररूपक सघ आचार्य अने भगवतना सिद्धान्तथी उलटो चाल्यो विगेरे 'दृष्टिसमोहना' साम्राज्यनो ज प्रभाव कह्यो छे.

अथवा प्रकारातरे दृष्टिमोहनु स्वरूप जाणवु 'गुणतः' ए पदनो भाव अन्यत्रमाय ए अर्थ लेवो, अर्थात् ए क्रियाओ तुल्य होय, तेना धर्मोओ बन्ने जण एकसरखा परिणामवाला होय अगर बन्ने क्रियाओ समान भाववाली होय छता तेमा नाममेदथी अथवा आगमवचनथी पूर्वे कहेल वैदिकोनी यज्ञ-हिंसानी माफक एकने पापरूप माननी अने अन्यने कर्तव्य-कर्म तरीके मानवा आ लक्षण जे प्रवृत्तिमा सुघटित थाय ते दृष्टिसमोह जाणवो अने जे क्रिया उपरथी दृष्टिये सरखी होय, तेमा प्रवर्तन करनार पण उपरथी दृष्टिये पाप आचरण करतो देखाय छता परिणामनी धारा भिन्न ज—अलिप्त होय, ते क्रियामा पोतानो परिकल्पित् स्वार्थ न होय तेमज क्रियाजन्य फळनी इच्छा पोताना माटे राखतो न होय किन्तु धर्मसरक्षण बुद्धि ज होय तो ते क्रिया पापरूप देखाता छता तेना कर्त्ताने नितान्त कर्म निर्जरा अने शुभबध ज थाय, परतु पाप लागे नहीं दृष्टान्त तरीके एक माणस, कुटुब स्त्री, पुत्र अने धन आदिनी लालसाथी व्यापार, खेती, व्याज, ग्रामसरक्षण आदि करतो होय, अने

एक मनुष्य केवळ धर्मना माटे हाट, हवेली, व्याज, ग्राम-मरक्षण अने सुवर्णादिनो सचय करतो होय-आ वेमा पहेलाने स्वार्थ, तृष्णा, लोभ अने पापबुद्धि होवाथी तेने आरभ जन्य पापबंध अवश्य थाय छे, कारण ए के स्वार्थने माटे स्त्री आदिना मोहना लीधे आरभादि सेवनारमा कदापि ते ते आरभादिमा शुभ परिणाम सभवतो नथी, ज्यारे बीजामा स्वार्थ, लोभ अने दुष्ट परिणामो न होवाथी केवल धर्म तथा शासननी अपूर्व भक्ति होवाथी शुभ परिणाम सभवे छे. एटले तेने शुभबंध ज थाय ए ज वात शास्त्रोमा विस्तारथी ज प्रश्नोत्तर पूर्वक जणावी छे

फरी आ विषयमा अहीं श्रीमान् यशोविजयजी उपाध्यायजी बीजो प्रकार दर्शावे छे.–' गुणतः शब्दार्थतस्तुल्ये तत्त्वे हिंसादीना ' गुणथी-शब्दार्थथी हिंसादिनु स्वरूप समान होय परतु नामभेदथी पोतपोताना शास्त्रोमा भिन्न भिन्न शब्दोथी दर्शावेल होय भावार्थ ए के-सर्व दर्शनकारोए पोतपोताना मतोमा हिंसादिनु स्वरूप स्पष्ट जणावी तेनो निषेध दर्शाव्यो छे, पण जैनो पण हिंसादिनु स्वरूप स्पष्ट कर्या पछी तेना त्याग माटे महाव्रत शब्द, पातजल अकरण शब्द, बौद्धो नियम शब्द कहे छे एटले मात्र अहीं नामभेद सिवाय अन्य काइ तत्त्व नथी वस्तुतः महाव्रत, अकरण अने नियम ए त्रणेनो एक ज भाव शब्द-व्युत्पत्ति करवाथी उपस्थित थाय छे, तथापि महाव्रत कथनकर्ता अमारू जैनागम सुदर छे, अक-

न थाय, प्रमाद आडो आवे अथवा निद्रा विगेरे अनेक विघ्नो खडा थाय तेमज निवृत्ति नथी, व्यवसाय बहु छे एम कही धर्मश्रवण न करे अने शृंगाररसनी, विकथानी, हास्यनी, विलासोना ज्यां कथाओ थती होय त्यां उत्साहथी जाय, निद्रा के प्रमाद नडे नहीं, व्यवसायनो पण विचार आवे नहीं, वळी नाटको, सिनेमोटोग्राफ आदि देखवा माटे पैसानो व्यय करी गाढ प्रेमथी गमन करे, ज्यारे धर्मश्रवण करवाने काइ प्रेरणा करे तो 'एमा शु सांभळवानु छे? आपणे जाणीए छीए तेमां काइ नवु नथी' अथवा 'हत्यारे धर्मश्रवणनो समय नथी, अवस्था थया पछी पण साभलीशु' इत्यादि कथन करी धर्मश्रवणमा अनादरभाव उपजावे छे, वळी रमणीरम मोजशोखमा लीनता राखवी अने तत्त्वभूतय दार्योमा, आत्महितमा, नि श्रेयसमार्गमा जे प्यार उपजवो जोइए ते न उपजे किन्तु ते रसना आस्वादनभावमा परागमुखपणु प्रगटनु ते धर्मपथ्यना अरुचिना प्रकारो छे फरी जैनी सगति करवाथी आत्माना गुणो आविर्भूत थाय, अने दिनी कुटेवो मटी जाय, दुकमा जाड्य धियो हरति सिंचति थाचि सत्य, मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति। चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्त्तिं, सत्सगतिः कथय किं न करोति पुसाम्? ॥१॥ "बुद्धिनी जडतानो नाश करे, वाचामा सत्यरसनु सिंचन करे, मानयोग्य उन्नत दिशानु दर्शन करावे, पापने दूर करे, चित्तने [illegible] करे अने चोतरफ कीर्त्तिनो वधारो [illegible] ने शु शु गमो नथी करती?"

भावार्थ ए के—सत्सगति जगतना उचामा उचा सर्व लाभो प्राप्त करावे छे आवी सज्जनसगतिना ससर्गमा रहेवाने चित्त प्रेराय नहीं, किन्तु जेना सगथी दुर्गुणो, पापमति, दुर्व्यसनो अने निकृष्ट परिणामो मळे तेवी सगति करवाने चित्त राजी थाय—आ लक्षणोने शास्त्रकर्ता ' धर्मपथ्यनी अरुची ' नामे त्रीजो पापविकार गणावे छे आ पापविकारना बलथी आत्मा धर्मामृतनु पान कदापि अनुभवी शक्तो नथी अने तेथी आत्महित समजवाने हतभाग्य रहे छे आ श्लोकमा उपर कह्या प्रमाणे धर्मश्रवणमा अनादरभाव, तत्त्वरसास्वादमा विमुखता, सज्जनोनी असगति जे दर्शाव्या ते ' धर्मपथ्यनी अरुचि ' विवेकीओने ओळखवा माटे आ त्रण लिंगो जणाव्या छे, कारण के आ लिंगोने जाण्या पछी स्वआत्मा अने परमात्माना अगे ' धर्मपथ्यनी अरुचि ' विवेकीओ बरावर विचारी शके, तेमज तेनो विचार कर्या पछी आत्माने हितमार्गथी भ्रष्ट थतो बचावी शके

हवे ' क्रोधकडूति ' जाणवानो उपाय जणावे छे—

सत्येतरदोषश्रुति–
भावादन्तर्बहिश्च यत्स्फुरणम् ।
अविचार्य कार्यतत्त्व
तच्चिह्न क्रोधकडूते ॥ ४–१२ ॥

मूलार्थ—सत्य अने असत्य दोषो एटले यथास्थित

दोष अथवा असद्भूत दोषो परमुखथी श्रवण करी अतःकरणमां जे विकार उद्भवे अने पछी बाह्य आकृतिद्वारा ते विकारो प्रत्यक्ष देखाय तेमज आ विकारथी परमार्थ कार्यतत्त्वनो विचार बाजु पर रहे ते माटे आ विकारने क्रोधकटुतीनु चिह्न कह्यु छे.

" स्पष्टीकरण "

जे कारणोथी आत्मानी समधारण प्रकृति–मध्यस्थभावनो विकार थाय अने आत्मा स्वभावथी उलटो चाले के जे समये शरीरना प्रत्येक अवयवो आवेशमय जणाय ते विकारने शास्त्रकर्ता क्रोधविकार जणावे छे आ विकार उद्भववाना अनेक गौण–मुख्य कारणो गणाव्या छे घणी व्यक्तिओ चीडियात स्वभावना लीधे जे वखते कोइ पण चीडियापणानु कारण उभु करे एटले चीडाइने आवेशमय सविकारी बने छे, ज्यारे राजाओ पोतानी मानलोलुपी बुद्धिना लीधे मानमाशिमा अतराय आवतो देखे एटले सविकारी थाय छे अन्य व्यक्तिओ अणसमजना कारणोथी क्रोधी बने छे केटलाको हास्यस्वभावथी, केटलाक कौतुकपणाने लीधे एम विचित्र कारणो आवेश उद्भववाना अनुभवाय छे अहीं क्रोधकटुतीना जे कारणो कहेशे ते मात्र काइक समजु अने विवेकीजनने जे कारणोथी क्रोध प्रगटे ते ज जाणवा अविवेकी तथा अक्कल विनाना लोकोने उपरोक्त कारणोथी क्रोध उद्भवे छे, तो पण अहीं जे कारणो दर्शावे छे तेमा ते कारणोनो अतर्भाव थवाथी उपरोक्त कारणो अहीं दर्शाव्या नथी, अने प्रथदर्शित

कारणो एज छे के जे कारणो बाल, मध्यम अने प्राज्ञ ए त्रणे वर्गमा घटी शके, तेमज ' डमरुक मणि ' न्याये प्रथम गुणस्वरूप कह्या पछी दोषस्वरूप अने त्यारपछी फरी विशिष्ट गुणस्वरूप जणाव्यु होवाथी आ दोष त्रणे वर्गमा लागु थइ शके छे आथी उपरोक्त श्लोकना कारणो अहीं केम न जणाव्या तेनो खुलासो थइ गयो मध्यम जनोने बोध आथी उपजे ते आ प्रकारे जाणवु-' सत्येतरदोषश्रुति-भावादन्तर्बहिश्च यत्स्फुरण ' सद्भूत दोषो सांभळवाथी अने आरोपित दोषो सांभळवाथी अंतरंगमा जे विकारो उद्‌भवे ने तेथी बाह्याकृतिमा विकारो तरी आवे. परमार्थ ए के-कर्मदोषथी अगर अनादि अभ्यासबलथी अथवा अमुक संयोगोथी सुंदर प्रवृत्ति छोडी थोडु या वधारे जे काइ असुंदर आचरण कर्यु होय अथवा अन्यने नुकसान थाय तेवी क्रिया सेवी होय, जे परथी बालजीवो, प्राकृत लोको लोकसमूहमा अगर अमुक व्यक्ति समीपे ते ते दोषो जाहेर करे, निंदा करे, मानहीन करे आ हेतुथी विवेकीओ पोताना दोपनो विचार अने प्राकृत जनस्वभाव न विचारता-बाल पोताने मारनारने न करडवा ठेफाळाने या पत्थरने करडवा दोडे तेम-प्राकृत बाल-जीवोनी सामे मध्यस्थभाव मूकी उग्रतानु रूप हृदयमा धारण करे. पछी असद्‌भूत् वर्तन, आवेशनी नजर, शरीरना प्रत्येक अवयवोमा तेजस्वीपणु अंगीकार करे तेमज पोतानामा कोइ विरुद्ध दोष न होय, मिथ्या आचरण थयु न होय तेमज

अन्यने नुकशान थाय तेवी क्रिया तथोप आचरी न होय छता पण समजणनी खामीना कारणथी, ईर्ष्यावुद्धिथी, बालस्वभावने लीधे विवेकीओनी सुंदर क्रियाने पण असुंदर गणी मानी बधुमा खोटा दोषो आरोपी बालजीवो विवेकीओने निंदे, तेओ पर ईर्ष्या करे, हलका पाडवा माटे अनेक प्रपचो करे अतएव भर्तृहरिए वैराग्यशतकमा कह्यु छे के–' गुणे खलभय ' सज्जनोने स्वगुणना अंगे नित्य खलजनोनो भय रहे छे, तेमज अन्यत्र पण कह्यु छे–" न विना परवादेन, हृष्टो भवति दुर्जन । काक सर्वरसान्, पीत्वा, विना मेध्य न तृप्यति " ॥ १ ॥ दुर्जनो सज्जनोनी निन्दा विना प्रसन्न थता नथी, कारण के कागडो सर्वे रसनु आस्वादन कर्या पछी विष्टाभक्षण विना तृप्त थतो नथी " आ ज हेतुओथी विवेकीओ हृदयमा राख थइ बाह्याकारोमा क्रोधनु रूप धारण करे छे अने वस्तुतत्त्वनो विचार करवा भूली जाय छे क्रोधनो ए स्वभाव ज छे के पोताना उदयथी विवेकीओने पण भानभूल्या करे छे परिणामे आ क्रोध वधता सर्वथा विवेकीओ विवेकभ्रष्ट थवा साथे वस्तुतत्त्वना विचारथी विहीन थाय छे, यावत् यशोविजयजी महाराज आ उद्भूत क्रोधना चिह्नोने आत्मानु अत्यंत अहित करनार, दुर्गतिना कटुक फलने अर्पनार अने अकार्योने जन्म आपनार एवा क्रोधना दुष्टविकारो उपरोक्त कारणोथी शरीरना प्रत्येक भागमा मध्यमजनोने उपजे छे एम स्पष्ट जाहेर करे छे

ए रीते अहीं मध्यम जनोने क्रोध उद्भववाना सद्‌भूतदोषश्रवण १, आरोपितदोष अथवा असद्‌भूतदोषश्रवण २ अने कार्यतत्त्वनो निर्विचार ३ ए त्रण कारणो दर्शाव्या छे, तेमा बालजीवोने जे जे कारणोथी क्रोध उद्भवे छे ते कारणो बहुधा अहीं दर्शित कार्यतत्त्वनो निर्विचार नामना त्रीजा कारणमा अतर्गत थइ शके छे

उपर दर्शित कारणोथी अने प्रथम दर्शित कोइ पण कारणोथी छद्मस्थभावने लीधे अथवा वस्तुबोधनी खामीना लीधे क्रोधविकारो जनताने उद्भव ए साहजिक छे, तथापि क्रोधना उदयने दाबवा माटे अने उद्भव थवा न पामे ते माटे तेमज पश्चात्ताप करवा अर्थे शास्त्रकर्ताए अनेक मार्गो कह्या छे आ कारणो अमे आगळ उपर पाच प्रकारनी क्षमाना स्वरूप वखते विस्तारथी कह्या छे, ते विवेकीओए खास विचारवा अने तेनु अनुकरण करवाने दत्तचित्त थवु ए वधारे उचित छे

ए रीते विषयतृष्णा १, दृष्टिमोह २, धर्मपथ्यमा अरुचि ३ अने क्रोधकद्दृति ४ ए चार पापविकारोनु विस्तृत स्वरूप कही धर्मी आत्मामा आ विकारो न होय एम व्यतिरेक मुखथी तेनो अभाव जणाव्यो. हवे अहीं उपसहार करता तेज वातनो निर्देश फरी फरी धर्मतत्त्व पाम्या पछी धर्मनी उच्च भूमिकाए आरूढ थयेला आत्माओने धर्मतत्त्वना प्रभावथी विशिष्ट

मैत्र्यादि गुणो प्राप्त थाय छे, ए वातनो सामान्य निर्देश ग्रंथकर्ता करे छे.

एते पापविकारा
न प्रभवन्त्यस्य धीमतः सततं ।
धर्मामृतप्रभावाद्
भवति मैत्र्यादयश्च गुणाः ॥ ४–१४ ॥

मूलार्थ—उपर जे पापविकारो जणाव्या ते पापविकारो धर्मतत्त्व पामेल आ बुद्धिवान् आत्मान निरंतर उद्भवता नथी. तेमज धर्मरूपी अमृतपानना प्रभावथी मैत्री १, प्रमोद २, करुणा ३ अने मध्यस्थ ४ ए चार गुणो अवश्य उत्पन्न थाय छे

" स्पष्टीकरण "

विशिष्ट रसायण खाधा पछी रोगादि विकारो खानारने उत्पन्न थता नथी, एम पूर्वे कह्या प्रमाणे गुर्वादिकना उपदेशथी अथवा यथाभव्यत्वना परिपाकथी 'धर्मतत्त्व' नो आविर्भाव थया पछी आगल जे पापविकारोनु विस्तृत स्वरूप अमे कही गया ते अनादिना अभ्यस्त पापविकारोनु कटुक फल अने तेनु यथास्थित स्वरूप समजवाथी, तेमज तेनो अनुभव–स्मरण जागृत होवाथी, अतएव मारु प्रमाद्य दुर्लभ एवु धर्मतत्त्व 'फरीन विनाश न पामो' ए रीते सभयपणे आ धर्मी आत्माओ

प्रवृत्ति करे छे. आ कारणथी आ मतिमान् आत्माने ते पापविकारो फरीने कदापि उद्भवता नथी, यावत् धर्मामृतपानना प्रभावथी मैत्री आदि चार भावनाओ अवश्य उपजे छे. अहीं अमृत खाधा पछी खानारने जन्म-मरण करवा पडतां नथी तेम 'धर्म' ने पण अहीं अमृत समान गण्यो छे, कारण के 'धर्म' आत्मामां उतार्या पछी अने आत्मा धर्म साथे अभेदभाव पाम्या पछी जन्म-मरणादि प्रपंचोने करतो नथी माटे धर्मने शास्त्रकर्ताए अमृतरूपे जणाव्यो. एवं अमृत खानारने अनेक नूतन उत्तम गुणो पण प्राप्त थाय छे तेम धर्म पामनार पण अहीं तेना प्रभावथी पोतानी सुंदर मान्यताने सत्त्वप्रतीतिने स्थिर बनावनार मैत्री आदि चार पवित्र बुद्धिओने प्राप्त करे छे आ ज हेतुथी शास्त्रकर्ताए अमृत साथे धर्मनी तुल्यता करी यथोचित उपमालंकार बताव्यो श्रीमान् यशोविजयजी उपाध्यायजी स्वकृत टीकामां मैत्री आदि चार गुणोने धर्मना अभ्यासगुणरूप लिंगो जणावे छे, अर्थात् विशिष्ट धर्माभ्यासद्वाराए आत्माने एकांत धर्ममय बनावनारा आ चार गुणो छे निदान ए के-आ गुणो उद्भव्या पछी आत्मा कदापि धर्मभ्रष्ट बनतो नथी उपरोक्त दोषनो अभाव यथार्थ धर्मतत्त्व आत्मा पाम्यो एवु अनुमान बुद्धिमानो करी शके अने पामेला धर्मतत्त्वनी उच्चता तथा वृद्धि करवाने अवश्यमेव मैत्री आदि गुणोनो अभ्यास धर्मीए करवो जोइए आ हेतुथी "आ गुणो आभ्यासिक गुणो छे एम श्रीमान् उपाध्यायजीना

कथननो भाव छे अथवा बाल, मध्यम, बुध ए त्रण धर्मना अधिकारी वर्गो शास्त्रकर्ताए कथा छे. बालजीवो धर्म पाम्या पछी औदार्यना आदि सद्‌गुणोने प्राप्त कर छे अने मध्यम जनो औदार्यतादि गुणो पामता साथे विषयतृष्णा आदि पाप- विकारोने दूर कर छे अर्थात् मध्यम जनो बालजीवोनी अपेक्षाए धर्मनी उच्च भूमिकाए पहोंची गया होवाथी गुणानी श्रेणी पण तेओने वधे ज छे, ज्यारे बालजीवो धर्म पाम्या पछी तेना प्रभावथी औदार्यता आदि गुणो पाम्या होय पण विषय तृष्णा आदिनो नाश न थयो होय एटले तेओ अद्यापि धर्मनी प्रथम भूमिकाए ज स्थिर छे, अने बुद्ध जनो बन्ने भूमिकाने पसार करी त्रीजी भूमिकाए पहोंची जाय छे माटे तेओ बन्नेनी अपेक्षाए विशिष्ट धर्मतत्त्व पाम्या होवाथी विशिष्ट धर्मतत्त्वना लिंग तरीके मैत्री आदि उच्चतर आध्यात्मिक गुणो प्राप्त करे छे निदान ए के-जेम जेम लाइन वधती जाय तेम तेम उत्तरोत्तर गुणनी स्थिति पण एक पछी एक उच्चतर बनती जाय छे आ प्रकार बाल, मध्यम अने बुध ए त्रण वर्ग संबंधी धर्मतत्त्वनो विषय-विभाग पाडवाथी प्रथम सामान्य गुणो, पछी विशिष्ट दोषाभाव अने त्यारपछी प्रकृष्ट गुणो ए प्रमाणे ग्रंथकर्ताए जे अनुक्रम दर्शाव्यो छे तेनु तत्त्व यथार्थतया समजाशे.

' मैत्री ' विगेरे चार गुणोनु लक्षण हवे जणावे छे

परहितचिन्ता मैत्री

परदुःखविनाशिनी तथा करुणा ।

परसुखतुष्टिर्मुदिता
परदोषोपेक्षणमुपेक्षा ॥ ४–१५ ॥

मूलार्थ—अन्य आत्माओ पोतानु हित केम पामे एम विचारवु ते मैत्री १, तथा अन्य आत्माओ दुःख रहित केम थाय ए विचारवु ते करुणा २, अन्यनु सुख देखी प्रसन्न थवु ते मुदिता ३ अने अन्यना दोषो देखी तेनी उपेक्षा करवी ते उपेक्षा ४.

" स्पष्टीकरण "

आ श्लोकनो भाव घणो ज स्पष्ट होवाथी तेमज आगल उपर आ चारे भावनानु विशिष्ट स्वरूप कहेवाना आवशे ए कारणथी अत्रे अमे चारे भावनानु स्वरूप विचारवाना यत्नु करता नथी.

ए प्रकारे अभ्यासरूप मैत्री आदि गुणोनु स्वरूप कह्या पछी ' धर्मतत्त्व ' ना लक्षणानो उपसंहार करवानी इच्छाथी ग्रंथकर्ता चतुर्थ षोडशक प्रकरणना समाप्ति सूचन करे छे.

एतज्जिनप्रणीत
लिंग खलु धर्मसिद्धिमज्जन्तो ।
पुण्यादिसिद्धिसिद्धे
सिद्ध सद्धेतुभावेन ॥ ४–१६ ॥

मूलार्थ—धर्मनी यथार्थ सिद्धि जे आत्मा पाम्यो होय

तन ओळखावनार आ "औदार्य" आदि पूर्वे कहेल जिनप्रणीत लिंग जाणवु, तेमज उत्तरोत्तर पुण्यना उपायो प्राप्त करावी पुण्यादिना निष्पत्तिसाधनपणे अबाधित–अवन्ध्यफलजनक प्रतिष्ठित कारण पण आ "औदार्यादि" ज लिंगो छे.

"स्पष्टीकरण"

आ प्रकरणनी आदिमां ज कही चूक्या के–धर्मी आत्मा ओने व्यवहारथी ओळखवाना खरा साधन तरीके "औदार्य" आदि अंतःकरणमां उछळता पवित्र आशयो छे, कारण के मनुष्य मात्रनु खरु–खोटु स्वरूप समजवा माटे तेना व्यवहारो पर ज आधार राखी शकाय, अने व्यवहार–पवित्रता हृदयनी उच्च–नीच वासना पर अवलंबी रहे छे अत ग्रंथकर्त्ताए अहीं पूर्वे जणाव्या प्रमाणे धर्मसिद्धिमान् आत्मानी परीक्षा माटे "औदार्य" आदि पांच आशयो बताव्या आ आशयोनु विस्तृत स्वरूप समज्या पछी गमे तेवो सामान्य जन पण पोतानी अने परनी, स्वपरना व्यवहार परथी, धर्मीपणानी कसोटी निकाळी शके तेमज पोताने खोटी रीते अथवा अज्ञानताथी धर्मी मानतो होय तो ते मान्यताने बदली शके आ हेतुथी "औदार्य" आदि पांच आशयोने धर्मना लिंगो–चिह्नो कह्या. अहीं ग्रंथकर्त्ताए 'जिनप्रणीत' ए पदथी सर्वज्ञोए आ लिंगो–चिह्नो जणाव्या छे, एम कही सर्वज्ञकथनना आधारे आ सर्व स्वरूप कह्यु छे, पण स्वमतिथी उपजावीने काइ पण कथन कर्यु नथी ए भाव दर्शाव्यो छे फरी आ "औदार्य" आदि भावो धर्मीप-

प्राते ओळखावे छे तेम आत्माने धर्मी पण बनावे छे, कारण के-आ "औदार्य" आदि भावोनी प्राप्ति थया पछी उत्तरोत्तर क्रमश पुण्यप्राप्तिना साधनो प्राप्त करावे छे, जेथी उत्तरोत्तर पुण्यनो प्रवाह चाल्या करे छे तेमज ज्ञानयोगना साधनोनी पण अनेकधा प्राप्ति थाय छे इत्यादि आ लिंग-चिह्न स्वजन्य फलप्राप्ति कराववा माटे अवश्य-अबाधित स्वतुकारणभूत छे, अर्थात् ज्ञानयोगनी अने पुण्यरचना साधनोनी प्राप्ति "औदार्य" आदि गुण विना सर्वथा असभाव्य तथा अशक्य ज छे. हेतु ए के-"दया भूतेषु वैराग्य, विधिदान यथोचितम् । विशुद्धा शीलवृत्तिश्च, पुण्योपायाः प्रकीर्तिताः" ॥ १ ॥ "सर्व भूतो पर दया, वैराग्यभाव, यथोचित विधिपूर्वक दान अने अकलक शीलवृत्ति-ए चारे पुण्यप्राप्तिना उपायो कह्या छे" आ श्लोकोक्त पुण्यना साधनो एकत्र करवा माटे अवश्यमेव पूर्वे जणावेल "औदार्य" आदि भावोनी अपेक्षा रहे छे आथी ज पुण्यप्राप्तिनी साधनसिद्धिनु अने ज्ञानयोग साधनप्राप्तिनु अवश्य कारण जिनेश्वरोए उपरोक्त लिंग दर्शाव्यु. पुनः 'सिद्ध' ए पदथी आ दर्शित चिह्न प्रतिष्ठित एटले प्रमाणोपपन्न छे एम कही जेओने स्व आत्माने धर्मी बनाववो होय तेओए प्रथम उपर कहेल गुणो प्राप्त करवा दृढ सकल्प साथे दृढ प्रयत्न करवानी खास आवश्यकता छे, ए भाव ध्वनित करी ते गुणो प्रति प्रयकर्ता भव्य आत्मानु खास ध्यान खेंचे छे.

आ प्रमाणे ग्रंथकर्ताए आ चतुर्थ षोडशक प्रकरणमां धर्मना लिंगरूपे " औदार्य " आदि पांच आशयोनुं विस्तृत स्वरूप, पापविकारोनुं कथन अने मैत्र्यादि चार भावोनुं दर्शन करावी बाल, मध्यम तथा बुधने धर्मप्राप्ति थया पछी उत्तरोत्तर गुणनी स्थिति जेम वधती चाले तेने दर्शावी आ अंतिम श्लोकथी आ प्रकरणनो उपसंहार कर्यो. श्लोकमां ' खलु ' ए शब्द मात्र वाक्यने सुशोभित करवा माटे ज आप्यो छे, तो पण तेनो निश्चय अर्थ करी " निश्चयेन धर्मसिद्धिमान् आत्माने ओळखावनारुं आ जिनप्रणीत लिंग-चिह्न छे " एवो अर्थ करवामां कांइ असंगतता देखाय छे खरी ? छतां टीकाकारोए ते अर्थ केम न स्वीकार्यो तेनुं समाधान अमाराथी केम बने ? ग्रंथकर्ता प्रकरणनी समाप्तिमां ' सिद्ध ' ए पदथी संपूर्ण प्रकरणने मंगलमय जणावी उत्तर प्रकरणनी साथे आ प्रकरणनो संबंध दर्शावे छे अर्थात् प्रकरणनी समाप्तिमां जे खास वाक्य आवे ते ज वाक्यथी ग्रन्थकर्ता उत्तर प्रकरण खास प्रारंभ करे छे, आथी ग्रन्थकर्ता केवा प्रौढ कवि हशे ते तेमनी वाक्यरचना परथी विद्वानोए समजवानुं छे



(५) लोकोत्तरतत्त्वप्राप्तिषोडशकम्



आगला प्रकरणमा धर्मतत्त्वोना जे जे लिंगो कया तेथी आत्मा सामान्य प्रकारनो धर्म पाम्यो एटलु ज जाणी शकाय, एव सामान्य गुणो पण आत्मा पाम्यो छे ए पण ओळखी शकाय निदान ए के–उपरना प्रकरणमा धर्मतत्त्व पाम्या पछी जे गुणो प्राप्त थाय ते ज गुणसमूह नीतिथी चालनाराओ पामी शके छे, परतु एटला मात्रथी आ आत्माओ तात्त्विक धर्म पाम्या एवो निर्णय केम करी शकाय ? कारण के नीति अने लौकिक धर्म पामेल आत्माओमा पण " औदार्य " आदि भिन्न भिन्न भावो घणा अशे होय छे एटले सामान्य दृष्टिए " तात्त्विक धर्म " अने " लौकिक धर्म " पामेला आत्माओनो भेद पाडवो असाध्य छे, अतएव प्रभु हरिभद्रसूरिजी आ पाचमा प्रकरणमा "तात्त्विक धर्म" पामेल आत्माओ "तात्त्विक धर्म" ना प्रभावथी कया विशिष्ट गुणो प्राप्त करे अने कया विशिष्ट गुणोथी आत्मा " तात्त्विक धर्म " पाम्यो छे ए जाणी शकाय एव कया विशिष्ट गुणो विना " तात्त्विक धर्म " नो अभाव छे एम निर्णय करी शकाय इत्यादि भावो समजाववा माटे विस्तारथी "लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति"नु स्वरूप दर्शावे छे.

एव सिद्धे धर्मे
सामान्येनेह लिंगसयुक्ते ।

नियमेन भवति पुंसां
लोकोत्तरधर्मसंप्राप्ति. ॥ ५-१ ॥

मूलार्थ—ए प्रमाणे " औदार्यादिक " चिह्नो सहित लौकिक धर्मनी सिद्धि थया पछी अथवा सामान्य धर्म (लौकिक धर्म) पाम्या पछी 'भव्यात्माओने' निश्चयथी " लोकोत्तरतत्त्व " नी प्राप्ति थाय छे

" स्पष्टीकरण "

उपाध्यायजी कहे छे के—आगळना प्रकरणमा लिंग सहित सामान्य प्रकारे धर्मसिद्धि बतावी, परन्तु फळ एज के विशेष गुणो अने विशिष्ट धर्म प्राप्त थाय खरु ए छे के—सामान्य गुणो अने सामान्य धर्म पाम्या पछी विशेष धर्म तथा विशेष गुणोनो लाभ थाय, ए ज वात अहीं दर्शावे छे.

चोथा प्रकरणमा लौकिक धर्म अने नीतिनिपुणता पामवानो जे प्रकार दर्शाव्यो ते प्रमाणे वर्तन करवाथी अवश्य आत्मा सामान्य धर्म तथा " औदार्य, " " दाक्षिण्यता " आदि लिंगो पामी शके छे, परतु आ धर्मरुचिमा लौकिक अने लोकोत्तर धर्मनो विभाग न होवाथी तेने शास्त्रकर्ता सामान्य धर्म दर्शावे छे एनु कारण एटलु ज के आ परिणामथी आत्मतत्त्वनु भान उपजी शकतु नथी किन्तु लौकिक सुखनी वासनाओने ज ते दृप्त करे छे, तो पण आ परिणामद्वारा आस्ते आस्ते आत्मा धर्मना उंडा स्वरूपमा उतरी शके छे अतएव ग्रंथकर्ता

'सामान्य धर्म ' नी सिद्धि थया पछी " नियमेन " ए पदथी निश्चयथी " लोकोत्तरतत्त्व " प्राप्त थाय छे एम भारपूर्वक कहे छे अर्थात् जे आत्मा अद्यापि ' धर्म ' शु छे ? एटलु पण जाणतो नथी ते आत्मा लोकोत्तर धर्मने यथार्थी जाणे ? माटे तेवा आत्माए प्रथम लौकिक धर्म जाणवो जोइए- सिद्ध करवो जोइए एटले कालांतरे लोकोत्तर धर्म पण पामी शके. अहीं " लोकोत्तर धर्म " ना अधिकारी कोण होइ शके ए बातने टीकाकारो स्पष्ट करे छे के जेओ स्वस्व धर्मग्रन्थोमा कहेल मुमुक्षुजन योग्य अनेक प्रकारना आचारो, क्रियाओ अने अवस्थाओनी अपेक्षाए शुद्ध होय अर्थात् तेमा रगाया न होय तेमज परिणामनी अपेक्षाए स्वच्छपरिणामी होय तथा स्वतंत्र व्यवहारमा अपुनर्बंधकपरिणामवाळा होय एव सम्यक्त्वशाळी दृष्टिवंत होय एवो हरकोइ आत्मा ते " लोकोत्तरतत्त्व " नी प्राप्ति करवा भाग्यशाळी थाय छे सामान्य लोको जे तत्त्वना परमार्थने जाणी शकता नथी-विचारी शकता नथी अने दृष्टिनी बहार छे एवा तत्त्वने शास्त्रकर्ताओ " लोकोत्तरतत्त्व " कहे छे. भावार्थ ए के--परमार्थ धर्मने पामवाने उपरोक्त अधिकारी आत्माओ ज योग्य छे

आ "लोकोत्तरतत्त्व"नी प्राप्ति जे स्वरूपमा थाय ते अने जया कालमा थाय ते वातने ग्रथकर्ता दर्शावे छे.

आर्या भावारोग्य

बीज त्वेषां परस्य तस्यैव ।

अधिकारिणो नियोगा–
चरम इय पुद्‌गलावर्त्ते ॥ ५–२ ॥

मूलार्थ—शुद्ध धर्मना लाभ पहेला अनादिथी अप्राप्त आशय-पवित्रतारूप आरोग्यतानो जे लाभ थाय अर्थात् समकितनो लाभ थाय तेने "लोकोत्तरतत्त्व" प्राप्ति कही छे आ "लोकोत्तरतत्त्व" प्राप्ति परम मोक्षरूप आरोग्यतानु बीज छे, अने आ बीज (समकित) नो लाभ क्षीणप्रायः संसारी एवा भवी आत्माने निश्चयथी अन्त्य पुद्गलपरावर्त कालमा ज थाय छे

" स्पष्टीकरण "

व्याधिविकारो शान्त थया विना आरोग्यता दुर्लभ होय छे, एव अनादिथी आत्माने लागेला पापविकारो शान्त न थाय त्या सुधी आशयनी आरोग्यता क्यांथी थाय? अतएव ग्रंथकर्ता "आदौ भावारोग्य" ए पदथी "लोकोत्तरतत्त्व" नो लाभ देखाडे छे एव अनादि कालमा नहीं थयेल माटे आदि एटले शरुआतमा ज जे अंतःकरणनी पवित्रता थाय के जेना बलथी तीव्र पापविकारो शान्त थाय आनु नाम " भाव–आरोग्य " जाणवु बीजा शब्दमा " समकित " कह्यु छे भावार्थ ए के–लौकिक धर्ममा समकित नथी होतु अने तेथी ते धर्म तात्त्विक धर्म न कहेवाय एटले देशन्यून ओगणोत्तेर कोटाकोटी सागरोपम प्रमाणे मोहनीयकर्मनी स्थितिनो ह्रास थया पछी ज आ

भाव आरोग्यता—समकितनो लाभ आत्माने थाय छे अने समकितनो जे लाभ तेने ज शास्त्रकर्त्ता लोकोत्तरतत्त्व प्राप्ति कहे छे एव प्रधानतर भाव—आरोग्यतानु मुख्य बीज आ "लोकोत्तर तत्त्व" समकितप्राप्ति सिवाय बीजु कइ नथी भावार्थ ए के—आदि भाव—आरोग्यता, समकितप्राप्ति अने परम आरोग्यता ते सकलकर्मक्षयरूप मोक्ष छे अने मोक्षप्राप्ति समकित सिवाय असाध्य छे आथी समकितने बीजकारणनी गणनामा गण्यु छे तो तेम तीव्र पापविकारोनी शाति पछी आदि भाव—आरोग्यता उपलब्ध थाय तेम सपूर्ण आरोग्यनी प्राप्ति पहेलां राग, द्वेष, मोह अने तेना कारणभूत जन्म—जरा—मरणादिरूप भावरोगोनी सर्वथा शाति—क्षय करवानी परम आवश्यकता छे, अर्थात् आ भावरोगोनी शाति तेनु नाम नि'श्रेयस—मोक्ष कह्यु छे हवे आ आदि भाव आरोग्यता—समकितना अधिकार अने तेनी प्राप्तिनो समय उत्तरार्द्धथी ग्रथकर्त्ता दर्शावे छे जेओनो ससार घणो भागे क्षीण थयो छे अने मात्र अन्तिम पुद्गलपरावर्तकाल ससारमा रही मोक्ष पामवाना होय तेओ ज आ समकितने निश्चयथी पामी शके, अने अधिक काल जेओ ससारमा रहेवाना होय तेओ कदापि आदि भाव—आरोग्यता पामी शके नहीं, एटलु ज नहीं पण उपाध्यायजी आगळ वधीने त्या सुधी पण कहे छे के—सर्व दर्शन सबंधी अपुनर्बंधक्रिया एटले शान्त, दान्त, जिज्ञासु, मुमुक्षु आदि भावो पाम्या पछी आत्मा अपुनर्बंधपणाने पामे ते क्रियाओ पण अन्त्य पुद्गलपरावर्तकाल सिवाय अन्य पुद्गलपरावर्तकालमां पामी शकाय नहीं, यावत्—

" मोक्ष्वासओ नि न तत्थ० " इत्यादि श्लोकथी पहेलुं जणाववामां आवे छे के-" मोक्ष पामवानी जिज्ञासा पण अन्य काळमां होय नहीं " ज्यारे मोक्षनी जिज्ञासा न होय तो पछी मोक्षना बीजभूत समकितप्राप्ति त्यां क्यांथी संभवे ? अतएव ग्रंथकर्ताए तेनो निषेध कर्यो अन्त्य पुद्गलपरावर्त्तकाल शाथी थाय ? आ प्रश्नना समाधान अर्थे ग्रंथकार आ प्रमाणे अहीं जणावे छे

न भवति कालादेव
प्राधान्येन सुकृतादिभावेऽपि ।
ज्वरशमनौषधसमयव-
दिति समयविदो विदुर्निपुणम् ॥५-३॥

मूलार्थ—जेम औषध ज्वरनो नाश करनार छता पण समयपरत्वे ज ज्वर शान्त थाय छे एम कर्म, पुरुषकार, नियति विगेरे कारणो छता पण आ अन्त्य पुद्गलपरावर्त प्रधानतया कालपरिपाकथी ज स्वरूपतः बने छे, एम समयज्ञो निपुणतया जाणे छे.

" स्पष्टीकरण "

"मोक्ष प्रति इच्छा पण अंत्य पुद्गलपरावर्तकाल सिवाय न थाय " एम प्रथम कही गया एटले आत्माने संसारमां अनादिथी पर्यटन करतां ज्यारे अंतिम-एक ज पुद्गलपरावर्त बाकी रही रहे त्यारे तेने मोक्षनी अभिलाषा जागे अर्थात्

"सुकृतादिभावेऽपि" ए पदथी सुकृत–दुष्कृतकर्म, प्रयत्न, नियति आदि कारणो विद्यमान छतां ज्यां सुधी काल न पाके त्यां सुधी अंतिम पुद्‌गलपरावर्तपणु आत्माने अप्राप्य होय छे, एवं मोक्ष अभिलाषा पण दुर्लभतर होय छे. अर्थात् अंतिम पुद्‌गलपरावर्तपणामां काल ए मुख्य कारण छे अने कर्म, प्रयत्न, नियति आदि गौण कारणो मान्या छे आ ज हेतुथी उत्तम धर्मरूपी औषध पण अंतिम पुद्‌गलपरावर्तकालप्राप्त आत्माने प्राप्त होय तो ते गुणकारक थाय अने अन्यने प्राप्त होय तो नितान्त दोषकारक ज थाय छे, आ प्रमाणे सिद्धान्तवेत्ताओ भार दइने कहे छे अने निपुणतया जाणे छे. अहीं आर्यामां ' सुकृतादिभावेऽपि ' ए पदना बदले ' कर्मादिभावेऽपि ' एवु पाठान्तर छे, पण आ पाठान्तर मूकवाथी छंदभंग थाय छे. बाकी अर्थमां काइ दोष जणातो नथी तेम ज ' निपुण ' ए क्रियाविशेषण पद होवाथी ' जेम निपुण होय तेम जाणे छे '

हवे ' लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति ' समकितना लाभमां अंतिम पुद्‌गलपरावर्त्तनकाल ज प्रधानतया कारण छे, अने अन्य साधनो प्रधानतया कारणभूत नथी एवु शु कारण ? ए वात अहीं स्पष्ट कर छे

नागमवचन तद्ध

सम्यक्परिणमति नियम एषोऽत्र ।

शमनीयमिवाभिनवे
ज्वरोदये काल इति कृत्वा ॥ ५-४ ॥

मूलार्थ---तुरत प्रगट थयेला अभिनव ज्वरमा औषध गुणकारी थतु नथी कारण के समय पाक्यो नथी, ए प्रमाणे शास्त्रोना पथ्य वचनो पण अतिम पुद्गलपरावर्त्तथी अधिक ससारीने सम्यक्पणे कदापि परिणमता नथी-हितकारी थता नथी ए खास अहीं नियम छे

" स्पष्टीकरण "

त्रीजा श्लोकना विवरणमा ' समकित ' प्राप्ति अतिम पुद्गलपरावर्त्तमा ज थाय तेनु कारण स्पष्टपणे विस्तारथी जणाव्यु, ए ज वात अहीं अधिक स्पष्ट करे छे अभिनव ज्वरोदयमा औषध आप्यु होय छता ज्वर पाक्या विना ते पोतानु कार्य करी शकतु नथी, किन्तु ज्वरनो काल पाके त्यारे ज सफल थाय छे एम शास्त्रवचन पण अधिक ससारीने कदापि सद्भावने-मोक्ष-इच्छाने उपजावी शकतु नथी अर्थात् ग्राहक, श्रोता, अभ्यासी आत्मा काइक सरल परिणामी, पुण्यरुचि, सन्मार्ग इच्छक बने त्यारे ज शास्त्रवचनो हृदयमां उचभाव पेदा करी शके, अन्यथा ते ज शास्त्रवचनो विकारभाव उपजावनार बने छे एवो दृढ नियम अहीं बाध्यो छे; माटे ज अतिम पुद्गल परावर्त्तकालमां समकितनो लाभ थाय अने मोक्ष-अभिलाषा प्रगट थाय छे, परतु ते पहला थाय ज नहीं

" अंतिम पुद्गलपरावर्त " पहेला शास्त्रवचन न परिणमे एटलुं ज नहीं पण शास्त्रवचन अधिक ससारीने विपरीतपणे ज परिणमे छे.

आगमदीपेऽध्यारोप-
मडल तत्त्वतोऽसदेव तथा।
पश्यन्त्यपवादात्मकम-
विषय इह मन्दधीनयना ॥ ५-५ ॥

मूलार्थ—अहींया लोकने विषे मदबुद्धि चक्षुवाळा लोको परमार्थथी सिद्धातरूप दीपकमा नितान्त खोटु भ्राति रूप मडळ धारीने तिमिर–रोगीनी माफक ज्या अपवाद पदनो मार्ग न होय तेवा स्थळमा अपवाद स्थानने ज देखे छे अर्थात् हलकी दृष्टिथी पदार्थोने निहाळे छे

" स्पष्टीकरण "

तिमिर नामनो नेत्रमा एक प्रकारनो रोग थाय छे आ रोग थया पछी रोगी नित्य दीपकने मयूरचद्रकाकार, नीललोहितभासुरम् । प्रपश्यन्ति प्रदीपादे–मंडल मन्दचक्षुषः ॥ १ ॥ " मद तेजोमय चक्षुवाळा आत्माओ दीपकना मडळने मायुरपिच्छ चद्राकारे नील, लाल अने भास्वर इत्यादि विविध रगमय देखे छे. " ए श्लोकना भावार्थथी चद्राकारे जुवे छे अर्थात् दीपकना प्रकाशमा पण रोगना

कारणथी चद्रभ्राति उत्पन्न थाय छे एव अहीं पण दीर्घ ससारीनी परिणति यथास्थित न होवाथी तेमज मिथ्यात्व-वासित चित्त होवाथी तात्त्विक पदार्थोनो प्रकाश करवामा समर्थ अने अज्ञान अधकारनो नाश करनार सिद्धातरूप दीप-कमा भ्रान्तिनो आरोप करी विपरीतरूपे देखे छे. भावार्थ ए के–सिद्धान्तना वचनोना विपरीत अर्थो करी स्वमान्यतामा जोडी दे छे, अने तेथी करी परमार्थथी सत् पदार्थो होय तेने पण असत्पणे ज धारे छे, श्रद्धे छे अने माने छे. आथा छेवटे आ आत्माओ ज्या अपवाद मार्गनो विषय न होय, केवळ उत्सर्ग मार्ग ज मान्य होय तेवा स्थलमा अपवाद मार्गनो अध्या-रोप करी अपकृष्टवादने ज स्वीकारे छे, अर्थात् मदबुद्धिवाला ते आत्माओ वस्तुत असद् मान्यताने ज मतिविकारथी अगीकार करे छे

मति–मालिन्यताथी 'आगम–दीपक' ने भ्रान्ति मडलरूपे मिथ्यात्वी आत्माओ देखे छे एटले विपरीत मान्यता स्वीकारे छे आथी छेवटे आ आत्माओनो केटलो अध पात थाय छे ते अधिकतया स्पष्ट करे छे

तत एवाविधिसेवा-
दानादौ तत्प्रसिद्धफल एव ।
तत्त्त्वदृशामेषा

मूलार्थ—आगम-दीपकमां भ्रान्तिनो आरोप करवाथी विधिमार्गथी विपर्यास भाव थाय छे, अने जे आगममां दानादि भावोनुं फल स्पष्ट कह्युं छे एवा दानादि भावोने अविधिभावे सेवे छे आ पापिष्ठ एवी अविधिसेवा आगमतत्त्वने यथार्थपणे देखनाराओने भ्रांतिमदल विना क्यांथी संभवे ? अर्थात् सम्यग्दृष्टिओने आ अविधिसेवा कदापि होय ज नहीं

स्पष्टीकरण '

भ्रान्तहृदयीने आगमवचन अन्यथा परिणमे छे अने स्याद्वाद सत्य तत्त्वने असत्य तरीके अने विधिने अविधिरूपे, मार्गने कुमार्ग तरीके आदरे छे जेथी दरेक क्रियाओ आ आत्मा अविधिभावे सेवे छे, कारण के भ्रान्तदृष्टि तेने सर्वत्र अन्यथा ज भान करावे छे अतएव अहीं ग्रंथकर्ताए 'तत एव' पदथी भ्रान्तभाव पामवाथी ज आ अन्यथा मति आत्मा दान, शील, तप अने भाव विगेरे धर्मो अविधिभावे सेवे छे एम जणाव्युं आ धर्मो आदरवानुं फल शास्त्रोमां कर्मनिर्जरा अने ते द्वाराए मोक्षप्राप्ति कही छे सुपात्रदान, अभयदान अने अनुकंपादान पवित्र आशयपूर्वक होवाथी तेनुं फल कर्मनिर्जरा अने शुभबंध जणाव्युं छे ' तवो वोदाणफले ' तपनुं फल एकान्त कर्मनिर्जरा, शीलनुं फल आत्मस्वरूपनी निर्मलता अने भावनुं फल हृदयना मलनो नाश अने त्यारपछी आ धर्मोथी सर्वथा आत्मानी कर्मोथी मुक्ति कही छे भावार्थ ए के–देवर्द्धि, राजर्द्धि के संपत्ति अथवा भोगप्राप्ति ए आ धर्मोनुं

मुख्य फल नथी तेमज तेना माटे ते धर्मो आदरवा ते ज विपरीत मान्यता जणावी छे. हवे भ्रान्तहृदयी आ धर्मोनुं मुख्य फल देवर्द्धि, राजर्द्धि, संपत्ति आदि ज माने छे अने तेनी प्राप्ति माटे तेमां प्रवर्ते छे पण मोक्षफलने मानतो नथी आथी ज अहीं ग्रंथकर्त्ताए कह्यु के–आगममां आ धर्मनुं फल स्पष्टपणे प्रगटतया कह्यु छे, छतां तेने ते मानतो नथी–स्वीकारतो नथी अने आदरतो पण नथी निदान ए के–आ ज कारणथी आ अविधिसेवाने पापिष्ठा कही, पण जेओने सम्यक्त्व प्रगट थयु छे आदि भाव–आरोग्यता प्राप्त थइ छे अने चरम पुद्गलपरावर्त कालमां जेओ दाखल थया छे तेओना तीव्र पापविकारो सर्वथा शान्त थवाथी तेओने आगमवचनमां अरुचि, अश्रद्धा अथवा खोटी मान्यता कदापि उद्भवती नथी. अर्थात् भ्रान्तिरूपी महल विना आ पापिष्ठा अविधिसेवा उदयमां आवे नहीं अने आ आत्माओने भ्रान्तिसमूहनुं कारण ज पहेलाथी नष्ट थइ जाय छे, किन्तु भ्रान्ति–समूह उपरोक्त आत्माओ सिवाय अन्यने न ज होय

'दानादि' धर्मो अविधिमात्रे सेवे तेनुं ज स्वरूप फरी ग्रंथकार स्पष्ट करे छे

येषामेषा तेषामागम–
वचनं न परिणतं सम्यक् ।

अमृतरसास्वादज्ञ
को नाम विषे प्रवर्त्तेत ॥ ५–७ ॥

मूलार्थ—जे आत्माओए अविधिसेवाने बहुमानतया स्वीकारी छे तेओने आगमनुं वचन सम्यक्तया परिणमतुं नथी, कारण के अमृतरसना स्वादनो जाणकार मृत्यु देनार विषनुं भक्षण करवा कदापि प्रवृत्ति कर खरो ? न ज करे

" स्पष्टीकरण "

शास्त्रकार दृष्टांत साथे उपरनी वात अहीं खुल्ली करे छे जेम एक वार अमृत पीधुं होय अने तेनो रस बराबर अनुभव्यो होय त्यारपछी आ अनुभवी विष मृत्युने आपनार छे, एवु भान थवाथी तेनुं भक्षण करतो नथी एवं जिनवचन तेओने सम्यक्तया भासमान् थयु होय तेओने जिनवचनमां कदापि भ्रान्तिज्ञान उत्पन्न थतुं नथी, अने अहीं उपरना आत्माओने भ्रान्तिज्ञान थयुं होवाथी जिनवचन यथार्थरूपे परिणमतुं नथी. आथी ज समजाय छे के–आ आत्माओने जिनवचनरूपी अमृतरस–स्वादनुं ज्ञान नथी थयु अने मृत्यु देनार विष–भक्षणमां ज लीन थाय छे अहीं जिनवचन ते अमृतरस जाणवुं अने भ्रान्तिज्ञान ते विषभक्षण जाणवुं उपाध्यायजी स्वटीकामां ज्ञानफळथी वंचित एवा अपरिणामी आत्माने आ ' अविधिसेवा ' नामे पापविकार होय छे एम जणावे छे भावार्थ ए के–अधिक ससारी आत्मा ज ज्ञानफळवंचित अपरिणामी होय

अत्यार सुधी विधिमुखथी अधिक ससारीने 'आगम-वचन' नी श्रद्धानो निषेध कर्यो. हवे प्रयकार निषेधमुखे स्पष्टतया आगमवचननी श्रद्धानो अभाव दर्शावे छे—

तस्माच्चरमे नियमा-
दागमवचनमिह पुद्गलावर्ते ।
परिणमति तत्त्वत
खलु स चाधिकारी भवत्यस्या ॥५-८॥

मूलार्थ—अतएव आगमवचननी श्रद्धा अहीं आत्माने चरम पुद्गलपरावर्त्तकालमा ज परिणमे छे, अने तेथी करीने परमार्थथी आ लोकोत्तरतत्त्वप्राप्तिनो अधिकारी चरम पुद्गल-परावर्त्तकालवर्त्ती आत्मा ज होय छे, अर्थात् अन्य आत्मा अधिकारी न थाय

" स्पष्टीकरण "

उपर जे कही गया तेनो निष्कर्ष ए आव्यो के आगम-वचनमा प्रीति चरम पुद्गलपरावर्त्तकालमा ज बने पण अन्य कालमा न होय, तथा 'लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति' नी योग्यता-अधिकारीपणु चरम पुद्गलपरावर्तकालवाली आत्मा सिवाय अन्यने न बने. भावार्थ ए के—आगमवचन पर श्रद्धा अने लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति अन्य कालमा उपलब्ध थाय आथी ज अधिक ससारीने आ तत्त्वना अधिकारी न गण्या

आगमवचनमा एवी कई अलौकिकता रही छे के जेना माटे अधिक ससारीने तेनी श्रद्धानो निषेध जणाव्यो, तथा 'लोकोत्तरतत्त्व' प्राप्तिना पण अनधिकारी गण्या ? आ प्रश्नना समाधान माटे आगमवचननी प्रशस्तता ग्रथकार जाहेर करे छे.

आगमवचनपरिणति-
भवरोगसदौषध यदनपायं ।
तदिह पर सद्बोध
सदनुष्ठानस्य हेतुरिति ॥ ५-९ ॥

मूलार्थ—आगमवचननी परिणति एटले यथार्थपणे आगमोक्त पदार्थनो प्रतिभास आ प्रतिभास अपाय-दोष रहित ससाररूप रोगनो नाश करनारु औषध छे, अतएव आ यथार्थ उत्कृष्ट बोध-पदार्थज्ञान सुदर अनुष्ठानने जन्म आपवामा कारणभूत थवु छे अर्थात् तेथी सुदर अनुष्ठाननी प्राप्ति थाय छे.

"स्पष्टीकरण"

"आ-मर्यादया, गम्यन्ते-पदार्थाः प्राप्यन्ते ज्ञायन्ते येन यस्मात् यस्मिन्निति आगमः तस्य वचन" " तेथी जेनाथी जेना विषे मर्यादापूर्वक पदार्थो जाणी शकाय तेनु नाम आगम, अने ते आगमनु जे वचन तेनु

नाम आगमवचन." भावार्थ ए के–आत्मानु एकान्त श्रेय करनार अने हितमार्ग देखाडनार जे शास्त्रो होय तेने ज महर्षिओ आग मशास्त्र कहे छे, पण जे शास्त्रो छता " षट् शतानि नियुज्यन्ते " इत्यादि वचनोथी पशुहोम, अग्निहोत्र आदि पापारम्भनो उपदेश करे तेने आगमशास्त्रो केम कहेवाय? अरे शास्त्रो पण केम कही शकाय? आथी शास्त्रो अने आगम तो ते ज गणाय के जेमा लेश पण पापोपदेश न होय. आ शास्त्रो सर्वज्ञकथित अने सर्वज्ञवाक्यावलम्बी एम बे प्रकार होय छे. जे वचनो भगवते कह्या अने गणधरोए सूत्रोपणे रच्या ते सर्वज्ञकथित आगम कहेवाय छे, अने सर्वज्ञना अमुक अमुक वचननो आधार लइ आचार्योए जे शास्त्रो रच्या होय ते सामान्य शास्त्रो कहेवाय छे; परंतु आ बन्ने शास्त्रो नितान्ततया शुद्ध सन्मार्ग सिवाय पापोपदेश कदापि करे नहीं. आवा आगमनु जे वचन होय ते ज आगमवचन अहीं मान्यु छे आ आगमवचननी परिणति एटले परिणमनु अर्थात् आगममा जे प्रकारे पदार्थस्वरूप कह्यु होय ते ज प्रकारे परिणमवु एटले वर्तनमा–क्रियामा मूकवुं तेनु ज नाम खरी रीते आगमवचन–परिणति शास्त्रकार कहे छे. ज्या सुधी विभाव पदार्थोनो कटाळो आत्माने न आवे, आत्मज्ञान स्फुरायमान न थाय, ससार पर अप्रेम न जागे अने सत्य सुख प्रति जिज्ञासा न वधे त्यां सुधी आगमवचन ते आत्माओने कोइ पण गुण करवा समर्थ बनतु नथी अने आ स्थिति चरम पुद्गलपरावर्तकालमा आव्या सिवाय पामवी महर्षिओए अशक्य जणावी छे परमार्थ ए के–अज्ञानावरण-

कर्मनो ह्रास थया पछी सत्य उपादेय पदार्थने धारी न शके अने बालजीवोना ज्ञान जेवु विषयप्रतिभास नामे जे ज्ञान तेने पण उल्लंघन करी ज्ञानावरणीय कर्मोना नाशथी ग्राह्य-उपादेय पदार्थोने विषय करनारु अने नितान्त आत्मस्वरूपनु खास भान करावनार जे ज्ञान आत्मामां प्रकाशमान थाय तेने ज उपाध्यायजी ' आगमवचनपरिणति ' ' आगमसद्बोध ' ' यथार्थज्ञान ' ' सम्यग्ज्ञान ' कहे छे आथी ज उपाध्यायजी अन्यत्र कहे छे-" तज्ज्ञानमेव न भवति यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः । तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिन-करकिरणाग्रतः स्थातु " ॥ १ ॥ " जेना उदय पछी रागादिकनो समूह प्रकाशमान रहे तो ते ज्ञान ज न कहेवाय, कारण के सूर्योदय थया पछी तेना किरणोना प्रकाश सामे शु अंधकार रही शके खरो ? " अतएव आ ज्ञान ससारनी अनेक तरहनी विटंबणाओने दूर करवाने समर्थ पण निर्दोष बाधा रहित सुदर पथ्य औषध समान छे एव आ ज्ञान जागृत थया पछी उपाध्यायजी महाराज जणावे छे के-ज्ञानजन्य उपादेय पदार्थोनो स्वीकार करवामां अविरति आदि अतराय कर्मो-प्रतिबंधको आडे आवे तो पण सत्य पदार्थनी श्रद्धामां लेश पण बाधा आवती नथी, तथा आगमवचननी परिणति थया पछी प्रकृष्ट सद्ज्ञानावरणीय कर्मोनो नाश थाय अने शुद्ध उपादेयोने स्वीकारनार सद्बोध प्राप्त थाय छे अर्थात् 'तत्त्वसंवेदन' नामे उत्तम ज्ञान जागृत थाय छे. आ ज्ञान पवाथी नित्य तत्त्व पदार्थोने ज उपादेयपणे, स्वीकार्यपणे,

हितरूपे अने स्वकल्याणपणे माने छे आवा ज्ञाननु मुख्य फल आचाराग टीकाकार "ज्ञानस्य फल विरतिः" ज्ञाननु फल हयपदार्थनो त्याग अने पुद्गल सुखनो अमोह मात्र थवो ए ज कहे छे आथी अहीं पण आ ज्ञान जागृत थवाथी तेना फल रूपे सद्नुष्ठान एटले विरतिरूप शुद्ध परिणती आत्माने प्राप्त थाय छे, अतएव आ आगमपरिणति अति प्रशस्यतर अहीं जणावी परमार्थ ए के-पुद्गलोनो प्रेम अने विषयसुख प्रति उदासीनता आत्माने शुद्ध ज्ञान विना प्रगटवी दुर्लभतर होय छे, तो सद् ओषधथी दीर्घ कालना पण रोगो नाश पामे छे तेम अनादिना तीव्र राग-द्वेषादि भाव रोगो आ तत्त्वसंवेदन नामे ज्ञान-प्रकाशरूप ओषधबलथी एकाएक नाश पामे छे, विरति परिणाम जागृत थाय छे माटे आ 'आगमपरिणति' चरम पुद्गलपरावर्तकालमा ज प्राप्त थाय छे अने ते एकान्त प्रशस्यतम महर्षिओए जणावी छे आथी आ आगमवचनना अधिकारी उपरोक्त आत्मा सिवाय अन्य आत्माओनो ग्रथ कर्ताए निषेध कर्यो

तत्त्वबोध पामवाथी जे विरतिरूप सद्नुष्ठाननी पूर्णतया प्राप्ति थाय तेनो खास हेतु ग्रथकार जणावे छे अथवा तत्त्वबोध पामवाथी जे सदनुष्ठान आत्मा आदरे तेमा विशिष्टता शु छे ? तेनो खुलासो अहीं दर्शावे छे

दशसंज्ञाविष्कंभण-
योगे सत्यविकल ह्यदो भवति ।

परहितनिरतस्य
सदा गम्भीरोदारभावस्य ॥ ५-१० ॥

मूलार्थ—परोपकारमा आसक्त अने नित्य गाम्भीर्यता तथा औदार्य भावडे करीने युक्त एवा आत्माने दश प्रकारनी संज्ञाओने यथाशक्तिए रोकवानी शक्ति प्राप्त थवाथी निश्चयेन अखंड परिपूर्ण सदनुष्ठान प्राप्त थाय छे

"स्पष्टीकरण"

विरतिरूप सदनुष्ठाननी प्राप्ति वाद्य विषयसुख, पुद्गल प्रेम परत्वेनो मोह, आसक्ति लोभ अल्प न थाय अथवा नाश न पामे त्यां सुधी थाय नहीं ए वात अमे पहेला पण जणावी गया छीए. फरी ग्रंथकार ते ज वात शास्त्रीय शब्दोथी अहीं जणावे स्पष्ट करे छे आ 'सदनुष्ठान' लाभ दश प्रकारनी संज्ञाओनो यथाशक्तिए निरोध करवाथी अगर नाश करवानो जाज्वल्यमान उत्साह हृदयमा आववाथी थाय छे. परमार्थ ए के—प्रत्येक आत्माने अनादिकालथी प्रत्येक गतिमा दश प्रकारनी संज्ञाओ खास हृदयगत आत्मस्वरूपे विद्यमान होय छे, जेथी आत्मा अनेक तरेहना कर्मो बांधी ते संज्ञाकृत विकारोने पोतानो धर्म समजी अनंत संसारमा पर्यटन करे छे, एवं आत्मस्वरूपने ओळखवा जेटलुं सद्ज्ञान पण पामी शकतो नथी तो पछी विरतिरूप सुंदर क्रिया तो क्यांथी पामी शके ? आ ज हेतुथी ग्रंथकर्ता महर्षिपूज्य प्रथम ते दश संज्ञाओनो निरोध

२, मैथुनसंज्ञा ३, परिग्रहसंज्ञा ४, क्रोधसंज्ञा ५, मानसंज्ञा ६, माया संज्ञा ७, लोभसंज्ञा ८, लोकसंज्ञा ९, अने ओघसंज्ञा १०" नारकीओने आ दशे संज्ञाओ होय तेमज यावत् वैमानिकोने पण ए दशे संज्ञाओ होय, तथा अन्य आत्माओने पण ए दशे संज्ञाओ होय." क्षुधावेदनीय कर्मनो उदय थवाथी कवल, ओज अने लोम आहारने माटे जे संज्ञाना बलथी आहार पुद्गलोने ग्रहण करवानी चेष्टा आत्मा आदरे तेनुं नाम आहारसंज्ञा १ भावार्थ ए के-ज्यारे ज्यारे जठराग्निना जोरथी आत्माने क्षुधा लागे एटले अग्निनुं जोर वधे त्यार त्यार तेनी शांति माटे आहारादि लेवानी चेष्टा आ ज संज्ञाबलथी आत्मा करे छे भयवेदनीय कर्मोदयथी आत्मा भयथी कम-कमी उठे छे, दृष्टि अने मुखना विकारो बदलाई जवाथी तेना पर दुःखनी ज छाया तरी आवे छे, एवं तेनी रोमराजीओ पण एकाएक उभी थइ जाय छे आ बधा विकारो जे संज्ञाना प्रभावथी जागृत थाय तेनुं नाम महर्षिओ भयसंज्ञा कहे छे. अहीं एक खुलासो करवानी आवश्यकता छे, ते ए के-भय प्रकृतिने कर्मग्रथमा नोकषाय चारित्रमोहनीयकर्म पैकी नव नोकषायांतर्गत भयमोहनीय तरीके जणावी छे, अने आ स्थले 'भयवेदनीयोदय' कही 'भय'ने वेदनीय कर्मप्रकृति तरीके जणावी आनुं कारण ए समजाय छे के-ज्यारे भयना लीधे आत्मा मुग्ध बनी जइ भानभूलो थाय त्यार ते भयमोहनीयोदय समजवो, अने ज्यार आ मोहना उदयथी अशांति, दुःख के क्लेश अनुभवे छे त्यारे ते भय

वेन्नीयपणे समजवो. अर्थात् मोहोदयथी व्याकुलता बने अने वेदनीयोदयथी अशांति, दुःख विगेरे पेदा थाय छे. एटले आ प्रमाणे भेद पाडवाना काइ विघातक जेवु जणातुं नथी, तथा पुरुषवेदना उदयथी मैथुनक्रिया (स्त्री-पुरुषनो सयोग) माटे स्त्रीयोना गुह्य भागो निरखवा, तेने देखी मुखनी प्रसन्नता, साथलो स्तंभित थवा अने शरीरमा धुजारी छुटवी-आ सर्व विकारो जे सज्ञाबलथी थाय तेनु नाम जीजी मैथुनसज्ञा कही छे परमार्थ ए के-त्रण वेद पैकी कोइ पण वेदना उदयथी पुरुष स्त्रीने, स्त्री पुरुषने अने नपुसक उभयने चाहे एव स्याद्वाद पोतानी मैथुन जिज्ञासा तृप्त करवाने जे काइ विरुद्ध क्रीडा करे अथवा इच्छा मात्र कर ते सर्वने ग्रथकर्ताओ मैथुन-सज्ञानो ज उदय माने छे मैथुनसज्ञानो आ अर्थ यदि न स्वी-कार्य थाय तो एकेंद्रियो, विकलेंद्रियो तथा नारकी अने समूर्छिम जीवोमा आ सज्ञा केम घटावी शकाय ? अतएव उपरोक्त अर्थ स्वीकार्य छे 'लोभमोहनीय' ना उदयथी ससारवृद्धिना कारणरूप अने आसक्तिपूर्वक सजीव निर्जीव पदार्थो एकत्र करवा आत्म सवधी जे जे व्यापारो ते परिग्रहसज्ञा क्रोधना उदयथी दुष्ट परिणाम सहित आवेशनो जे परिणाम अने मुख, नेत्र, दात, ओष्ठ ए सर्वेनु जे चेष्टाथी सूकाइ जवु ते क्रोधसज्ञा अथवा आवेशवाळु जे चित्त ते पण क्रोधसज्ञा जाणवी. मानना उदयथी अहकारवाली अभिमान 'हु' पणानी जे परिणति ते मानसज्ञा, तथा 'लोभ' ना उदयथी तृष्णा सहित सजीव-निर्जीव पदार्थोनी इच्छा करवी ते लोभसज्ञा.

अहीं आसक्तिपूर्वक पदार्थो एकत्र करवा उद्यम करवो ते परिग्रहसंज्ञा अने पदार्थो मेळववा आसक्ति धारवी ते लोभसंज्ञा. आ बन्नेमां परिग्रह अने लोभसंज्ञा उभयमां भेद होवाथी ते बन्ने संज्ञाओ अलग अलग जणावी. एवं मति-श्रुतज्ञानना आवरणक्षयोपशमथी शब्द अने अर्थज्ञान-विनानो सामान्य मात्र जे बोध प्रगटे अने ते बोधद्वारा आत्माना जे व्यापारो ते ओघसंज्ञा जेमके वेलडीयो लोकों जे मार्गे पर चाले त्यां न वधतां पोताने पीडा न थाय ते माटे वाड तरफ ज वधे. विकलेंद्रियो आतपमांथी नीकली छायामां आवे ए ओघसंज्ञाजन्य क्रियाओ कही छे, तथा ओघसंज्ञामां जे ज्ञान प्रगटे तेना करतां विशिष्ट जे उपयोग ते लोकसंज्ञा आ दशे प्रकारनी संज्ञाओ पचेंद्रियोमां स्पष्टतर जणाय छे, ज्यारे एकेंद्रियोने कर्मोदयजन्य आत्मपरिणामरूपे ज होय पण प्रत्यक्ष न होय

अहीं जणावेल आ दशे संज्ञाओ पूर्णतया होय त्यां सुधी आत्मा धर्मनी रुचिने पण पामी न शकु, तो पछी 'तत्त्वबोध' आगमवचनपरिणति अने सम्यक्त्वभाव क्यांथी पामी शके ? माटे ज अहीं ग्रंथकारे प्रथम ' सदनुष्ठान ' पामवा अर्थे आ दशे संज्ञाओनो यथाशक्तिए निरोध करवानुं दर्शाव्युं, अर्थात् आ संज्ञानो यथाशक्तिए निरोध करवाथी तेमज निरोध करवानो उत्साह धारवाथी आ विरति-त्यागरूप सदनुष्ठान क्रिया मार्गिनी योग्यता आत्मा पामी शके छे, कारण के आत्माने सुंदर भावथी स्खलित करवामां मुख्य कारणभूत आ अनादिनी

दश सज्ञाओ ज छे अतएव अहीं ग्रथकारे मूलमा ' योगे सति ' ए पदथी ' निरोध करवानो योग-सबध छते ज ' एम कह्यु. आम छता एटले दश सज्ञाओनु जोर छता कोइ आत्मा त्यागभावरूप सदनुष्ठान आदरे तो पण नदिषेण महात्यागी माफक कालातरे जरुर मार्गथी नीचो सरी जाय एमा शका नथी. आथी अहीं अविकल सदनुष्ठान प्राप्ति माटे आ सज्ञाओनो निरोध मुख्य बताव्यो, अर्थात् आर्यामा करेल ' अविकल ' ए पदनो उपरोक्त परमार्थ छे

आटलु छता पण फरी कयो आत्मा अविकल [illegible] पामे तेनी पुष्टि माटे अर्थी आर्या ग्रथकार जणावे छे [illegible] दशे सज्ञानो यथाशक्तिए रोध कर्यो होय, रोध करवानो [illegible] धार्यो होय तो पण आ त्रण गुणो न होय तो ते [illegible] [illegible]-फल सदनुष्ठान पामवानो अधिकारी नथी; किन्तु [illegible] परोपकार करवानी अभिलाषावत होय अने पूर्वे [illegible] [illegible]-र्यता, औदार्यता ए बे गुणो जेओमा होय [illegible] [illegible] अधिकारी बने छे निष्कर्ष ए छे [illegible] [illegible] [illegible] रोध कर्या पछी परोपकारी उदारदिल अने [illegible] [illegible] ज अविकल सदनुष्ठान पामे

अरे ! दुर्लभ पण दश [illegible] [illegible] [illegible] आर्या ! [illegible] आत्मा अविकल सदनुष्ठाननो अधिकारी बने ए [illegible] जणावे छे.

सर्वज्ञवचनमागमवचनं,
यत्परिणते ततस्तस्मिन् ॥
नासुलभमिदं सर्वं,
ह्युभयमलपरिक्षयात्पुंसाम् ॥ ५-११ ॥

मूलार्थ—सर्वज्ञ भगवाननुं जे वचन ते ज आगमवचन अहीं मान्युं छे, एटले आ आगमवचन परिणम्या पछी अने क्रियामल तथा भावमलनो क्षय थवाथी आत्माओने आ दश लक्षणोनो यथाशक्तिए निरोध थावो काइ दुर्लभतर नथी, किन्तु सुलभ ज छे

" स्पष्टीकरण "

' सर्वं जानातीति सर्वज्ञः तस्य वचनं ' " निरावरणपणे जगतना चर-अचर सर्व पदार्थोने जे जाणे-देखे ते सर्वज्ञ अने तेनुं वचन ते सर्वज्ञवचन " सर्वज्ञ पुरुषनुं जे वचन तेने ज अहीं ' आगमवचन ' तरीके स्वीकार्युं छे. जेओने सर्वज्ञ वचन पर सद्भाव थयो होय अने सर्वज्ञनुं वचन ज सत्यमार्गदर्शक छे एवी श्रद्धा हृदयमां एकान्तत परिणमी होय, तेओने आ जगतमां कोइ पण क्रियाओ प्राप्त थवी दुर्लभतर नथी; कारण के-धन्वन्तरी वैद्यनुं जेओने ओठुं मल्युं होय तेओनो रोग जवामां शुं विलंब लागे खरो ? तथाप्रकारे अहीं पण जगतना रोगोने निर्मूल करनार अने प्रत्येक रोगना प्रतिकारो

दर्शावनार प्रभु वीतरागदेवना वचनो अखड निराबाधपणे जेओना हृदयमा निवास करी रह्या होय तेओना रोगो अने तामसो क्याथी स्थिर रही शके ? अर्थात् न ज रहे कह्यु पण छे के–"पापामयमौषध शास्त्र, शास्त्र पुण्यनिबन्धनम् । चक्षुः सर्वगत शास्त्र, शास्त्र सर्वार्थसाधनम् "॥१॥ 'पापरूपी रोगोने निर्मूल–नाश करनार अमूल्य औषध तुल्य शास्त्र छे, अने शास्त्र पुन्यबन्ध करवामा एक मुख्य साधन छे, एव शास्त्र सर्व पदार्थोने देखवा माटे अलौकिक अद्वितीय नेत्र समान छे, तथा सर्व अर्थनी सिद्धि करनारु पण शास्त्र ज छे' तेमज चरमकालवर्ती भवि आत्माओ प्रत्येक क्रियामा शास्त्रनो ज आधार स्वीकार छे अर्थात् सर्वज्ञवचनथी उलटी रीते चालवाने तेओ चचलचित्त थता नथी ए ज वात अन्यत्र पण कही छे–" परलोकविधौ शास्त्रात्, प्रायो नान्यदपेक्षते । आसन्नभव्यो मतिमान्, श्रद्धाधन-समन्वित " ॥ १ ॥ " परलोक सबधी साधनभूत क्रियामा श्रद्धारूपी धनवालो अने बुद्धिशाली एवो निकटभवी आत्मा सर्वज्ञशास्त्र सिवाय अन्य आलबन बहोलताये कदापि स्वीकारतो नथी, अपेक्षा राखतो नथी " उपर कह्या प्रमाणे शास्त्रवचनो जेना हृदयमा रमी रह्या होय तेमज ते पर ज जेओनी अखड श्रद्धा होय तेओ अवश्य शास्त्रमा जे वात स्वीकार्यरूपे अने हेयरूपे कही होय ते ते वातोने मतिमान् आत्माओ यथाशक्तिए स्वीकारवानो अने त्याग करवानो

प्रयत्न जरुर करे. आर्थी अहीं जणाव्यु के-'परिणते' शास्त्रवचन यथारूपतया परिणम्या पछी एटले 'नासुलभमिद सर्व' आ सर्व अनुष्ठानो प्राप्त करवा तथा दशे संज्ञाओनो रोध करवा काइ दुर्लभ नथी, किंतु सुलभतर छे. निदान ए के-शास्त्रवचननो निर्दोष राग प्रगटवाथी भवी आत्माना बे प्रकारना मलो स्वतः नाश पामे छे एक तो जे 'क्रियामल' ना जोरथी आत्मा सुंदर वर्तन आदरवाने असमर्थ अनादिकालथी रहतो हतो ते मलनो नाश थाय अने दुष्ट आशयरूपी मलिनताथी आत्मा शुद्ध वस्तुने बराबर विचारी शकतो न्होतो एवो 'भावमल' अर्थात् आशयनी अपवित्रता तेनो पण नाश थाय छे, आम थवाथी जरूर दश संज्ञानो निरोध अगर निरोध करवानो उत्साह आत्माने जागृत थाय छे. एमां अधिकोक्ति जेवु कशुए नथी एव जेओने सर्वज्ञवचन पर प्रेम जागृत थयो नथी तेओने ज आ अनुष्ठान प्राप्त थवु दुर्लभतर होय पण छे के-"न यस्य भक्तिरेतस्मिंस्तस्य धर्मक्रियाऽपि हि। अन्धप्रेक्ष्यक्रिया तुल्या कर्मदोषादसत्फला" ॥ १ ॥ "जेने सर्वज्ञशास्त्र उपर प्रेम के भक्तिभाव नथी तेनी धर्मक्रिया पण निश्चयथी अधनी दृष्टि सरखी क्रियानी माफक कर्मदोषना लीधे असत् फलवाळी समजवी" अथात् अधने दृष्टि होय तो पण तेनु फल काइ पण न होवाथी जेम फलने नहीं देनारी होवाथी नकामी छे तेम श्रद्धा विनानी धर्मक्रिया पण फल वगरनी समजवी

अर्थात् मुख्य फल आत्म-निर्मलताने आपती नथी " 'आगम-वचन ' मा जेओने भ्रातभाव मगट थयो होय तेओ ज दानादि सर्व धर्मो अविधिभावथी सेवे आ वात प्रथम आपणे तपासी गया, परतु जेओने आगमवचन पर एकान्त श्रद्धा होय तेओ दानादि धर्मो कया प्रकारे स्वीकारे ते वातनो खुलासो ग्रंथ कार करे छे.

विधिसेवा दानादौ,
सूत्रानुगता तु सा नियोगेन ॥
गुरुपारतन्त्र्ययोगा-
दौचित्याच्चैव सर्वत्र ॥ ५-१२ ॥

मूलार्थ—सर्वांगशुद्धिपूर्वक दानादि कार्योमा प्रवृत्ति करवी तेनु नाम विधिसेवा सिद्धान्तमा बतावेल विधिसेवानी माप्ति तो निश्चयथी गुरुआज्ञाने आधीन रहेनारने ज थाय छे, अने ते विधिसेवावान् दान आदिमा सर्वत्र औचित्यतापूर्वक ज प्रवृत्ति करे छे

" स्पष्टीकरण "

जिन भगवानना वचन पर श्रद्धा राखनार जे काइ दान, पूजा आदि कार्यो करे ते जिन भगवते जे प्रकारे करवानु कह्यु होय ते प्रमाणे विधिपूर्वक करे, अथवा जेओ विधिथी करता होय तेओने आधारे करे, तेमज विधिथी करवानी दृढ इच्छा राखे, [illegible] बुद्धिना आधारे न करे. एटले

आ मनुष्य दानादि कार्यों अविधि भावथी करे नहीं. विधि एटले शास्त्रमां जे न्याय दर्शाव्यो होय ते न्यायथी सेवा-आचरण ते विधिसेवा परमार्थ ए के-न्यायोपार्जित धनथी आवेल पदार्थनुं सत्पात्रमां दान करवुं तेमज जिनपूजा विगेरे कार्यो करवां एम आगममां कह्युं छे "नायागयाण कप्प णिज्जाण अन्नपाणाइदव्वाण पराए भत्तीए आयाणु गाहबुद्धीए संजयाण दाणं अतिहिसंविभागो मु क्खफलो" "न्यायथी आवेल अने साधुने उपयोगमां आवे तेवा अनाज पाणी आदि पदार्थो उत्कृष्ट भक्तिथी अने स्व-आत्मानो उद्धार करवानी बुद्धिवडे साधुओने आपवा अथवा अतिथिसंविभाग करवो ते मोक्षफल आपनार थाय." आथी विरुद्ध प्रवृत्ति करनार दानादि कार्यो करे तो पण तेनाथी मोक्षफल न पामे, किंतु 'दानेन भोगानाप्नोति' ए वाक्यथी भोग्य पदार्थो जन्मान्तरमां प्राप्त करे धनासार्थवाहे अने ग्रामना ठाकुरे मुनियोने शुद्ध दान आप्युं तेथी ते ज जन्ममां तेओ समकित पाम्या तथा तीर्थंकरगोत्र बाध्युं ए दान परम शुद्ध अने शास्त्रोक्त विधिवालुं कह्युं छे. ज्यारे शालिभद्र तथा धन्नाकुमारना जीवे पूर्व भवमां मुनियोने जे दान आप्युं ते उपयोगी भक्तिपूर्वक आप्युं खरुं, परंतु स्वा-त्मोद्धार दृष्टि वगरनुं अने न्यायागत न होवाथी आ दान तुर-तमां भोग्य पदार्थ देनारुं थयुं, पण ते जन्ममां समकित आपनारुं न थयुं आथी ज शास्त्रोमां अल्प पण दानादि कार्यो न्यायो-पार्जित वित्तवडे ज शुद्ध कह्यां, पण अन्यायी द्रव्यथी बधुं पण

दानादि कार्यो अशुद्ध ज छे एम स्पष्ट थयु छे

न्यायनु स्वरूप आ प्रमाणे शास्त्रमा दर्शाव्यु छे-"स्वामी द्रोह, मित्रद्रोह, विश्वासुने छलवो, चोरी आदि निन्दनीय कार्योथी जे धन पेदा करवु तेने छोडी अन्य व्यापारद्वारा धन पेदा करवाना पोतपोताना कुलने उचित जे आचारो तेनु नाम न्याय अने तेथी प्रवृत्तिथी जे धन प्राप्त थाय ते न्यायोपार्जित धन समजवु " आ रीतथी आवल धन पवित्र बुद्धिवालु अने प्रायः पापकर्म रहित होवाथी तेनो भोग अने सत्पात्रमा दान सुष्ठु फल आपनार बन छे शास्त्रो कहे छे के-न्यायोपार्जित धननो सत्पात्रमा उपयोग करवाथी पुण्यानुबंधी पुण्य बधाय छे उपर कह्या प्रमाणे न्यायथी द्रव्य उपार्जी तेनाथी प्राप्त थयेल द्रव्यनो सत्पात्रमा एटले मोक्षसाधक सन्मुनियोने दान देवामा उपयोग करवो तेम ज जिनपूजन पण न्यायोपार्जित धनथी प्राप्य पुष्प-फलादिवडे करवी एटले जिनवचन पर श्रद्धा राखनार उपरोक्त विधिसेवा दानादि कार्योमा प्राप्त कर छे, परतु आ विधिसेवा एटले शास्त्रमा जे विधि अनुष्ठान दर्शावेल छे तेनी प्राप्ति तो " गुरुपारतन्त्र्ययोगात् " गुर्वादिनी आज्ञामा वर्तवाथी ज थाय किंतु स्वतंत्र वर्तवाथी कदापि थाय नहीं, कारण के जिनवचननु मुख्य रहस्य केवल महर्षि गुरुओने आधीन होय छे अने जे गुरुथी निरपेक्ष थाय तथा स्वबुद्धिने ज प्रत्येक कार्यमा आगल करे छे-

मनुष्य जिनवचनना अर्थो तथा भावो स्वकल्पनाथी ज सभा करे, एटले जिनवचननो अमूल्य भाव पामी शके नहीं तेमज जिनवचननी पण ते दरकार करे नहीं. अतएव गुरुवचनाराधक जिनवचनना परमार्थने पामे अने तेथी दानादि कार्योनी विधिसेवा पण आ ज मनुष्य पामे एम आचार्ये कह्युं फरी विधिसेवाप्राप्त मनुष्य दान आदि कार्यो औचित्यतापूर्वक ज करे अर्थात् अनौचित्य व्यवहारने बाजु पर करी दीन, अनाथ, श्रमण, मुनियो विगेरेने जे विधिथी, जेवा सत्कारथी अने जेवा आदरभाव तथा भक्तिथी दान आपवु जोइए ते प्रमाणे वर्तन करे छे निदान ए के-सर्वत्र विवेकपूर्वक दानादि कार्यो करे छे ए प्रमाणे आगमवचनमा अभ्रान्तमति गुरुआज्ञानुसारी विधिपूर्वक दानादि कार्यो आराधे एम आचार्ये आ श्लोकमा स्पष्ट प्रतिपादन कर्यु एटले विधिना अर्थीए अहीं आगमबोधनी अथवा गुरुआज्ञा आराधनानी निश्चित आवश्यक्ता छे ए भाव जणाव्यो

दानादि कार्योमा विधिसेवानी आवश्यकता जणावी, हवे तेमा महादान तथा दान ए बेमा शुं तफावत छे ते वात अहीं दर्शावे छे

न्यायात्तं स्वल्पमपि हि,
भृत्यानुपरोधतो महादानम् ॥

दीनतपस्व्यादौ गुर्वनुज्ञया दानमन्यत्तु ॥ ५-१३ ॥

मूलार्थ—न्यायोपार्जित धननो सेवकवर्गने अनुपरोधपणे दीन, तपस्वी, अतिथि आदि वर्गमां थोडो पण मातापिता आदिनी आज्ञाथी उपयोग करवो तेनुं नाम ते महादान, अने आ रीतथी उलटी रीते जे उपयोग करवो ते दान मात्र छे.

" स्पष्टीकरण "

शास्त्रमां मार्गानुसारीना गुण वर्णन करतां आचार्य प्रथम गुण 'न्यायसम्पन्नविभवः' दर्शावे छे, एटले धर्मसन्मुख स्थित आत्मा जरुर न्यायथी ज आजीविका, कुटुंब रक्षण आदि कार्यो करे तो ज ते मार्गानुसारी कहेवाय, अन्यथा ते मार्गबाह्य कहेवाय. आथी धर्मप्राप्त अने प्रथम ज्णावी गयेल धर्मना लक्षणो जेमां होय ते तेमज दश संज्ञानो निरोधक आगमवचन पर श्रद्धालु जन तो अवश्य न्यायथी ज वृत्ति चलावे एमां आश्चर्य जेवुं नथी. महादान अने दाननो भेद आचार्य अहीं दर्शावे छे तेमां 'न्यायवर्तन' ए मुख्य अने महादान तथा दाननो विभाजक गुण मान्यो छे अर्थात् न्यायसम्पन्नता सिवाय महादानत्व नामक परम गुण कोई पण आत्मा पामी शके नहीं. अतएव ग्रंथकर्ता आदिमां ज 'न्यायात्' ए पद मूके छे, एटले वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण अने शूद्र ए चार प्रत्य आर्य जातिओ शास्त्रोमां कही छे. किंत कालक्रमे

ज्ञात्यतर पेटाजातिओ आदि अनेक भेदो-उपभेदो थइ गया; पण आ सर्व जातिओना पोतपोताना कूलानुरूप जे उचित व्यवहारो शास्त्रोमा दर्शावेल छे ते प्रमाणे व्यवहार करवो, आजीविका चलाववी, व्यापार करवो, कुटुबरक्षण करवु ते ते लोको माटे न्याय गणाय अने ए प्रमाणे जे धन प्राप्त थाय ते न्यायसपन्न धन कही शकाय. जेमके-वैश्योए व्यापार, व्याज, धारधार आदि, क्षत्रियोए प्रजासरक्षण, अनिति प्रचारनो नाश, शत्रुना भयथी बचाव, दुष्टोनु दमन आदि, ब्राह्मणोए पठन-पाठन, उपदेश, धर्मवृद्धि, धर्मसरक्षण, देवपूजा, मत्रस्मरण, ध्यान आदि, अने शूद्रोए सेवा, कृषि आदि कार्यो द्वारा धन प्राप्त करी तेनाथी आजीविका अने कुटुबसरक्षण करवु, पण उपरोक्त चारे वर्णो तथा पेटाजातिओ ए प्रमाणे वर्तन करता छलप्रपच, चोरी, विश्वासघात आदि निंदक कार्यो न सेवे अने पोताना जातीय नियम प्रमाणे वर्तन करे तो ज ते न्यायी वर्तन कही शकाय.

आम छता पण आचार्य कहे छे के न्यायथी धन उपार्जी ते धननो अमुक भाग व्यवहारसरक्षणमा, अमुक भाग व्यापारमा, अमुक भाग कुटुबपालनमा, अमुक भाग नोकर-चाकर-सेवकोने सतुष्ट राखवामा अने अमुक भाग धर्ममार्गमां खर्च करे तेम ज अमुक भाग निधानस्थ करे, आ प्रमाणे वर्तनार भविष्यमा स्वजींदगीने भयमा नाखतो नथी, किंतु आय करता व्यय अधिक करे, वैश्रमण जेवी स्थिति राखे, कुटुब

अने सेवकोने मनाडे नहीं, धर्मनी उपेक्षा करे तेओ ज परिणामे जोखममा आवी पडे छे ए ज वात आचार्य धर्मबिंदुमा स्पष्ट करीने समजावे छे " पादमायान्निधि कुर्यात, व्यापारादि द्वाराए प्राप्त थयेल पैसानो चोथो भाग निधिपणे स्थापन करवो. "

एटले अहीं आचार्यश्री ज्वनित करे छे के–न्यायथी धन आवेल होय छता जो नोकर–चाकरोने नाराज करी तेनो धर्मकार्यमा व्यय थाय तो ते व्यय सुष्टु धर्मफलने आपी शके नहीं किंतु ए तो उपागहीन धर्म कहवाय, माटे धर्ममा व्यय करनार, दानादि करनार, 'भृत्यानुपरोधतो' सेवक–नोकरोने सताप, खेद, असतोष न थाय तेम करी पछी ज, तेमज मातापिताने पण सतोषी, तेओनी आज्ञामा वर्ती धर्म साधन करे आवी जेओ जींदगीभर दानादि उत्तम कार्यो कर अने मातापितानी उपेक्षा करे, अपमानित करे, सतापे, तेओनी सारसभाळ ले नहीं, आज्ञा माने नहीं तेओ जैनशास्त्र दृष्टिए सर्वागपूर्ण धर्माराधक न गणाय; पण उपागहीन धर्म आराधक ज गणाय छे. एथी तेओने योग्य फल पामवाने अधिकारी नथी मान्या, कारण के धर्मानो प्राथमिक सदाचार शास्त्रो " मातापितृसपूजकः " ए वाक्यथी 'मातापितानी पूजा करनार' एम वर्णवे छे खरु छे के–जेओ परमोपकारी मातापितानो अनादर करे तेओ धर्म अने धर्मोपदेशकोनो अनादर केम न करे ? कारण के जेओ लाखोनी चोरी करे तेओने

सैंकडोनी चोरी करता काइ भय लागे नहीं. आटलु जणाव्या पछी हवे पूर्णांग सहित थोडो पण ते न्यायप्राप्त धननो उप- योग क्या करवो ? ते आचार्य कह छे. "दीनतपस्व्यादौ" उपर कथित रीतथी ते न्यायप्राप्त धन जेओ निराधार होय, अशक्त अने विशिष्ट पापकर्मो सेवनमा असमर्थ होय तेवाओने अने त्यागी, मुमुक्षु, महाव्रतधारी तपस्वीओने आहार, वस्त्र, पात्र, वसति, पुस्तक आदि आपवामा अने अन्य जिनपूजा, सहधर्मीसेवा आदि अनेक पवित्र कार्योमा उपयोग करवो- खर्च करवो. आ रीतथी विवेकदृष्टिए करेलो थोडो पण खर्च महान् फलने-पुण्यानुबन्धी पुण्यने-अर्पनार थाय छे अतएव आचार्य भगवत आ व्ययने-खर्चने महादान एवी संज्ञा आपे छे अर्थात् आ खर्चनी आगल अन्य लाखो तथा क्रोडो खर्ची दान कर्यु होय, जिनमंदिरो, जिनप्रतिमाओ बनावी होय, म्होटी दानशालाओ उभी करी होय, असंख्य अतिथिन सत्कार्या होय, म्होटा सघो अने लाखो सहधर्मीओनी सेवा करी होय तथापि ते दान ज कहेवाय एटले महादानमा जे लाभ थाय ते आ कार्यो करता छता लाभ थाय नहीं आ ज हेतुथी ग्रथकार महर्षिए 'दानमन्यत्तु' उपरोक्त विधान विमुक्त दानो ते दान कहेवाय एम कह्यु परमार्थ ए के-धर्ममा खर्च करनारे आशय, पदार्थ, पात्र अने कालनी पवित्रता तरफ एकान्त लक्ष्य राखवु जोइए तो ज खर्च इष्टसाधक बने

ए रीते उपर 'महादान तथा दान'नु स्वरूप कयु, हवे जिनपूजानु स्वरूप दर्शावे छे.

देवगुणपरिज्ञानात्त-
  द्भावानुगतमुत्तमं विधिना ॥
स्यादादरादियुक्त,
  यत्तद्देवार्चनं चेष्टम् ॥ ५–१४ ॥

मूलार्थ—विधिथी आदर प्रीति श्रद्धापूर्वक वीतराग देवना जे जे वीतरागत्व गुणो होय तेना ज्ञान साथे अने तेमा ज लीनता तथा उत्तम भाव सहित जे अष्टद्रव्य आदिथी भगवतनी पूजा तेनु नाम वास्तविक अने इष्ट पूजा समजवी
" स्पष्टीकरण "

परमनिवृत्तिरूप जे फलोद्देशथी आपणे जेने पूजीए ते देवनु देवत्व शु छे ? पूजाने ते अविरोधपणे योग्य छे के नहीं ? तेनो सुष्ठु विचार करवा जोइये, कारण क तो ज ते समिचीन पूजा कहेवाय अने पूजानु इष्टफल प्राप्त थाय; अन्यथा ते पूजा मात्र ज कहेवाय जैन शास्त्रो सत्रो ने छे के तमे इश्वरनी लीला या चमत्कारो देखी अथवा गाडरीया प्रवाहथी तणाइने तेमज कोइनी प्रेरणा मात्रथी अगर अभारा पर विश्वास राखी देवनी पूजा या मान्यतामा पतगनी माफक अग्निमा झपलावशो नहीं, किंतु प्रथम तेनी तमे काचननी जेम परीक्षा करी इश्वरनु निर्दोष-निष्कलक स्वरूप विचारी-तपासी पछी ज तेने मानजो,

पूजवाने ललचाशो यदि आटलीं तमाराम। सन्मति न होय तो पछी त्यागी अस्वार्थी शुद्धोपदेशक तत्त्वदर्शी महर्षियो जे कह ते ध्यानमां राखी ते प्रमाणे वर्तन करशो तो ज तमे तमारु हित साधी शकशो हरिभद्रसूरिजी तो कह छे के-" पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेष कपिलादिषु । युक्तिमद्वचन यस्य, तस्य कार्यः परिग्रह " ॥ १ ॥ " महावीर परत्वे मने राग नथी ने कपिलादिको प्रति मने द्वेषभाव नथी; परतु जेओनु वचन युक्ति अन प्रमाणादिथी बाधित नथी थतु तेओनु ज वचन स्वीकारवु योग्य छे. " शास्त्रोमा देवना ईश्वर, परमात्मा, परमेश्वर, अचिंत्यशक्ति, अखिलगुणाधीश, सर्व दोषातीत, सर्वज्ञ, वीतराग, जिनेश्वर, तीर्थकर, सच्चिदानदमय विगेरे सहस्रश. नामो प्रसिद्ध छे, एटले आ सर्व नामोनो समन्वय देवमा अवश्य थवो जोइए, अन्यथा ते खाली नामो गोवालना छोकरानु इन्द्र नामना जेम हास्यपात्र गणाय एक बाजु ईश्वरपणानी प्रख्याती अने बीजी बाजु तेवा गुणो न होय तो ते हास्यजनक कम न गणाय ? अने आवु ईश्वरपणु प्राप्त करी कोने पूजवानु मन न ललचाय ? अतएव प्रथम तो ईश्वर देवाधिदेवमा जगतना सर्व अपलक्षणो रहित राग-द्वेष अने अज्ञान चेष्टा विनाना शुद्ध सत्य निराबाध तत्त्ववक्ता तथा सर्वज्ञपणु आ लक्षणो अवश्यमेव सुघटित थवा जोइये. ईश्वरना आ लक्षणोनी परीक्षा तेओनी जीवनक्रीडा, व्यवहार अने उपदेश परथी सुलक्षित थाय छे जेओए पोताना जीवन व्यवहार दरमियान हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार, तृष्णा आदि दुर्गुणोने

कर्तव्य मानी सेव्या नथी, लीला मानी लोकोने तेम करवानो उपदेश आप्यो नथी, भोग्य पदार्थोनी तृष्णामां आसक्तिथी लीन बन्या नथी, भौतिक मायामां लिपटाइ स्वर्गीदगीने व्यतीत करवानी तृष्णा राखी लोकोने आ तो ईश्वरनी अलिप्त लीला छे आवा मपचर्यां उगवानो प्रयत्न कर्यो नथी, किंतु कर्मजन्य उपाधियो वेठी, सुअवसर संसारना प्रपंचने छंडी, राज्य, धन, कुटुंब, स्त्री-पुत्रादि परिवारने वस्त्रे लागेल कचरानी जेम अलग करी, घोरतम तप आदरी, अज्ञ लोकोए उपजावेल असत्य परीसहो, कष्टो, उपद्रवो ताडन, तर्जना, अपमान, उपसर्गोने एकांत क्षमाभावथी, राग-द्वेष विना प्रसन्न अंत:करणथी अडगपणे सहन करी, अनादिना आठे कर्मोने आत्माथी अलग करी, शुद्ध निर्दोष कांचनवत् निष्कलंक आत्मस्वरूपने, अनन्त ज्ञानने जेओए प्राप्त कर्युं, अखिल गुणो प्राप्त कर्या, केवल आत्मिक शुद्ध सच्चिदानंदनी लीलामां मग्न बनी भव्य आत्माओनो उद्धार करवा माटे शुद्ध सन्मार्गनो, शुद्ध निराबाध निर्दोष तत्त्वनो जेओए उपदेश कर्यो तेओ ज परमार्थथी ईश्वर, देवाधिदेव, परमात्मा अने वीतराग नाम धारण करवाने योग्य कहेवाय आ ज देव पतितपावन, जगदुद्धारक, अशरणशरण, वत्सल, हितदायी, संसारभयरक्षक, कृतकृत्य, उत्तमोत्तम परमात्मा कहेवाय अने ते ज परमात्मा विना स्वार्थे जगत्‌ने सन्मार्ग दर्शावी शके उमास्वाती वाचकजीए कयुं छे के-"यस्तु कृतार्थोऽप्युत्तममवाप्य धर्मं परेभ्य उपदिशति। नित्य स उत्तमेभ्योऽप्युत्तम इति पूज्यतम एव" ॥ १ ॥

"जेओ कृतकृत्य बनी उत्तम धर्म प्राप्त करी जीवाओनु कल्याण करवा माप्त सत्धर्मनो उपदेश करे छे तेओ ज खरेखर सर्वदा उत्तमो करता पण उत्तम अने नितान्त पूज्यतम होय."

अतएव आ देवनी पूजा करवी ते ज पूजा कहेवाय. वास्त विक रीते मानवी या देवोनी पूजाने योग्य आ वीतरागदेव सिवाय अन्य कोइ न होइ शके जेने आपणे मोक्षदातत्व बुद्धिथी पूजीए तेमा यदि ते गुण न होय, पोते पण ते स्थानना अनधिकारी होय तो तेओने पूजवानु फल शु ? आथी ज उमास्वाती महाराजे कयु छे के-"तस्मादर्हति पूजामर्हन्नेवो-त्तमोत्तमो लोके। देवर्षिनरेन्द्रेभ्यो पूज्येभ्योऽप्यन्य-सत्त्वानाम्" ॥ १ ॥ जगतमा उत्तमोत्तम अर्हन् देव ज होवाथी ते ज पूजा करवाने योग्य छे, कारण के-देवो, महर्षिओ, नरेन्द्रोने तेओ पूज्य होवाथी अन्य प्राकृतजनोए तो अवश्य तेओनी पूजा करवी जोइए." पूजकोए पूजन करवा पहेला परमेश्वरनु उपरोक्त स्वरूप खास मनन करी तेने ध्यानमा राखवु जोइये, जेथी पूजन करता मननी प्रसन्नता थाय, पूजानो उद्देश बराबर साचवी शकाय अने पूजन शा माटे करु छु ए तत्त्वनु यथार्थ भान थाय वस्तुतः जेओ उपकारी होय, जेओ पासेथी भविष्यमा काइ तत्त्व मेळववानी इच्छा होय तेओनो सुयोग्य उचित सत्कार करवो ए व्यवहारिक नियम पण छे ज्यारे परमात्मा तो अतुलोपकारी, अनन्य असाधारण सुखदाता सांसारिक त्रिविधताप दूर करनार होवाथी

अने तेओ पासेथी ते पदार्थो प्राप्तव्य होवाथी तेओनी पूजा तेओने योग्य अवश्य करवी जोइए ए पूजकोनो धर्म छे योग्यनु योग्य सन्मान करवु ते आपणी योग्यता वधवानु बीज छे, कारण के योग्यने जेटलु आपीये तेनाथी सहस्रगणु पाछु आपणने मळे छे अर्थात् जे पदार्थनी आपणने भविष्यमा चाहना होय तेना माटे ते पदार्थवाननी उचित सेवा–सन्मान-पूजा विगेरे करवा जोइए. आथी ज आचार्य हरिभद्रसूरीश्वरजी पूजानो उपदेश करता पूजकोने कहे छे के– ' देवगुणपरिज्ञानात् ' एटले देवना जे जे अनुकरणीय अने प्राप्तव्य गुणो छे तेनु ज्ञान करवु, तेनो अभ्यास करवो अने पूजा करती वखते तेनी ज भावना करवी, एटलु ज नहीं पण 'तद्भावानुगत' देवना गुणस्मरण–ध्यानमा आत्माने लीन करी शास्त्रोक्त विधिथी उत्तम प्रकार वीतरागदेवनी पूजा करवी, तेमज देव परत्वे अने पूजामा एकान्त आदर आचरण प्रीति सहित पूजा करवी एटले आ पूजा परमार्थ पूजा कहेवाय निदान ए के– ईश्वरपूजन करती वखते ध्याता, ध्येय अने ध्यान आ त्रिपुटीनी एवी तो ऐक्यता थवी जोइए के जेथी शास्त्रोक्त अमृतक्रियानु लक्षण आ पूजामा समन्वित थाय अने ' भ्रमरी–कीटक ' न्याय लागु थइ शके अरे ! उमास्वाती वाचकजी कहे छे ते प्रमाणे पूजा करवाथी उत्तरोत्तर अवश्य लाभ थाय " अभ्यर्चनादर्हतां मनःप्रसादस्ततः समाधिश्च । तस्मादपि

निःश्रेयसमतो हि तत्पूजनं न्याय्यं " ॥१॥ "वीतराग देवनी पूजा करवाथी प्रथम मननी प्रसन्नता वधे, त्यारपछी तेथी समाधिशान्ति एटले कषायो दूर थाय अने ते पछी एकान्त निःश्रेयस–मोक्ष प्राप्त थाय माटे वीतरागदेवनी पूजा करवी, ए न्याययुक्त गणाय " परंतु आ पूजानुं प्रकरण प्रथम कहेल महादान अने दानना प्रकरण पछी जणाव्युं होवाथी महादाननी योग्यता प्राप्त करवा आचार्ये जे जणाव्युं ते योग्यता पूजकोमां प्रथम अवश्य आववी जोईए ए योग्यता आव्या बाद आ वास्तविक पूजानो अधिकार आत्मा पामी शके; अन्यथा ते पूजा ज गणाय नहीं जेथी ज ग्रंथकारे मूलमां अहीं ' उत्तम विधिना ' आ पदो पर वधारे वजन आप्युं छे परमार्थ ए के–न्यायप्राप्त सेवकोने अविरोधी अने वडीलनी आज्ञा मुद्रित होय तो ज उत्तम अने विधिपूर्वक वीतरागपूजा कहेवाय

उपर आपणे जे वात विचारी गया तेनी ज प्रकारांतरथी फरी पुष्टि करे छे, अथवा उपाध्यायजी कहे छे के–ए ज वात अन्यत्र कही छे तेनो अतिदेश–भळामण अहीं प्रस्तुत ग्रंथकर्ता कहे छे

एवं गुरुसेवादि च,

काले सद्योगविघ्नवर्जनया ॥

इत्यादि कृत्यकरणं,
लोकोत्तरतत्त्वसम्प्राप्तिः ॥ ५-१५ ॥

मूलार्थ—विधिथी जेम पूजानु कह्यु तेम विधिथी धर्माचार्य आदिनी सेवा, भक्ति, पूजा विगेरे करवी, अने योग्य अवसरे स्वाध्याय, ध्यान, पठन आदि धर्मव्यापारो विघ्नोअन्तरायोने दूर करी करवा इत्यादि उपर कथित कार्योनु विधान करवाथी लोकोत्तरतत्त्वनी प्राप्ति थाय अर्थात् आनु ज नाम लोकोत्तरतत्त्वनो लाभ कह्यो छे

" स्पष्टीकरण "

देवनी पूजानु स्वरूप उपर विस्तारथी विचारी गया. हवे गुरुसेवा आदि कार्यो केम करवा ते विचार आचार्यश्री अहीं जणावे छे जे वात अन्यत्र कही जे ते ज अहीं पुष्टि माटे दर्शावे छे अथवा देवनु यथार्थ स्वरूप, पूजानु यथार्थ रूप धर्माचार्यो पासेथी ज उपलब्ध थाय छे, माटे गुरुभक्तिनु स्वरूप अहीं जणावे छे. शास्त्रोक्त विधिथी पूजा करवानु शास्त्रोमा जेम कह्यु छे तेम गुरुसेवा, भक्ति, पूजा पण विधिपूर्वक ज करवी एटले धर्माचार्यो–त्यागी, शुद्ध सन्मार्गदर्शक गुरुओ–नी आहार, पात्र, औषध, मकान आदिथी शुश्रूषा विधिथी करवी भावार्थ ए के–गुरु सन्मुख जवु, पाच अभिगमो साचववा, गुरुने आहारादि माटे निमंत्रणा करवी, आहार लेवा आवे ते समये सामे जवु, पछी वदना करी अब्भुठ्ठियो खामी विनय, सरलता,

उदारता, भक्तिनो अतिरेक, प्रमोदना अनुसह अहोभाग्य मानी न्यायप्राप्त कल्पनीय आहारादि गुरुपात्रमां मूकवा, अल्पमां अल्प सात पगलां गुरुने वळाववा जवु, वारवार सुखशाता पूछवी, विनयथी धर्मचर्चा करवी, तथा पठन, पाठन, स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग आदि क्रियाओ करवी तेमज प्रतिक्रमण प्रतिलेखना पण उचितकाले करवी शास्त्रमां जे जे क्रियाओ जे जे काले करवानो उपदेश कर्यो छे ते ते क्रियाओ करवी.

आ क्रियाओ पण अनेक प्रकारनी वचमां आवती स्ख लनाओने दूर करी, विघ्नो–अंतरायोथी अडग रही करवी. निदान ए के–धर्मक्रियानु आचरण करतां अवश्य परीषहो, कष्टो, अपमानो, प्रमादो, विकथाओ विगेरे अनेक अंतरायो धर्मक्रियाथी चलित करवा अकस्मात् आडे आवे पण ते सर्वने दूर करी निर्भय बनी पुरुषार्थपूर्वक उपरोक्त धर्मक्रियानु आ चरन, पालन, अभ्यास विगेरे करवा. आ कार्योनी ए रीते प्राप्ति थवाथी एटले ए कार्यो आचरवाथी ग्रंथकर्ता कहे छे के आनु नाम लोकोत्तरतत्त्वप्राप्ति थइ कहवाय अर्थात् ए प्रमाणे वर्तन करवु तेनु ज नाम लोकोत्तरतत्त्व छे ए सिवाय अन्यने लोकोत्तरतत्त्वनी संज्ञा नथी यशोविजयजी महाराज कहे छे के–विधिसह दान पूजा अने सेवानु आचरण करवाथी ते ज महादान, इष्टपूजा अने सत्सेवा ए नामथी आ क्रियाओ अंकित थाय छे

आ सर्व केम प्राप्त थाय ? तेनो अहीं खुलासो करे छे.

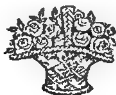
इतरेतरसापेक्षा त्वेषा,
पुनराप्तवचनपरिणत्या ॥
भवति यथोदितनीत्या,
पुंसा पुण्यानुभावेन ॥ ५–१६ ॥

मूलार्थ—उपर कहेल सर्व क्रियाओ परस्पर सापेक्ष होवाथी, उपरोक्त स्वरूपवाली अने परस्पर अपेक्षा राखनारी आ सर्व क्रियाओनी प्राप्ति पुरुषोने पुण्यानुभावथी अने सिद्धान्तवचन परिणमवाथी थाय छे

" स्पष्टीकरण "

शास्त्रोक्त विधिसह एक सुष्ठु क्रिया प्राप्त थाय तो तमाम क्रियाओ सुष्ठु अने विधि युक्त प्राप्त थाय, तेमज एक क्रिया विधि रहित अने अशोभन होय तो सर्व क्रियाओ अविधिवाली अने अशोभन होय, आ वात अहीं दर्शावे छे, कारण के–दान, पूजा, सेवा आदि कार्योनु शास्त्रोक्त विधान परस्पर एवु तो गुथाएल छे के जे महानुभावने सिद्धान्त वचनो बराबर परिणम्या–सिद्धान्तवचनमां अपूर्व श्रद्धा प्राप्त थइ ते महानुभावने शास्त्र आधारथी, एक ज क्रियामां कुशलता प्राप्त थवाथी सर्व क्रियाओनी कुशलता प्राप्त थवामां काई अंतराय नडतो नथी एटले आ सर्व क्रियाओ एक बीजानी अपेक्षा राखे छे जेमके महादान नामक क्रियामां न्यायवर्तन, पोष्यवर्गनो अविरोध, मातापितानी आज्ञा, आशयनी पवित्रता,

उदारता आदि गुणोनी अपेक्षा होय छे ते ज गुणोनी जिनपूजा, गुरुसेवामां पण आवश्यकता छे अने आ क्रियानी निर्मलता सिद्धान्तवचन परिणमवाथी, तेना पण सद्भाव प्राप्त थवाथी ज थाय छे. तेम ज शास्त्रकार आचार्य कहे छे के-सद्बुद्धिना हेतुभूत पुण्यविपाकनो ज्यारे उदय थाय त्यारे ज जिनेश्वरना आगममां अपूर्व श्रद्धा प्रगटे, अने पूर्वे जे प्रमाणे महादान, इष्टपूजा अने सत्गुरुसेवानुं स्वरूप कह्युं छे ते प्रमाणे मनुष्योने अविरोधपणे आ शुभ क्रियाओनी बराबर प्राप्ति थाय छे आ प्रमाणे एक ज क्रिया अन्य क्रियाने बाधा न उपजावे तेवी ज्यारे प्राप्त थाय त्यारे ज ते लोकोत्तरक्रिया कहेवाय, अने अन्य क्रिया साथे एक विरोध करनारी प्राप्त थाय तो ते लौकिकक्रिया कहेवाय निदान ए के-उपर दर्शित अविरोधीनी विधिसह क्रियानी प्राप्ति आगमवचन परिणमवाथी अने महापुण्योदयथी, प्रत्येक क्रियानो परस्पर सुघटित संबंध साधववाथी तेम ज विधिनो अनुराग धारवाथी थाय छे



(६) जिनमंदिरषोडशकम्

आगलना प्रकरणमां 'लोकोत्तरतत्त्व' शुं अने तेनी प्राप्ति कोने तथा शाथी थाय ? ए वात कही, एटले सामान्य धर्मनी सिद्धि थया पछी लोकोत्तरतत्त्व प्राप्त थाय एम जणाव्युं. आथी आत्मा जिनमार्गमां आगल वधवाने अने उत्तरोत्तर परम गुणो इष्टकार्यसिद्धि करवाने योग्यतावालो थाय. निदान ए के-खरी लायकात तेमां आवे एम प्रतिपादन कर्युं. लायकात वगरनी वीतरागदर्शित क्रियाकुशलता उच्च गृहीजीवन अगर त्यागीजीवननो अधिकार उपलब्ध थाय तो पण ते भाडुती जीवन तुल्य होवाथी इष्टफल कदापि अर्पे नहीं, अतएव आ छट्ठा प्रकरणमां श्रीमान् हरिभद्रसूरिजी भगवान लोकोत्तरतत्त्व आत्माने प्राप्त थया पछी आत्मा कया कया कार्यो करवाने अने कया स्थाने बिराजवाने अधिकारी थाय तेनुं व्यक्तस्वरूप विस्तारथी प्रतिपादन करे छे

अस्यां सत्यां नियमाद्वि-
धिवज्जिनभवनकारणविधान ॥
सिद्धयति परमफलमल,
ह्यधिकार्यारंभकत्वेन ॥ ६–१ ॥

मूलार्थ—आ उपर दर्शित 'लोकोत्तरतत्त्वनी' प्राप्ति थया पछी धर्मी आत्मा स्वयं विधिपूर्वक

मंदिर अन्य पासे करावे अने पोते जिनभवनना जे जे कारणो होय तेने प्राप्त करे. आथी अधिकारीए आ कार्य आरम्भु होवाथी तेने अतिशय परमफलनी सिद्धि थाय.

" स्पष्टीकरण "

प्रथम सामान्य धर्मना गुणो औदार्य आदि प्राप्त थाय, त्यारबाद सिद्धान्तवचननो प्रेम, परमश्रद्धा अने परिणमन थया पछी विधिनो बोध, आदर, करणप्रीति तथा क्रमशः विधिसह क्रियाकुशलता तेम ज प्रत्येक क्रियानो विधिबोध थाय, एटले महादान, इष्टपूजा, सत्सेवा-आ प्रमाणे आत्मशुद्धि अने एकान्त कर्मक्षयकारक लोकोत्तरतत्त्वनी परमगुणनी प्राप्ति थाय जेने आ प्रमाणे क्रमशः अथवा उत्क्रमथी ए गुणो हृदयगम थाय ते अवश्यमेव स्वोपार्जित धन चपल, शरीर, विनश्वर धारी तेनो महादानमां, जिनपूजामां अने गुरुभक्तिमां उत्साहथी व्यय करे, धर्मवृद्धि, समकितप्राप्ति-संरक्षण अने तेनी शुद्धि तेम ज शासनप्रभावना विगेरे कार्यो स्वजींदगीमां अनेक वार ते धनथी करे, एटले वस्तुत धन उपर आ आत्मा गाढ मोह राखे नहीं. छेवटे वीतरागदेवनी महापूजाना लोभथी पोतानी कुटुम्बनी अने समान धर्मीओनी सरलता माटे नित्य धर्मवृद्धि थाय ते सारु अने आत्मानी पवित्र भावना बनी रहे तेमज कुटुंबीयो धर्म अने स्वकर्तव्यथी च्यूत न थाय ते माटे तथा समकितनी निर्मलता-उज्वलता माटे शास्त्रकर्ता कहे छे के-' **नियमात्** ' निश्चयथी अथवा

योग्यता आववाथी आ आत्मा जिनमंदिर अन्य कारीगरो पासे कराने ते पण जेम तेम नहीं, किन्तु पोते सिद्धान्तप्रेमी होवाथी ' विधिवत् ' शास्त्रमा जे विधिथी अने जेवी योग्यता प्राप्त कर्या पछी करवानु जणाव्यु ते प्रमाणे बनावे, एटलु ज नहीं परतु पोते स्वय जिनभवनमा जे जे साधनो–बाह्य अथवा आभ्यन्तर साधनो–जोइए तेनु संपादन करे अर्थात् खरी लायकात प्राप्त करे आ प्रमाणे वर्तन करवाथी शु फल थाय ? ते ग्रथकार उत्तरार्धथी जणावे छे एटले उपर कह्या प्रमाणे ' लोकोत्तरतत्त्व ' प्राप्त थवाथी योग्यता आवे अने तेथी–' अधिकारीत्वेनैव ' एटले अधिकारी शास्त्रोक्त योग्यतावालो आत्मा आ जिनमंदिर विधिपूर्वक बनावे छे, एटले अतिशय महान् उत्कृष्ट फल जे मोक्षफल अथवा तीर्थकर-गोत्रबंधरूप फल अगर निर्दोष सम्यक्त्वरूप फल निदानतया तेने उपलब्ध थाय छे

आ श्लोकमा आचार्यदेवे ' लोकोत्तरतत्त्व ' मळ्या पछी शास्त्रोक्त अधिकारीपणु प्राप्त करी अन्य पासे जिनमंदिर कराने अने पोते जिनमंदिर योग्य बाह्य तथा आभ्यतर पवित्र साधननु संपादन करे तेम कह्यु अतएव शास्त्रमा केवा गुणवालो जिनमंदिर कराववाने योग्य गण्यो छे ? ए प्रश्ननो खुलासो ग्रंथकर्ता अहीं करे छे

न्यायार्जितवित्तेशो,

मतिमान् स्फीताशय•सदाचार• ॥

गुर्वादिमतो जिनभवन-
कारणस्याधिकारीति ॥ ९-२ ॥

मूलार्थ—न्यायोपार्जित धनवाने, बुद्धिमाने, पवित्र आशयवाने अने सदाचारी तेमज मातापिता तेमज वडिलो, राजा अमात्य आदिने मान्य एवा आत्माने वीतरागदेवनु मदिर कराववा शास्त्रकारोए अधिकारी मान्यो छे

" स्पष्टीकरण "

धनवान् अने गमे तेवी लायकात वगरनो आत्मा ममत्व, इर्ष्या अथवा मानप्रिय बनी जिनमदिर करावे छे, तो भविष्यमा तेने अगर तेना कुटुम्बने, औसवने ते मदिर पर एटली दरकार होती नथी आयदे ते मदिर भारभूत आशातनामय अने एज कर्मबधनु कारणभूत बने छे, तथा बनावनार पवित्र हेतुथी अथवा पवित्र आशयथी अने न्यायथी करावनार न होवाथी ते मदिर अन्यने कल्याणभूत कदापि बनतु नथी अन्याय तथा दुष्टबुद्धियी करेलु एक गृहस्थ जीवननु सामान्य कार्य पण ज्यारे आत्माने शातपणे बेसवा देतु नथी तो आवु जिनमदिर पण उन्नतिमा क्याथी हेतुभूत थाय ? अतएव जिनमदिर करावनारे केवल धनपतिपणानो ज मोह न धरता आ श्लोकमा दर्शित योग्यता मेळववा तरफ लक्ष्य राखवु, एम ग्रथकर्ता प्रतिपादक रीतिथी गर्भित उपदेश करे छे एटले के आ श्लोकमा जिनमदिर करावनारी योग्यतावाला माटे जे पाच विशेषणो आप्या छे ते पूरेपूरी रीतथी

आत्मा प्राप्त करे त्यारबाद ज जिनमंदिर पोते स्व अने परना कल्याण माटे बधावी शके, अन्यथा जिनमंदिर बधावना पूरतु ज कार्य कर्युं कहेवाय

धनवान ज जिनमंदिर बधावी शके ए वात खरी अने धन विना मंदिर विगेरे एक पण कार्य थइ शके नहीं ए तो जाणीतु छे, पण जिनमंदिर जेवा पवित्र कार्यो बधा धनथी थाय तो स्वपरने आपदे कल्याणकारी थाय एनो खुलासो शास्त्रकर्ता प्रथम ज करे छे–'न्यायार्जितवित्तेशो' जेणे स्वर्गादिगीमा पोताना कुलपरंपरागत व्यवहारथी छल कपट, विश्वासघात, चोरी अने बीजा निंदनीय व्यापारो विना धन पेदा कर्युं होय ते ज न्यायप्राप्त धन कहेवाय. आवु धन जेना पासे होय ते ज मनुष्य वीतराग देवनु मंदिर बधावी शके अने पूजा तथा महादानना फलने पामवाने योग्य गणाय, कारण के न्यायप्राप्त धनथी करेलु अल्प पण पुण्यकार्य पुण्या नुबंधी पुण्यनु कारण थाय एम महर्षिओ कहे छे आम छता॰ पण जो हित अने अहितनो विभाग करवानी अकल न होय अर्थात् कल्याणकारी शु छे एटलो पण जेने विवेक न होय तो ते न्यायप्राप्त धननो सदुपयोग बधाथी करी शके ? एटले ज–'मतिमान्' आ धननो हु बधा व्यय करु तो भविष्यमां मारु एकान्त कल्याण थाय एवी जेनी सन्मति होय, तेमा पण कार्य करवा पहेला सन्मति उपजे अने कार्य शरु कर्या पछी अगर कार्य बनी गया पछी आ मे शु कर्यु ? मारु धन बधु खर्चाइ गयो ? हवे हु शु करीश ? एवी एवी अनेक धार-

गाओ–विचारो न थाय माटे रह छे के–' स्फीताशय '
कार्यनी शरूआतथी माडी कार्य थइ रहे त्यासुधी अने आगल
उपर पण जेना परिणामो मंदिर आदि धार्मिक कार्योमा अनु
क्रमे चढता ज रह, तथा ' सदाचार ' सदाचारो–उत्तम
आचारवान् होय ते. सदाचारनु स्वरूप योगबिन्दु प्रकरणमा
आ प्रमाणे पण छे–" लोकापवादभीरुत्व दीनाभ्यु
द्धरणादर' । कृतज्ञता सुदाक्षिण्य, सदाचार' प्रकी
र्तितः ॥ १ ॥ सर्वत्र निन्दासत्यागो, वर्णवादश्च
साधुषु । आपद्यदैन्यमत्यन्त तद्वत्सम्पदि नम्रता
॥ २ ॥ प्रस्तावे मितभाषित्व–मविसंवादन तथा ।
प्रतिपन्नक्रिया चेति, कुलधर्मानुपालनम् ॥ ३ ॥ अ-
सद्व्ययपरित्याग , स्थाने चैतत्क्रिया सदा । प्रधान
कार्ये निर्बन्धः, प्रमादस्य विवर्जनम् ॥ ४ ॥ लोका-
चारानुवृत्तिश्च, सर्वत्रौचित्यपालनम् । प्रवृत्तिर्गर्हि-
तेनेति, प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥ ५ ॥ दुनाया तरफना
अपवादथी नित्य भीरु, दीन–अनाथनो उद्धार करवामा प्रेम,
आपणा पर करेल अन्य जनोनो उपकार जाणवो–मानवो,
उत्तम दाक्षिण्यता–आ सर्वे सदाचारो कह्या छे, तथा सर्वत्र
अने सर्वनी निंदानो त्याग, उत्तम साधुजनोनी प्रशसा, कष्ट
वखते अतिशय अदीनता अने सपत्ति अवस्थामा नम्र परिणाम,
सुअवसरे अल्प भाषण, कोइनी पण साथे विवाद–क्लेशमा
नहीं उतरवु, स्वीकृत कार्यनु आखिरतक पालन, तेमज कुल-
धर्मनी बराबर सेवा, खोटा खर्चा बध करवा–नहीं करवा, देवपूजा,

गुरुसेवा, दानादि कार्योमा लक्ष्मीनो नित्य व्यय, विशिष्ट फल दायी कार्योमा आग्रह राखवो अने प्रमादनो त्याग करवो, घणा लोकोमां रूढ तथा अविरुद्ध लोकव्यवहारनु पालन करवु, स्वपक्ष अथवा परपक्षमा एटले स्वजाति के परजाति, स्वकुटुंब के परकुटुंबमा सर्वत्र उचित आचारनु पालन करवु अने आ लोक परलोकमा निंदनीय कार्यो मायो नाश पामे तो पण करवा नहीं " आ सर्व धर्मीयोना सज्जनोना सदाचारो शास्त्रमा कथा छे आ सदाचार जेमा होय ते आत्मा अने– 'गुर्वादिमतः' माता, पिता, वडिलो, राजा, अमात्य आदि सर्वेने माननीय होय ते ज पुरुष जिनमंदिर बधावी शके अर्थात् ते ज अहीं अधिकारी मान्यो छे आथी [redacted] आचार्यदेवे 'अधिकारीति' ए अंतिम पदथी आवो मनुष्य जिनभवन बधाववाने अधिकारी समजवो एम स्पष्ट निर्देश करे छे अहीं ग्रंथकार अंतमा 'इति' पदथी ध्वनित करे छे के–शास्त्राज्ञार्थी परमशुद्ध अने अधिकारी आ पांच विशेषणविशिष्ट आत्मा ज होय आ परथी लेभागु अने केवल धनवानो जे कांई पवित्र कार्यना हकदार बनी जइ लाखोना खर्चथी जिनमंदिरादि बनाववानो लाहो लेवा तत्पर थइ जाय छे अने उपरोक्त गुणो के शास्त्रीय आज्ञा तरफ ख्याल सरखो नथी करता ए कोइ पण रीते योग्य नथी उपरोक्त योग्यता प्राप्त करी, तेने लक्ष्यमा राखी यदि जिनमंदिरो बधावाय तो शास्त्राज्ञाना सरणा साथे परम कल्याणरूप इष्टफल नितान्ततया स्वपरने प्राप्त थाय ज.

अन्य पासे जिनभवन बधावबु अने पोते तेना कारणो एकत्र करवा एम पहेला श्लोकमा कह्यु हतु तो जिनभवनमा साधनभूत क्या कारणो एकत्र करवा तेनु स्वरूप अहीं आचार्य स्पष्ट करे छे

कारणविधानमेत–
शुद्धा भूमिर्दलं च दार्वादि ॥
भृतकानतिसंधान,
स्वाशयवृद्धि. समासेन ॥ ६–२ ॥

मूलार्थ—जिनभवन निष्पन्निना कारणकलापोनु संक्षेपथी विधान आ प्रमाणे जाणवु–शुद्ध भूमि, शुद्ध काष्ठ आदि दळो, नोकर, चाकरो अने मजूरोने संतोषवा, तथा पोताना पवित्र आशयनी उत्तरोत्तर वृद्धि करवी.

" स्पष्टीकरण "

आ श्लोकथी ग्रंथकार जिनभवन बांधवामा उपयोगी अंगोनु संक्षेपथी वर्णन करे छे, एटले के जे साधनोवडे जिन भवनरूप कार्य बनी शके, कारणोनु विशिष्ट भान थाय त्यार-पछी तेनी विशिष्ट शुद्धि करवाथी कार्य पण विशिष्ट शुद्ध तैयार थाय, माटे अहीं कारण विधाननो उपदेश आप्यो छे अहींया जे जे कारणो दर्शाव्या छे ते प्रत्येकनु स्वरूप अने तेनी शुद्धि केम साचववी ? ते तो ग्रंथकार महाराज पोते ज

आगळ पर विस्तारथी दर्शावशे आर्या अहीं तो द्वाररूप टूंक ज वर्णन कर्युं अर्थात् केवल कारणोनी संख्या मात्र अहीं दर्शावी छे जिनभवन बांधवा पहेलां भविकोए जिनभवन योग्य भूमिनी शुद्धि करवी, तथा काष्ट, पत्थर आदि पदार्थो शुद्ध निर्दोष लेवा, जिनप्रासाद बांधनार कारीगरो-मजूरोने खुशी राखवा, तेओने कोई प्रकारे ठगवा नहीं अने बंधावनारे पोतानुं चित्त उदार तथा पवित्र, निर्दोष, उज्वल विचारमय राखवुं, एटलुं ज नहीं पण उत्तरोत्तर अधिक सुंदर चित्त राखवुं.

पृथ्वीनी शुद्धि करवानुं जणाव्युं तो केवी रीते शुद्धि करवी ? अने केवी पृथ्वी जिनप्रासाद बांधवाना कार्यमां लेवी ? ते स्पष्ट करे छे.

शुद्धा तु वास्तुविद्या-
विहितासन्न्यायतश्च योपात्ता ॥
न परोपतापहेतुश्च,
सा जिनेन्द्रैः समाख्याता ॥ ६-४ ॥

मूलार्थ—वास्तुशास्त्रनी विद्याथी विहित होय अने शोभन न्यायथी जे पृथ्वी प्राप्त थइ होय तेमज जे पृथ्वी अन्यने क्लेश उपजावीने लीधी न होय ते ज पृथ्वी जिनेश्वरोए जिनभवन माटे योग्य कही छे.

" स्पष्टीकरण "

वास्तुशास्त्रमां जे प्रकारे विधि कही छे ते प्रकारे प्रथम पृथ्वीनी शुद्धि करवी, एटले जे भूमाग पर जिनमदिर बाधवु होय ते स्थलमां मुडदा के अस्थिओ न होय तेम चोतरफथी तपास करी निःशल्य भूमागमा जिनमदिर बाधवु. आ भूमाग पण सन्न्याय प्राप्त धनथी खरीदीने लेवो अने पृथ्वीना मालीकने यथेष्टपणे सतुष्ट करवो निदान ए के–जे पृथ्वी माटे किंचित् पण अन्यायने स्थान न मळे अने न्यायथी ज लीधी होय, तथा ते भूमागनी आसपास कोइ गृहस्थ जन रहेवा होय तेओनी एक अगुल मात्र पण जमीन जेमा दबाय नहीं, तेओने यत्किंचित् पण क्लेश, दुःख के उद्वेग थाय नहीं–आ विधिथी प्राप्त जमीन शुद्ध भूमि कहेवाय. जिनेश्वरदेवो जिनमदिर माटे आवी'ज भूमि योग्य कहे छे हेतु ए के–आवी जमीन पर जिनमदिर बाध्यु होय तो ते कल्याणमय अने शास्त्रोक्त विधानवाळु कहेवाय आ परथी मदिरना ट्रस्टियो मदिरनी पासेनी जमीन धर्ममा जाय छे, एम मानी दबाववा प्रथम प्रयत्न करे छे, कोइ पण गृही मरवानी अणी पर होय त्या कपट करी तेना कुटुबीयोने रडता राखी तेना मकानो, मिल्कतो मदिरमा लेवा प्रयत्न करे छे, श्रावकधर्म विरुद्ध कर्मोथी पैसा एकत्र करी जिनधन वधारवानी घेलछा राखे छे ते नितान्त शास्त्रविरुद्ध अने कर्मबधक छे एम स्पष्ट थाय छे एटले आ रीति तो नितान्त अनुचित ज कहेवाय. आथी शास्त्रो उपदेशे छे के–जिन-

आज्ञा विरुद्धपणे जिनद्रव्य वधारे तो आत्मा अनन्तसंसारी थाय छे, ए वाक्य खास मननीय छे.

जिनमंदिर माटे जे जमीन जोइए तेमां आटली विधि साचववानुं शुं कारण ? तेनो हेतु ग्रंथकार खुल्लो करे छे.

शास्त्रबहुमानत खलु,
सच्चेष्टातश्च धर्मनिष्पत्तिः ॥
परपीडात्यागेन च,
विपर्ययात्पापसिद्धिरिति ॥ ६–५ ॥

मूलार्थ—विधिदर्शक वास्तुशास्त्रनु बहुमान करवाथी अने अन्यने पराभव न उपजाववाथी तेमन बीजाने क्लेश न उपजाववाथी निश्चयथी धर्मसिद्धि थाय, अने आथी विरुद्ध वर्तन करवाथी पापसिद्धि थाय.

" स्पष्टीकरण "

वास्तुशास्त्रमा जे विधि जिनभवन बनाववानी कही छे ते प्रमाणे अनुसरण करवाथी शास्त्रविधिनु बहुमान सचवाय धर्माए शास्त्रनु बहुमान अवश्य करवु ए तो सामान्य नियम छे, तथाप्रकारे वर्तवाथी निर्दोष भाववर्धक जिनभवन पण तैयार थाय छे अने तेथी ज धर्मनिष्पत्ति पण सिद्ध थाय; तेमज जिनभवन आदि कार्यो साधता प्रथम ते कार्यो करवाथी

यदि अन्यनो अभिभव थतो होय, बीजाओने दुःख थतु होय, काइ नुकशान थतु होय अगर पीडा के क्लेश थता होय तो अवश्य तेनो त्याग करवो जोइए निदान ए के-कोइने पण अभिभव के क्लेश उपजाव्या वगर अने सर्वेने संतोष पमाडी जिनभवन बंधाववु तो ज धर्मनिष्पत्ति थाय. अन्यथा शास्त्रकार कहे छे के-जे प्रवृत्तिमा शास्त्रबहुमान न सचवाय, परनो पराभव थाय, अन्यने क्लेशो थाय तो ते पापनिष्पत्ति कारक ज गणाय यशोविजयजी महाराज कहे छे के-जे हेतुओ धर्मसिद्धिकारक कह्या छे ते ज हेतुओ विरुद्ध वर्तन करवाथी पापकारक बने छे, कारण के जे मात्राओ शरीरनी पुष्टि करे छे ते ज मात्राओ अपथ्य करवाथी शरीरनी क्षीणता करे ए अनुभवसिद्ध छे

उपर प्रमाणे एटलु ज नहीं पण आ प्रमाणे करवाथी धर्मनिष्पत्ति थाय छे यथा—

> तत्रासन्नोऽपि जनो-
> ऽसंबन्ध्यपि दानमानसत्कारैः ॥
> कुशलाशयवान् कार्यो,
> नियमाद् बोध्यगमयमस्य ॥ ६–६ ॥

मूलार्थ.—जिनप्रासाद बांधती वखते स्वजनादि संबंध-शून्य लोको त्या आसपास रहेता होय तेमनो पण अवश्य

अशनादिवडे मान अने सत्कारथी सन्मान करी ते लोको जैनधर्मनी प्रशंसा करनार सुंदर परिणामवाला थाय तेम करवु, कारण के आवु वर्तन राखवु ते खास समकितप्राप्तिनु अंग बने छे.

" स्पष्टीकरण "

जिनमंदिर स्व अने परने बोधिप्राप्ति अथवा तेनु रक्षण तेमज उज्वलता करवा माटे बंधावाय छे आ समकितनो लाभ, रक्षण अथवा उद्दीपन विगेरे पोताना कुशल परिणामो रनवाथी, अन्यने शुभ परिणामवान् करवाथी, धर्मनी प्रशंसा करवाथी-करावथी थाय. जे कार्यमा कर्तानु हृदय शुभ न होय, नजीकना लोकोनी प्रसन्नता न होय, अन्य लोकोने अनुमोदनीय न थाय ते कार्य आपदे हितकारी अथवा लाभदायी कदापि थाय नहीं. जिनमतमा जे जे कार्यो कल्याण अने लाभदायी मान्या छे ते सर्व स्वहृदयनी प्रसन्नता अने परने अनुमोदनीयना आधार उपरजरवाथी ज थाय. निदान ए के-हृदयनी विपुलता अने उच्चता विना जिनमतना कल्याणकारी कार्योनो लाभ थाय नहीं अतएव भगवान् हरिभद्रसूरिजी कहे छे के-जिनमंदिर बंधावनार केवल पृथ्वी, काष्ठोनी ज शुद्धि करी बांधनार कारीगरोने खुश करी अने शुद्धिनु रक्षण कर्यु एटलाथी संतोष मानवो नहीं, किन्तु जिनमंदिर बांधतां वखते अने बांध्या पछी त्यां आसपास निवास करनार जे लोको होय, ते स्वजातीय अगर परजातीय एवं स्वजनादि सर्व

वगरना होय, पोताना कार्यमा मददगार न थाय तेवा होय तो पण ते सर्वेनो अशन, पान, खादिम, स्वादिम आदि पदार्थो आपीने, नमस्कार, अञ्जली, विनय, नम्रताथी सन्मान करीने, आसनादिथी सत्कार करीने अवश्य सत्कार करवो, तेओने खुश करवा. तेओ पण जिनमंदिर आदि कार्यो अने आपणी धर्मप्रवृत्ति देखी "अहो ! धन्य छे आ जैनधर्मने ! धन्य छे आ जैनोने ! ! के जे धर्ममा, जे लोकोमा, आटलो विवेक रह्यो छे, आटली उचितता रही छे " आ प्रमाणे प्रशंसा करे अने परिणामे सरल परिणामी थई तेओ जैनधर्मनु गौरव करी रागी थाय अने छेवटे धर्म पामी मार्ग पर आवे. अर्थात् वाचनाग्नी आ प्रवृत्तिथी अन्य लोको शुभ अध्यवसाय पामी बोधिनो लाभ करे, पोताना समकितनी शुद्धि थाय, लोको जैनधर्मनी प्रशंसा करे, अनुमोदन–अनुसरण करे, अनएव धर्म साधता थका अन्यने शुभ परिणामो करवाथी बोधिसाधननु आ एक अगत्यनु अंग छे

जिनमंदिरमा पत्थर आदि जे जोइए तेनी शुद्धि केम करवी ? तेनो उपदेश ग्रंथकर्ता आ प्रमाणे करे छे

दलमिष्टकादि तदपि च,
शुद्धं तत्कारिवर्गतः क्रीतम् ॥
उचितक्रयेण यत्स्यादा-
नीतं चैव विधिना तु ॥ ६–७ ॥

मूलार्थः—दल एटले इट, पाषाण, चूनो विगेरे ते पण शुद्ध, अर्थात् तेने उपजावनार पासेथी उचित मूल्य आपी खरीद्या होय अने भार वहन करनारने उचित मूल्य आपी तेओने अधिक खेद–क्लेश न थाय तेवी रीते लावेला होय ते ज जिनमंदिर करवामा उपयोगी थाय

" स्पष्टीकरण "

मंदिर बधाववामा जे जे पदार्थो जोइए ते ते केवा लेवा ? तेनो प्रकार ग्रंथकर्ता जणावे छे मंदिर माटे चूनो, इट, पत्थर के लाकडा विगेरे जे जोइए ते तेने बनाववावाला लोको पासेथी उचित मूल्य आपी एटले लोक व्यवहारमा जे पैसा ठरेला होय तेटला पैसा आपी लेवा, परतु धर्मादानु काम छे माटे भावमां खेंचताण करी, ओछा–वत्ता करी अगर भाडु अवळु समजावी लेवा नहीं, तेम ज छल, प्रपच, विश्वासघात करी लेवा नहीं तथा आ पदार्थो पण वेचनार पोताना व्यापार अर्थे तैयार करेल होय तेवा ज लेवा, परतु खास मंदिर माटे भट्ठीयो करी, खोदावी, आरभादि करी लेवा उचित नथी. ए ज वात यशोविजयजी स्वकृत टीकामा कहे छे—" स्वप्रयोजनसिद्धयर्थमेवेष्टकादिकरणशीलाना पुरुषाणां " एवी ज रीते आ पदार्थो ज्यांथी लाववा होय त्यांथी जे लोको गाडामा अथवा जानवर उपर लादीने लावे ते लोकोने पण बरोबर भाडु आपी, जानवर अथवा मजूरने अधिक दुःख न [illegible] निंदा न करे, व्यवहारमा अनु-

चित न देखाय तेवी रीते मगाववा आ रीतना ज पदार्थो मदिरना कार्यमा उपयोगी थाय, आथी उलटी रीते करवाथी अविधि लागे, कुशलाशयनी हानी थाय तेम ज लोकोमा जैनधर्मनी निंदा थाय.

यदि मंदिर अर्थे काष्ठनी आवश्यकता होय तो ते केवा लेवा ? ए दर्शावे छे.

दार्वपि च शुद्धमिह
यत्नानीत देवताद्युपवनादे. ॥
प्रगुण सारवदभिनव-
मुच्चैर्ग्रन्थ्यादिरहित च ॥ ६–८ ॥

मूलार्थ —काष्ठो पण अहीं शुद्ध प्रयत्नपूर्वक देवता-मनुष्य भयथी उपवनमाथी सरल, सारभूत, नवीन अने सर्वथा गाठ आदि दोष विनाना आवेला होय ते ज मदिरना उपयोगमा लेवा

" स्पष्टीकरण "

मदिर माटे जो लाकडानी आवश्यकता होय तो ते पण न्यायथी अने सम्यक् प्रयत्नथी लाववा. आ पण जे वनमा देवता अधिष्ठित होय, मनुष्य अगर जानवरनी मालिकीनु होय, तेओने सतोषी, पूजा आदि अर्पी ते वनमाथी लेवा अथवा वननी नजीकना कोइ सुदर वृक्षो होय तेमाथी लेवा; परतु आ

काष्ठो सरल, वक्रता विनाना, गर्भशल्य प्रमाण अने नवा लेवा. जीर्ण थया न होय, कीडाओ पड्या न होय, तेमज जेमा गाठ के अन्य दूषणो जरा पण लागेल न होय तेवा ज काष्ठो मदिरना कार्यमा लेवा, जेथी मदिर दीर्घकाल पर्यंत स्थिर रहे, कोइ पण मिथ्यात्वी देवो विगेर उपद्रव न करे अहीं पण प्रथम कहेल वात अवश्य ध्यानमा राखवी, एटले के–व्यापारीओ पोताना व्यापार अर्थ लाकडा लाव्या होय तेनी पासेथी उचित मूल्य आपी, भारग्राहकोने उचित भाडु आपी सतुष्ट करी लाववा, किन्तु मदिरना माटे वनकर्म करवु शास्त्रो उचित मानता नथी.

विधिपूर्वक पत्थर, काष्ठो विगेर लाववा एम कही गया अहीं ते पदार्थो लाववानी विधि शु छे ते जणावे छे

सर्वत्र शकुनपूर्वं,
ग्रहणादावत्र वर्त्तितव्यमिति ॥
पूर्णकलशादिरूप-
श्चित्तोत्साहानुग. शकुन ॥ ६–९ ॥

मूलार्थ'—पत्थर, इट, काष्ठ आदि मदिर माटे शकुन देखीने लेवा तथा लाववा अहीं बाह्य शकुनो जलभृतकुभ लइने कोइ कन्या विगेर सामे आवे ते विगेर अने आभ्यन्तर शकुनो चित्तनी प्रसन्नता, गुरुआज्ञा आदि जाणवा

' स्पष्टीकरण "

प्रथम मंदिर अर्थे जे पदार्थो जोइए ते विधिपूर्वक लेवा एम जणावी गया, तेथी अहीं विधि दर्शावे छे कार्यनी प्रशस्तता-अप्रशस्ततानुं अनुमान शकुनो अने मननी स्थिति परथी करी शकाय एवं सामुद्रिकशास्त्र कहे छे आथी ज प्रशस्तकार्यना आरम्भमा पहेला शकुनो देखवा, मंगल आचरवुं, शुभ दिन, घडी, ग्रहो, चंद्र आदि तपासवानु महर्षिओ कहे छे आना मुख्य बे कारणो छे एक तो हृदयनी प्रसन्नता वधे अने बीजु अनिष्ट संबंधी शंका दूर थाय अतएव अहीं पत्थर, चूनो, इंट, काष्ठ विगेर खरीदवा जतां शुभ शकुनो देखवा तेमज शकुनो देखी लाववा अहीं शास्त्रकर्ता वाय अने आभ्यन्तर एम बे प्रकारना शकुनो जणावे छे जलभृतकुंभ विगेर बाह्य शकुनो सामुद्रिकशास्त्रमा आ प्रमाणे कह्यां छे-"कन्या गोपूर्णकुंभो दधिमधुकुसुम पावको दीप्यमानो, यान वा गोप्रयुक्त रथवरतुरगो छत्रभद्रातिभद्र । उत्खाता चैव भूमिर्जलचरमिथुन सिद्धमन्न मुनिर्वा वेश्यास्त्रीमद्यमास हितमपि वचन मगल प्रस्थितानाम् " ॥ १ ॥ " कन्या, जल अथवा दूध भरेलो कुंभ, दहींनु पात्र, मधुनुं पात्र, फूल भरली छाबडी, बळतो जाज्वल्यमान अग्नि, बळद जोडेलु वाहन, घोडा सहित रथगाडी, अतिभद्र सुन्दर छत्र, खोदेली माटी, जलचरनुं युग्म, पकावेलु अनाज, मुनि, वेश्या, मदिरा, मांस अने हितकारी वचन-आटला पदार्थो

चालती वखते समीप मळे तो मगळ करनारा थाय. " आ सर्व वाह्य शकुनो कथा छे मदिरनो मामान लेवा जता लावता विवेकीए आ शकुनो देखी प्रयाण करवु, तेमज हृदयनी प्रसन्नता, गुरुआज्ञा ए आभ्यतर शकुनो जाणवा उत्तम सामुद्रिको कहे छे के–यदि बाह्य शकुनो न मळे अने हृदयनो एकाएक तीव्र उत्साह जणाय, गुरुओनी एकाएक आज्ञा थाय तो बाह्य शकुननो आधार राख्या विना पण प्रयाण करवु; कारण के बाह्य शकुनो करता आभ्यन्तर शकुनो बलवत्तर गण्या छे एटले आभ्यतर शकुनो न मळे अने बाह्य शकुन घणा सुदर मळे तो पण ते इष्ट फळ आपी शके नहीं आ विधि मदिरनो सामान लाववा माटे शास्त्रोमा कहेल छे

मदिर बाधनार कारीगरोने ठगवा नहीं परतु तेओने सतोषवा, एम जणाव्यु हतु तो तेओ साथे मदिर बधावनारे केम वर्तवु ? ते दर्शावे छे

> भृतका अपि कर्त्तव्या य,
> इह विशिष्टा स्वभावतः केचित् ॥
> यूयमपि गोष्ठिका इह,
> वचनेन सुख तु ते स्थाप्या ॥६–१०॥

मूलार्थ—कारीगर नोकरोने पण अहीं जिनभवनरूप कार्यमा विशिष्ट स्वभाववाळा बनाववा, अथवा केटला स्व-

जिनमंदिर बंधाव्युं अने धारेली इच्छाओ अंतरायोदयथी पार न पडे तो मंदिर पर, धर्म पर अने तीर्थंकर देव पर अनादर–अश्रद्धा उपजे यदि धारणाओ सिद्ध थाय तो आत्मा मोहक पदार्थना अधिक मोहमां धसडाय, तेमज आ विचारो नियाणा रूप होवाथी मलिन कर्मा छे एटले आम करवाथी जन्मांतरमां धर्मनी दुर्लभता थाय. अतएव भगवान् हरिभद्रसूरिजी कहे छे के उपरोक्त लोभ विनानो अने प्रथम कहेला भावमय विचार ते ' अनिदानः ' अनिदान भाव कहेवाय तथा आ ज भाव ' अलं शुद्ध ' अतिशय शुद्ध जाणवो आथी आवा विचारोने पवित्र आशयवंताओ 'स्वाशय' सुष्ठु आशय कहे छे मंदिर बंधावनारनुं आ आशयो परम कल्याण करी शके छे, तथा अन्यने अनुमोदनीय बने छे

उपर दर्शित सुष्ठु आशयनी वृद्धि क्रमे क्रमे मंदिर बंधाव्या पछी बंधावनारे केवी रीते करवी, अने मंदिर बंधाव्या पछी बंधावनार कवी केवी भावनाओ भावची ? ते वात ग्रंथकर्ता दर्शावे छे

प्रतिदिवसमस्य वृद्धिः,
कृताकृतप्रत्युपेक्षणविधानात् ॥
एवमिदं क्रियमाणं,
शस्तमिह निर्दिशितं समये ॥६–१३॥

मूलार्थ—प्रथम जणावेला आशयनी ' में आ जींद

गीमा मदिर बधाववारूप कार्य कर्युं, अने [illegible] तीर्थयात्रादि कार्यों कर्यां नथी'–आ प्रमाणे [illegible] अने ते विचारोने वर्तनमा मूकी वृद्धि करवा [illegible] जैनशास्त्रमा आ जिनमदिररूप कार्य [illegible] मशु छे

" स्पष्टीकरण "

प्रथम तो मन्दिर बधावनारे उपर बे मत [illegible] करी तेनु मरक्षण करु त्यारबाद आ [illegible] तेनो प्रकार अहीं दर्शावे छे. उपरोक्त [illegible] कार्यनु अवलोकन करी ' अहो मैं [illegible] जीवनमा एक मदिर बधावी [illegible]" आ प्रमाणे अनुमोदना करी–करता, [illegible] अगभूत अन्य कार्यो अथवा [illegible] श्रय आदि कार्यो कर्यां नथी [illegible] अवश्य करवा छे.' आ रीतेनु [illegible] सकल्प करी भावनी वृद्धि करी [illegible] खाली देखाव करवा नहीं, किन्तु [illegible] मूकी पवित्र धारावृद्धि [illegible] ' विधा-नात् ' ए पदथी दर्शावे छे. [illegible] भावनी वृद्धिनो उल्लेख [illegible] यान्ति, सुयताः स्वर्गगामि- [illegible] सदा [illegible] ते ॥ १ ॥ [illegible]

सद्गति पामे छे अने इंद्रियोनुं दमन करनार स्वर्गे जाय छे; ज्यार शान्तिमय देवमंदिर, उपाश्रय आदि बंधावनारने नित्य पुण्यनी वृद्धि थाय छे." आवा विचारोपूर्वक अथवा आवा विचारो करवाथी अहीं जैनशास्त्रमां आ जिनमंदिररूप पवित्र कार्य शस्त-प्रधान कह्युं छे-अर्थात् आ कार्य करवाथी उत्तरोत्तर पुण्य नदीनो प्रवाह वध्या करे छे अथवा भाववृद्धिनुं स्वरूप आ प्रमाणे कह्युं छे.-" एतद् दृष्ट्वार्हत चैत्यमनेके सुगतिं गता. । यास्यन्ति बहवश्चान्ये ध्याननिर्धूत कल्मषा ॥ १ ॥ यात्रास्नात्रादिकर्मेह भूतमन्यच्च भावि यत् । तत्सर्वं श्रेयसा बीजं ममार्हच्चैत्यनिर्मितौ ॥ २ ॥ साधु जातो विधिरयं कार्योऽस्त परं मेष मे । अर्हच्चैत्येऽप्यघाति ध्यान आद्धस्य शुभवृद्धये ॥३॥ अहपूर्विकया भक्तिं ये च कुर्वन्ति धार्मिका. । तेऽपि प्रवर्द्धयन्त्येव भाव श्रद्धानशालिनाम् " ॥४॥ " आ जिनमंदिरना दर्शन करी अनेक लोको सद्गति पाम्या, अने बीजाओ पण आ जिनमंदिरना ध्यान प्रभावथी पापकर्मनो क्षय करी सद्गतिगामी थशे आ जिनमंदिरमां पूर्वकाले नित्ययात्रा, जिनाभिषेक, जिनपूजा, जिनदर्शन विगेरे पवित्र कार्यो थया, तथा भविष्यमां पण आ पवित्र कार्यो थशे आ मने कल्याणनुं मुख्य बीज में जिनमंदिर बंधाव्युं ते ज छे खरेखर आ विधान सुंदर छे फरी पण आवुं काम भविष्यमां मारे करवुं उचित छे. आ प्रमाणे श्रावकने अर्हच्चैत्य

शुभ ध्याननी वृद्धि करनार थाय यात्रिको पण जिनम-दिरमा आवी 'एक करे हु पहेली पूजा करु, बीजो करे हु पहेलो अभिषेक करुं, त्रीजो करे हु पहेलो आरती उतारुं, चोथो करे हु प्रथम अगरचना करु.' आ प्रमाणे उत्साह भक्तिथी अहपूर्विकतावडे जिनमदिर बधावनार श्रद्धालु जनना भावमा वधारो कर छे " ए रीते जिनमदिर बधावनार विचारो करी पोताना भावोनी वृद्धि कर, तथा आ सर्व विचारो जिनमदिर बधावनारना विचारो वधारवामा सहायक छे एम शास्त्रकर्ता स्पष्ट जणावे छे अने मोक्षार्थीए तेम करवु पोताना आत्मा माटे उचित छे

उपर जणावेल विचारो ज प्रधान कह्या तेनो शु हेतु ? ए भाव स्पष्ट करे छे

> एतदिह भावयज्ञ,
> सद्गृहिणो जन्मफलमिद परम ॥
> अभ्युदयाव्युच्छित्त्या,
> नियमादपवर्गबीजमिति ॥ ६–१४ ॥

मूलार्थ—आ जिनमदिर बधाववु ते ज गृहस्थोने अगे भावपूजा अने पोताना जन्मनु उत्कृष्ट फल कयु छे हेतु ए ज-आर्थी अभ्युदय एटले कल्याणानी परपरानो कदापि नाश

यतो नथी अने परिणामे निश्चयथी मोक्षरूपी वृक्षनुं बीजभूत जिनमंदिररूप कार्य बने छे.

" स्पष्टीकरण "

शास्त्रमा द्रव्यपूजा अने भावपूजा एम बे प्रकारे पूजा कही छे तेमा जळ, चंदन, पुष्प, नैवेद्य आदिथी पूजा, अंगरचना, मंदिर बनाववु, प्रतिमा भरावबी, अलंकारो चडाववा, उत्सवो करवा, रथयात्रा विगेरे सर्व द्रव्यपूजा कही छे आ पूजा करवानो अधिकार गृहस्थने छे, परंतु सर्वत्यागीने अधिकार नथी, कारण के तेमां आरंभ छे सर्वत्यागी आरंभना त्यागी छे एटले तेओने आ कार्यमा आरंभथी त्रास थाय अने प्रतिज्ञानो भंग थाय. गृहस्थ आरंभना त्यागी नथी. कुटुंबादि अर्थे अने जीवन व्यवहार अर्थे स्नान, पुष्प आदिनो आरंभ करे छे, एटले तेओने द्रव्यपूजा करवानो आदेश आवश्यक छे, ज्यारे भावपूजानो अधिकार साधुओने छे ए ज वातनु अनुमोदन उपाध्यायजी ज्ञानसारमा करे छे—" द्रव्यपूजोचिता-भेदोपासना गृहमेधिनाम् । भावपूजा तु साधूनाम-भेदोपासनात्मिका " ॥ १ ॥ अतएव अहीं हरिभद्रसूरिजी जिनमंदिर माटे भार मेलीने कहे छे के—" एतदिह भावयज्ञ " आ जिनमंदिर बधाववु ते अहीं भावयज्ञ-भावपूजा कही छे. यद्यपि जिनमंदिर ए द्रव्यपूजांतर्गत छे तो पण अहीं यज् धातु परथी यज्ञ शब्द बन्यो छे एटले यज् धातु देवपूजा अर्थनो वाचक छे; अने द्रव्यस्तव पण शास्त्रदर्शित

विधि, शुद्धि तथा जिनाज्ञापालनपूर्वक करवाथी ते भावपूजा गर्भित कहवाय छे. आथी ज अहीं द्रव्यपूजारूप जिनमंदिरने शास्त्रकर्ताए भावयज्ञ—भावपूजामां गण्यु निदान ए के जिनमंदिर भावशुद्धिनु साधन होवाथी अने भावपूजानु अंग होवाथी कार्यमां कारणनो आरोप करी तेने भावपूजा मानवामां काइ विरोध देखातो नथी गृहस्थने आ कार्यनो अधिकार होवाथी गृहस्थ माटे पोतानी जींदगीनु मुख्य फल—परमफल शास्त्रकारो जिनमंदिर बधाववु ते जणावे छे, कारण के आ जन्मोपार्जित धननो आवा मार्गोमां व्यय करवा सिवाय बीजु काई पण सार भूत साधन नथी एटलु नहि परंतु गृहस्थ आ कार्य करवाथी, तुच्छ धननो आ मार्गोमां व्यय करवाथी अभ्युदय एटले कल्याण तेनी परंपरा पामे छे अथवा अभ्युदय एटले स्वर्गनी विपुल संपत्ति जन्मांतरमां प्राप्त करे छे ने छेवटे निश्चयथी मोक्ष पण पामे छे. आथी आ जिनमंदिररूप कार्यने अपवर्गनु बीजभूत गण्यु. बीज वाव्या पछी तेना हजारो फलो अने धान्य अर्पे छे तेम आ मंदिर बधाववारूप कार्य पण परिणामे ऐहलौकिक राज्यादि पारलौकिक स्वर्गसंपत्ति अर्पी मोक्ष-दाता बने छे, माटे तेने बीज तुल्य शास्त्रकर्ताए मान्यु.

आ प्रमाणे "जिनभवन" नी शुद्धिरूप विधि अहीं विस्तारथी दर्शावी. हवे आ संबंधमां विशेष वक्तव्य शास्त्र-कर्ता जणावे छे

देय तु न साधुभ्यस्तिष्ठति,
यथा च ते तथा कार्यम् ॥
अध्ययनीव्या ह्येव,
ज्ञेयमिदं वशतरकाडम् ॥ ६-१५ ॥

मूलार्थ—आ रीते मंदिर बनावी साधुओने अर्पण न करवु किन्तु साधुओ उपदेशादि माटे त्यां रहे तेवी व्यवस्था बहारना भागमा करवी, कारण के ए प्रमाणे करवाथी अनेक लोको त्यां आवे एटले आ जिनमंदिर पुण्यप्रवाह माटे अध्ययनीधि बने, तथा संसारसमुद्रथी संपूर्ण समाजना वधाना उद्धार करनार प्रवहण समान थाय.

" स्पष्टीकरण "

आ रीते विधिशुद्ध मंदिर गृहस्थे बधावी तेनु रक्षण विगेरे पोते ज करवु अथवा मंदिरनी योग्य व्यवस्था सारु अमुक रकम आवकनु साधन निकाळी अमुक धर्मी गृहस्थोने तेमां सारसभाळ माटे सोपवु एटले श्रीसंघने सुप्रत करवु, परंतु साधुओने—मुनियोने सोपवु नहीं एटले मंदिरनो वहीवट मुनिओने तावे करवो नहीं अहीं ग्रंथकार हरिभद्रसूरिजी ' मुनियोने सोपवु नहीं ' जे आ प्रमाणे उपदेश करे छे तेमा खास हेतु छे हेतु ए के–ते काळे चैत्यवासीओए एवो उपदेश शरू कर्यो हतो के गृहस्थे मंदिर बधावी साधुओने तावे करवुं,

कारण के गृहस्थो जंजाळी अने उपाधिवाळा होय एटले तेओथी बराबर संभाळ थाय नहीं, आशातनाओ टळे नहीं, साधुओ तेनु उचित रक्षण करे, आशातनाओ दूर करे, त्यां निवास करे, मंदिर आवनारने उपदेश आपे, जेथी धर्मनु पण योग्य रक्षण थाय आ उपदेशथी गृहस्थो मंदिर बधावी चैत्यवासी मुनियोने सोंपता हता चैत्यवासीओ त्यां ज रहेता हता मंदिरना मालिक बनी मंदिरना धननु भक्षण करता हता. परिणामे तेओ अने गृहस्थो धर्मभ्रष्ट थइ पतित थतां आ चैत्यवासीओ हरिभद्रसूरिजीना समयमां बहु जोरमां वध्या न हता तो पण तेओनो प्रचार थवा लाग्यो हतो तेओना उपदेशनी असर कटलाक लोको पर थती हती आ वात सम्बोधप्रकरण ग्रंथ परथी जोइ शकाय छे, परंतु आ चैत्यवासीओनु जोर त्यारपछी घणु ज वधी गयु जे पछी बुद्धिसागरसूरि अने जिनेश्वरसूरिए चैत्यवासीओना बळने अटकाव्यु यावत् जिनवल्लभगणिए पण तोडवाना प्रबळ प्रयत्न कर्या चैत्यवासीओना तत्सवधी मान्यतानु स्वरूप संघपट्टकमां जिनवल्लभगणिजीए घणा विस्तारथी कर्यु छे

अतएव आचार्य कहे छे के मंदिरना जीर्णोद्धार, व्यवस्था, रक्षण आदि कार्यो गृहस्थे करवां पण मुनिए करवां नहीं जो के शास्त्रमां मंदिरना सर्व कार्यो यावत् धनरक्षण, सवर्द्धन, ग्रामक्षेत्र आदि वहीवट करवानु मुनिने आज्ञा आपी छे, परंतु आज्ञा अपवाद मार्गाश्रित होवाथी ज्यारे गृहस्थो धर्मविमुख

न्या होय, आपसना क्लेशने लीधे मंदिरनी एकांत उपेक्षा करता होय, अनेकधा विविध उपदेश आपवा छतां मानता ज न होय, आसपासनो कोइ धर्मी सारसमाल के आशातना दूर करतो न होय, सर्वथा मंदिर, प्रतिमा, तेनु धन विनाश पामतु होय, आशातना घणी ज थती होय, कोइ सेवक पण न मलतो होय, तो ज आचारनिष्ठ गीतार्थ परम श्रद्धालु मुनि महात्मा आ कार्य करी शके तेओना माटे ज आ अधिकार छे, कारण के आवा मुनियो ज्यां सुधी उचित वहीवट करनार न मळे त्यां सुधी उपरोक्त कार्य अलिप्त मनथी यथु करी शके अने उचित वहीवटकर्ता प्राप्त थये तुरत ज तेने स्वाधीन कर आथी ज आचार्ये मुनियोनो निषेध करी गृहस्थने वहीवट करवानो उपदेश आप्यो.

तथापि ते मुनियो आवीने धर्मोपदेश माटे त्यां निवास कर, बाल, वृद्ध, ग्लान मुनियो त्यां स्थिति करे, आथी गृहस्थे मंदिरनी बहार एटले नजीकमा आधाकर्म दोष विनानु एक स्थान अवश्य तैयार करवु जेथी मुनियो त्यां स्थिति करी धर्मोपदेशादि करी शके अहीं उपाध्यायजी टीकामा 'यस्मिंद्दपादौ' ए पन्थी मंदिरनी बहार मंडपमा व्याख्यानादि माटे स्थान करवानु जणाव छे आनु कारण एक ज के मंदिरे दर्शन-पूजन माटे जे लोको आवे ते लोको दर्शन-पूजन करी तुरत व्याख्यान अने मुनिदर्शननो लाभ पामी शके. आवा व्याख्यान स्थानो मेवाड, मालवा के मारवाडना जुना

मदिरोमा घणो स्थळे देगवामा आवे छे बीजु कारण ए पण जणाय छे के ते समये वादशाही जुल्मो थता हता, एटले धर्मव्यवहारो बहु ज गुप्तपणे रखाता हता मुसलमानी अत्याचारोना लीधे स्त्रीओ पडदामा ज रहती हती अने वधारे वखत इतर इतर स्थानोमा जइ शकती नहीं, एटले मदिरो अने व्याख्यान स्थळो साथे साथे राखी तेने घणा ज गुप्त स्थळमा राखवानो प्रचार हशे आ स्थितिनु भान अत्यारे पण आपणे पूर्वना मदिरो जेवा अनुमान करी शकीए छीए गमे तेम हो, परन्तु मदिरनी साथमा ज व्याख्यान के मुनि निवासना स्थानो करवाथी वर्तमानमा तो आशातना अने अन्य अनर्थनु कारण थाय छे, तमन आचार्यनो काइ एवो मत नथी के मदिरथी अलग दूर व्याख्यान अगर मुनि-निवासनु स्थान न करवु ए तो गृहस्थनी सरलतानो विषय छे तेमज ते काळे मुनियो कदाचित् ज शहेरमा आवता हता अने थोडी दर्शन व्याख्यानादि करी चाल्या जता हता कोइ बाल, ग्लान के वृद्ध मुनियो पण कारणवशात् अमुक समय रहेता एटले तेओ माटे ते स्थान व्याघात करनार न गणाय, तथा मूळकर्ता भगवान् हरिभद्रसूरिजी तो एटलु ज कहे छे के-'तिछति यथा च ते तथा कार्यं' मुनियो आवीने स्थिति करे तेम मदिर बधाववु अर्थात् आशातना न लागे, बीजा दोषो उद्भवे नहीं ते अवश्य ध्यानमा राखवु साधु योग्य स्थान करवानु बीजुं कारण ए छे के जो तेवु स्थान न होय तो मुनियो आवे नहीं अने तेम वनवाथी धर्मोपदेश वगेरे

नहीं ने अते स्वकुटुंब, स्वजाति धर्महीन थाय, एटलु ज नहीं पण श्रावके ज्यां जिनमंदिर होय, ज्यां मुनियोनुं आवागमन होय, ज्यां अन्य समानधर्मीनो संयोग होय त्यां ज निवास करवो, ए ज वात शास्त्रकार दर्शावे छे. " निवेसिज्ज तत्थ सड्ढो साहूण जत्थ होइ संपाओ। चेइयघराइ जमिय तयन्न साहम्मिया चेव " ॥ १ ॥ फरी आ जिनमंदिर श्रावके ए प्रमाणे करवु के अक्षयनीवि बने अर्थात् मंदिर सर्वने आधारभूत होवाथी दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि गुणनी वृद्धिकारक होवाथी, जेम नीवि एटले मूलधन तेनुं रक्षण करवाथी, व्याजे फेरववाथी ते कायम अक्षय रहे छे तेम मंदिरनु रक्षण करवाथी, उचित देखरेख राखवाथी ते पण अक्षयनीवि जेवु थाय, एटले उत्तरोत्तर लाभनु ज कारण थाय आ प्रमाणे करवाथी परंपराए जीर्णोद्धारादि कार्यो कराववाथी बनावनारने अने अन्यने उपकारभूत थई आखा कुटुंबने तरवानु साधन बने छे. परमार्थ ए के—जिनमंदिर बंधाव्या पछी, तेनुं रक्षण कर्या पछी, भविष्यमा धनारी पोतानी प्रजा अने कुटुंबीओने धर्मप्राप्तिनु स्थान बने छे, तेमज आ मंदिर अमारा पूर्वजोए बधाव्यु छे माटे आनो जीर्णोद्धार, रक्षण अने प्रबंध अमारे करवो जोइए ए प्रमाणे पक्षपात थवाथी धर्मथी जोडाय छे एटले जेम प्रवहण स्व अने परने तारे छे तेम आ जिनमंदिर पण अनेक भावि पुरुषोने तारनार बने छे अहीं उपाध्यायजी वधारे खुलासो करे छे स्वाशजनक मंदिरद्वारा धर्मप्राप्ति थवाथी ते मंदिर

पर विशेष भक्ति जो के भावि प्रजाने थाय छे तो पण अन्य मंदिर पर भक्ति होय तो मिथ्यात्वपणानी प्राप्ति थाय नहीं. एटले के अन्य सघकृतादि मंदिर पर पण अनुराग अवश्य उत्पन्न थवो जोइए; अन्यथा मिथ्यात्वनो दोष लागे.

आ सर्व विधिनो उपदेश कर्या पछी वादी शका करे छे के आ बधु जे कही आव्या ते ठीक, पण मंदिर बधाववामा पृथ्वी आदि छकाय जीवनो अवश्य नाश थाय छे, ते विना जिनमंदिर बनवु अशक्य छे, माटे कार्यमा तो तमारे खास करीने हिंसा मानवी ज पडशे आम मान्या पछी शु हिंसा वाळा कार्यथी धर्म थने खरो ? आ प्रश्नतु समाधान आचार्य अहीं आ प्रमाणे कहे छे —

यतनातो न च हिंसा,
यस्मादेषैव तन्निवृत्तिफला ॥
तदधिकनिवृत्तिभावाद्–
विहितमतोऽदुष्टमेतदिति ॥ ६–१६ ॥

मूलार्थ—प्रयत्नपूर्वक उपयोगपूर्वक मंदिर बंधाववाथी आ भावहिंसा लागती नथी आ हिंसा पण निवृत्तिफल–हिंसारूप निवृत्ति फलवाला कही छे, कारण के अधिक अन्य आरंभान्तर्मां जे हिंसा थाय ते हिंसा मंदिर बांधवामा थती नथी अने अन्य हिंसानो रोध थाय छे तथा शास्त्रमा मंदिर

बाधवानी आज्ञा आपी छे आथी जिनमंदिर बंधाववु ते अनुचित नथी

" स्पष्टीकरण "

जिनमंदिर बांधवामां जो के उपलक दृष्टिए आपणने हिंसा नजरे दखाय छे खरी, पण आ हिंसाने शास्त्रकर्ता हिंसा स्वीकारता नथी, कारण हिंसा द्रव्य अने भाव एम बे प्रकारे कही छे जेमा क्रियाकारक पुरुषना कारणथी आत्माओना प्राणोनो नाश थाय पण ते पुरुषनो अनुपयोग–बेदरकारी न होय तथी ते द्रव्यहिंसा, अने जेमां प्राणनो नाश न थाय तो पण अनुपयोग प्रवृत्ति होय तेवा ते भावहिंसा, अथवा स्वरूप, हेतु, अनुबंध एम त्रण प्रकार हिंसा शास्त्रोमां कही छे जे प्रवृत्ति मात्रथी जीवोनो नाश थाय पण प्रवृत्ति करनार बेदर कारी–अनुपयोग अने शास्त्राज्ञानिरपेक्ष न होय तो ते स्वरूपहिंसा जेमके मुनि मार्गे विहार करता नदी उतरे. अहीं बेदरकारविहीन अने शास्त्राज्ञासापेक्ष जलीय जीवोनो नाश थवा छता मुनिने आ हिंसा लागती नथी मन, वचन अने कायाना प्रमत्त व्यापारोथी जीवोनो नाश थाय तो ते हेतुहिंसा, तथा जेमां हिंसाना परिणामो साथे दुष्ट प्रवृत्ति होय ते अनु बंधहिंसा शास्त्रो दर्शावे छे. हवे जिनमंदिर बांधनार शास्त्राज्ञा- सापेक्ष अने खास यतनापूर्वक मंदिर बंधावे जेथी मंदिर बांधवामां जो के हिंसा थाय छे तत्पि ते भावहिंसा नथी हेतु

ए के-आ हिंसाना भावहिंसानु लक्षण सुघटित थतु नथी आथी ज हिंसाने हिंसा शास्त्रोए नथी मानी, एटले अहीं आचार्य कहे छे के—' यतनातो न च हिंसा ' प्रयत्न एकान्त उपयोगपूर्वक वर्तन करवाथी हिंसाजन्य दोष उद्भवतो नथी, ए ज वात शास्त्र दर्शावे छे " रागद्दोसविउत्तो जोगो असढस्स होइ जयणाओ" " अशठ-अमलीन परिणामी अने शास्त्राज्ञाथी यतनापूर्वक वर्तनार मनुष्योनो व्यापार-वर्तन रागद्वेषविहीन ज होय " अहीं उपयोगथी अने शास्त्राज्ञाथी अशठ प्रवृत्ति करनारने भावहिंसाजन्य दोष न लागे ए शास्त्रकारनो ऊचिताशय छे खरी रीते शास्त्रकारो भावहिंसा वर्जवानो एकान्त उपदेश करे छे, ज्यारे मदिर वधा वनार आ हिंसा त्यनी कार्य करे छे एटले तेमा हिंसादोषनो सद्भाव केम मनाय ? निदान ए के-सर्वथा यतनापूर्वक कार्य करवु, ए ज वात पचाशकमा दर्शावी छे. " जयणा य पयत्तेण कायव्वा एत्थ सव्वजोगेसु। जयणा उ धम्मसारो ज भणिया वीयरागेहिं " ॥ १ ॥ " जिन मदिर विधानमा मदिर उपयोगी दरेक पदार्थो जीवरक्षा करवापूर्वक अने शुद्धिपूर्वक लाववा, कारण के जैनशासनमा सर्व व्यापारो प्रयत्नथी यतनापूर्वक करवानु कह्यु छे, केम के धर्मनो मुख्य सार वीतरागदेवे खास यतना-सोपयोगव्यापार कह्यो छे " परमार्थ ए के-सोपयोग वर्तनार आत्मा सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र ने श्रद्धा, बोध अने आसेवनथी आराधी

शक ते अहीं मंदिर बांधवामां यतना पाळवानुं स्वरूप पंचाशक टीकामां आ प्रमाणे कर्युं छे. परिणत—एटले बराबर छाणीने कोइक आचार्य अहीं परिणतनो अर्थ अचित्त जल लेवुं तेम करे छे तथा जेमां किडी, कुंथु आदि त्रस जीवो न होय तेवा बराबर स्वदृष्टिए तपासेल काष्ठ, इंट, चूनो, पत्थर विगेरे पदार्थो लेवा तेमज अन्य कृषि आदि आरंभो त्याग करी भाविक गृहस्थे स्वयं पोताना देखरेखथी स्वहस्तथी कार्य करवुं, परंतु कारीगरोना भरोसे कराववुं नहीं आ प्रमाणे यतनाथी मंदिर बंधाववुं. आथी आ कार्य भावहिंसा वगरनुं कहा शकाय " सा इह परिणयजलदलविसुद्धरूवा उ होइ णायव्वा । अण्णारंभणियित्तीए अप्पणाहिट्ठण चेव " ॥ १ ॥ अतएव शास्त्रकारो आ यतनाने जो के प्रवृत्तिरूप छे तो पण अन्य दुष्ट प्रवृत्ति बंध करनार होवाथी निवृत्तिरूप कहे छे, कारण के आ यतनाद्वाराए जिनभवनरूप अल्प दोषमय कार्यनो आदर अने बहुदोषयुक्त अन्य आरंभोनो त्याग थाय छे. आ रीते विचारवाथी अने पंचाशकमां यतनानुं जे स्वरूप कर्युं छे ते प्रमाणे वर्तवाथी भावहिंसारूप दोष मंदिर बांधवामां न आवे ए वास्तविक सत्य छे.

अहीं सुधी तो भावहिंसा न लागे ए विचार्युं, पण द्रव्य हिंसा अथवा स्वरूपहिंसा तो मंदिर बांधवामां जरूर लागे, ए प्रश्नना उत्तरमां शास्त्रकार जणावे छे के—जो के द्रव्यहिंसा थाय तो पण अहीं जे यतना दर्शावी तथाप्रकार वर्तवाथी ते

हिंसा निवृत्तिना फलने अर्थे छे आनो परमार्थ ए छे के-जिनमंदिर बाधता ते बाधनार भाविक गृहस्थ अन्य बहु आरम्भमय कार्योनो त्याग करे छे एटले आ जिनमंदिर बाधवा-रूप द्रव्यहिंसा प्रवृत्तिथी बहु आरम्भमय कार्यो छूटी जाय छे; माटे "यस्मादेषैव तन्निवृत्तिफला" जे माटे आ यतना ज हिंसानिवृत्तिफलजनिका बने छे शास्त्रोमा पण कयु छे "जा जयमाणस्स भवे विराहणा सुत्तविहिसमग्गस्स । सा होइ णिज्जरफला अज्झप्पविसोहिजुत्तस्स" ॥ १ ॥ सूत्रदर्शित विधिए करी पूर्ण अने आत्म निर्मलतायुक्त पुरुष यतना-उपयोग सहित प्रवृत्ति आदरता जो विराधना-हिंसा करे तो ते हिंसा पण ते आत्माने कर्मनिर्जरा फल आपनार थाय, माटे आ द्रव्यहिंसा निवृत्तिफलजनिका थही. आ परथी जेओ जिनमंदिर बाधवामा पृथ्व्यादि जीवोनो वध थवाथी ते आरंभयुक्त गणाय माटे ते कार्यमा धर्म कम समय ? आवो जे प्रश्न करे छे तेनो योग्य खुलासो उपरना लेखथी सुस्पष्टरीत्या स्पष्ट थइ जाय छे आटलो स्पष्ट खुलासो कर्या पछी फरी शास्त्रकर्ता-' चिन्तितमलोऽदुष्टमेतदिति ' ॥ पदथी आ वात वधारे स्पष्ट करे छे एक तो पूर्वे कही आव्या तेथी जिनमंदिर बाधवामा काइ भयस्थान नथी, बीजु शास्त्रमा जिनमंदिर बधाववानी खास आज्ञा आपी छे, जिनेश्वरोए जिनमंदिर बधाववानो निर्मल उपदेश आप्यो छे; माटे पण आ जिनमंदिर बधाववु सर्वथा

अदुष्ट छे निदान ए के–जे विधान सर्वज्ञशास्त्रविहित होय ते जरुर अदुष्ट ज होय. ए ज वातनी पुष्टि उपदेशरूपे पांच सो ग्रंथकर्ता अने पूर्वधर श्रीमान् उमास्वाती महाराज पोताना ग्रंथमां कहे छे. "यस्तृणमयीमपि कुटीं कुर्याद् द्यात्तथैक पुष्पमपि । भक्त्या परमगुरुभ्य पुण्योन्मान कुतस्तस्य ॥ १ ॥ जिनभवन जिनबिंब जिनपूजां जिनमत च य कुर्यात् । तस्य नरामरशिवसुखानि करपल्लवस्थानि" ॥ २ ॥ "जे कोइ मनुष्य भक्ति अने श्रद्धार्थी वीतरागदेवने एक घासनी झुपडी तथा एक ज पुष्प भेट करे तो पण तेना पुण्यनु प्रमाण थइ शके नहीं एटलु पुण्य थाय छे, तेम ज जे मनुष्य भक्ति अने श्रद्धावडे एक जिनमंदिर बंधावे, एक जिनप्रतिमा भरावे, जिनपूजा करे अथवा जिनमत आराधे तो ते मनुष्य मनुष्य, देवता अने मोक्षना सुखोने हस्तगत करे छे " ए रीते शास्त्रविहित होवाथी जिनमंदिर क्रिया निर्दूषण आचार्य भगवान् दर्शावे छे, एटले जिनमंदिर बंधाववामां द्रव्य अथवा भावहिंसा पैकी कोइ पण हिंसा लागती नथी, किन्तु हिंसानिवृत्तिरूपी फल अर्पण करी एकान्त कर्मनिर्जराकारक बनी उत्तरोत्तर पुण्यानुबंधी पुण्यनो बंध करावनार ज थाय छे. आथी जेओ जिनमंदिर बांधवामां जिवहिंसा लागे छे एवो जे उपदेश करे छे तेओ एकान्त व्यामोहित अथवा शास्त्ररहस्यना अज्ञात छे एम समजवु जोइए

---

(७) जिनबिम्बषोडशकम्.

गत षोडशक प्रकरणमां विधिशुद्ध शास्त्रविहित यतनापूर्वक जिनमंदिर बनाववानो विधि दर्शाव्यो, परंतु आ जिनमंदिर जिनप्रतिमा वगर इष्टदायी न थाय माटे जिनप्रतिमानी पण तेटली ज आवश्यकता होवाथी अहीं शास्त्रकार आ सातमा प्रकरणमां प्रतिमानो अधिकार अने तेनुं विशुद्ध शास्त्रोक्त विधान दर्शावे छे.

जिनभवने तद्बिम्बं,
कारयितव्यं द्रुतं तु बुद्धिमता ॥
साधिष्ठानं ह्येवं
तद्भवनं वृद्धिमत् भवति ॥ ७–१ ॥

मूलार्थ—ए प्रमाणे विधिशुद्ध जिनभवन [illegible] बुद्धिमाने शीघ्र जिनबिंब कराववुं-भराववुं [illegible] करवाथी जिनभवन साधिष्ठित थाय, [illegible] जिनमंदिर निश्चयथी वृद्धिकारक थाय छे.

" प्रतिमा भरावे कोण ? "

स्पष्टीकरण–जिनभवन माटे [illegible] दर्शाव्युं तेम ज्यां आराधना थाय [illegible] व्युं छे. अर्थात् विधिशुद्ध निर्दोष [illegible] कारीगरो पासे जिनप्रतिमा [illegible]

प्रथम आचार्य समीपे जिनेश्वरोना गुणो श्रवण करी शुद्ध बुद्धि प्राप्त करी मनुष्यनु मुख्य कर्म अने जन्मनु प्रधान फल आ सिवाय अन्य नथी एवा भावना धारण करे, तेम ज आ भूमंडलमा अनन्तगुणराशी जिनेश्वरदेव छे तेथी तेमना बिंबनु दर्शन पण सुखदातृ थाय छे अने आ बिंब करावना रनु परम आत्मकल्याण थाय छे, माटे मोक्षपथना स्वामी अने मोक्षदर्शक जिनेश्वरोना गुणोनु बहुमान आदरसत्कार, प्रीतिपूजा विगेरे कार्यो करवा मोक्षार्थी–मोक्ष माटे प्रयत्न करनार कुशल आत्माए अवश्य प्रयत्न करवो उचित छे निदान ए के–जिनेश्वरोनु बहुमान पूजा आदि करवाथी भवि आत्माना हृदयनी निर्मलता थाय, तथा शुद्ध भावनावडे अवश्य शुभ पुण्योनी परंपरा वधे छे ने अन्तमा आत्मा सिद्धिपदने पामे छे आ विचारो, आ भावना प्रतिमा करा वनार अथवा भरावनारना हृदयमा अभूतपूर्वपणे रमी रही होय एटले ते आत्मा अवश्य पोतानी निर्मलता साधी शके वळी प्रतिमा बनावनार कारीगरनो शुभअवसरे समुचित सत्कार करी पोतानी शक्ति अनुसार सपत्ति आपवी, आम न बनी शके तो प्रथमथी तेनु मूल्य ठरावी पाछळथी ठराव्या करता अधिक पैसो आपो कारीगरोने खुश करवा जेथी प्रतिमा आनंद, उत्साह अने आत्मनिर्मलताकारक जरुर बने

" प्रतिष्ठा क्यारे करावे ? "

ए रीते निपजावेल अगर अन्य स्थानथी आवेल जिन

बिंबनी योग्य मुहूर्त्तमा शास्त्रदर्शित विधिथी आडंबरपूर्वक उपरोक्त जिनमदिरमा बुद्धिमान् नर जरुर प्रतिष्ठा करवी, स्थापन करवु अहीं ग्रथकर्ता मूलमा 'बुद्धिमता' ए पदथी बुद्धिमाने एटले जे शास्त्रदर्शित प्रतिष्ठाविधिकुशल अने आचार तथा धर्ममा पूर्ण श्रद्धालु तथा कुशल होय तेवा ज मनुष्ये आ प्रतिष्ठा करवी अगर तेवा पुरुष पासे प्रतिष्ठा करावची, ए आशय जणाव्यो छे तेमज मूलमा–'तूर्ण तु' ए पद छे एटले मन्दिर निष्पन्न थाय के तुरत ज प्रतिष्ठा करवी, किन्तु विलंब न करवो हेतु ए के–शिल्पशास्त्रमा मंदिर तैयार थया पछी अमुक मुहूर्तमा प्रतिष्ठा करवानु अने तदुपरांत मुहूर्त वनाथी दोषप्राप्ति कही छे, एटलु ज नहीं परंतु मंदिर खाली रहेवाथी तेमा कोई दुष्ट देवनो वास थई जाय छे अने तेथी मंदिर करावनार अथवा सघने मोटा प्रकारना नुकशानो उभा थाय छे, माटे मंदिर पूर्ण थवा साथे अथवा मूल गभारो तैयार थवा साथे तुरत ज मूर्त्तिनी स्थापना–प्रतिष्ठा करी देवी ए शास्त्राज्ञा छे

ए प्रमाणे सशुद्ध जिनबिंब पधरावचाथी ए जिनमंदिर पण सनाथकत्व–साधिष्ठ थयु कहेवाय, अतएव आ ज मंदिर सघनु, प्रतिष्ठा करनारनु, तेना कुटुंबियोनु कल्याण करनार थाय छे अने खास वृद्धिकारक बने छे

जिनप्रतिमा करावबानी विधि शास्त्रकार दर्शावे छे

जिनबिंबकारणविधि,
काले पूजापुरस्सर कर्तुः ॥
विभवोचितमूल्याऽर्पण-
मनघस्य शुभेन भावेन ॥ ७-२ ॥

मूलार्थ—जिनबिंब करावबानी विधि आ प्रमाणे छे बिंब करनारनी सुअवसरे पूजा करवी, एटले तेनो योग्य सत्कार करी, निर्दोष शुद्ध भावथी पोतानी संपत्ति अनुसार महेनतना बदला तरीके मूल्य अर्पण करवु

" कारीगर केवो जोइए ? "

स्पष्टीकरण—जिनबिंब केवी रीते कारीगर पासे करावबु तेनु विधान अमे उपर दर्शावी गया ते ज विधान ग्रंथकर्ता अहीं स्पष्ट करी जणावे छे ग्रंथकार कहे छे के—जिनबिंब करावबानु विधान आ प्रमाणे जाणवु जे कारीगरे जिनबिंब तैयार कर्युं होय तेनो भोजन, वस्त्र, पुष्प, पत्र आदिथी प्रथम सत्कार करवो अने पछी निर्दोष पवित्र आशयथी पोतानी संपत्ति प्रमाणे तेने धन अर्पण करवु उत्तमोत्तम अमूल्य जिनबिंबना लाभ पासे बाह्य अधिक धननी किंमत नथी. अहीं 'अनघस्य' ए पद आप्यु छे. आनो परमार्थ ए के—

जिनबिंब बनावनार मनुष्य जरुर मदिरा आदिना व्यसन रहित होवो जोइए; कारण के व्यसनी मनुष्य पासे प्रतिमा करावनी शास्त्रकर्ता सर्वथा अनुचित जणावे छे

केवा कारीगर पासे जिनबिंब कराववु ते स्पष्ट करे छे

नार्पणमितरस्य तथा,
युक्त्या वक्तव्यमेव मूल्यमिति ॥
काले च दानमुचितं,
शुभभावेनैव विधिपूर्वम् ॥ ७–३ ॥

मूलार्थ—मद्य आदि व्यसनवाळाने आ कार्य सोंपवु नहीं। अने व्यसन रहित जनने पण युक्तिथी समजावी कहेवु के–' अमुक मूल्य आपीशु ' आ प्रमाणे कह्या पछी समय परत्वे पवित्र भावथी तथा विधिपूर्वक तेओने उचित दान आपवु

" स्पष्टीकरण "

मदिरा, जुगार अने परस्त्री व्यसनी मनुष्य पासे आ प्रतिमा करावची नहीं अने तेने पैसो पण आपवा नहीं हेतु ए के–व्यसनी माणस पासे एवु परम पवित्र अने एकान्त हितदायी कार्य करावनाथी लोकोमा निंदा थाय. करनारने सद्भाव होय नहीं अने बराबर कार्य करे नहीं तेमज उचित

समये कार्य पूर्ण करे नहीं वळी आपेला पैसानो अधिक दुरुपयोग थवाथी पापनो भाग आवे, तथा व्यसन रहित अने व्यसनी आ बन्नेनो तुल्य सत्कार करवाथी अव्यसनी पण अनादरवान् थाय माटे अहीं व्यसनीने अनधिकारी शास्त्रकर्ताए गण्यो. अव्यसनी पासे कार्य कराववा पहेला लौकिक न्यायथी खास भाव नक्की करवो के ' अमुक भाव आपीशु ' जेथी भविष्यमा विसवाद वधी क्लेशनो प्रसग उपस्थित न थाय काम कर्या पछी प्रतिमा तैयार थया पछी ते कारीगरने पवित्र वृत्तिथी अने सत्कार, सन्मान, विनय साथे उचित-योग्य वस्त्रालकार आदिनु दान करवु.

अव्यसनी माटे शास्त्रकर्ताए निषेध केम दर्शाव्यो ? तेनु कारण अहीं ग्रथकर्ता पोते ज करे छे

चित्तविनाशो नैव,

प्राय सजायते द्वयोरपि हि ॥

अस्मिन् व्यतिकर,

एष प्रतिषिद्धो धर्मतत्त्वज्ञै ॥ ७-४ ॥

मूलार्थ—आ प्रकारे वर्तवाथी मदिर बधावनार अने बाधनार बन्नेना चित्तमा खेद के क्लेश बहुधा निश्चयथी उत्पन्न थतो नथी, कारण के कल्याणकारी आवा धर्मकार्योमा धर्मतत्त्वज्ञोए चित्तविनाशनो सर्वथा निषेध कर्यो छे

अर्थात् क्लेश उद्भववाथी धर्मनो नाश थाय छे

" प्रतिष्ठाकारकनुं वर्तन "

स्पष्टीकरण-चित्तनी शान्ति अथवा प्रसन्नता माटे मंदिर बधावीए छता जो आदिमां ज मनने ग्लानि थाय तो पछी मंदिर बधाववानु फल शु ? माटे मंदिर बांधनार अने बधावनारे जेम शान्ति सचवाय, क्लेश न उद्भवे तेम वर्तवु वधारे उचित गणाय आ माटे ज भगवान् हरिभद्रसूरिजी जणावे छे के ' चित्तविनाशो नैव ' जे प्रमाणे मंदिर बधाववानी विधि तथा शुद्धि विगेरेनु स्वरूप आगळ कही गया ते प्रमाणे, तथा कारीगर साथे बधावनारे पहेलाथी ज स्पष्ट भाव नक्की करवा विगेरे जे व्यवहार कही गया ते प्रमाणे वर्तनाथी कारीगर अने बधावनारने परस्पर भविष्यमां लेवडदेवडमां वांधो पडतो नथी एटले बोलवा-चालवानु तथा क्लेशनु कारण कदापि उद्भवतु नथी उद्भवे नहीं कारण के शास्त्रकर्त्ता आ मंदिर बधाववारूप कार्यमां अने उपलक्षणथी धर्मना कार्योमां आपसमा क्लेश, खेद, परिताप, विवाद के झघडो न थाय तेम वर्तवु एवो खास उपदेश अर्पे छे परमार्थ ए के-धर्मतत्त्वज्ञो आवा कार्योमां प्रथमथी ज ' चित्तविनाश ' क्लेशादिनो निषेध करे छ निदान ए के-जो धर्मकार्योमां क्लेश आदि उद्भवी चित्तनी अशान्ति थाय तो धर्मनो नाश थाय-धर्मप्राप्ति कदापि थाय नहीं

उपर " आवा मंदिर आदि कार्योमां क्लेशादि न थाय तेम वर्तन करवु. " आ प्रसंग दर्शावी गया ए ज प्रसंग उपर फरी अहीं जणावे छे

एष द्वयोरपि महान्,
विशिष्टकार्यप्रसाधकत्वेन ॥
सबंध इह क्षुण्ण,
न मिथ· सन्त प्रशसन्ति ॥ ७–५ ॥

मूलार्थ—पूर्वे कहेल चित्तजन्य क्लेशाभावरूप संयोग बांधनार अने बधावनार बन्नेने विशिष्ट कार्यनो सिद्धिकारक होवाथी महान् उत्तम संयोग कहेवाय, कारण के–मंदिर बांधनार तथा बधावनार बन्नेने आपसमां यदि क्लेशादि उद्भवे तो सज्जनो कदापि पण प्रशसा न करे.

" स्पष्टीकरण "

मंदिर अने जिनबिंबरूप कार्य प्रकरणमां कर्ता तथा करावनार बन्नेना चित्तना भग न थाय ए ज संयोग मलवो प्रशसनीय गण्यो छे हेतु ए के–आवा सुंदर संयोग खरेखर विशिष्ट अने उत्तम मंदिर तथा जिनबिंबरूप कार्यना फलने अर्पी शके छे, तेमज यदि आवा कार्योमां मांहोमांहे कारीगर तथा प्रेरकना चित्तो नाराज थाय, क्लेशमय बने तो सज्जनो आ कार्यनी प्रशसा न करता केवल निंदा करे

अथवा घृणानी नजरे देखे छे, माटे अहीं ग्रंथकर्ता जणावे छे के चित्तभंग न थाय एवा संजोग मळवो दुर्गम छे तथा ते ज कार्यनो सिद्धिकारक थाय छे

आटलो विस्तृत निर्देश कर्या पछी ग्रंथकर्ता ' जिन-बिंब ' बनाववामां प्रथम भावनी खास आवश्यकता अने ए ज प्रधान छे, एवो खुल्लो उल्लेख दर्शावे छे

यावन्त परितोषा,
कारयितुस्तत्त्समुद्भवा केचित् ॥
तद्दिम्बकारणानीह,
तस्य तावन्ति तत्त्वेन ॥ ७-६ ॥

मूलार्थ—जे जे प्रकारना अने जेटला संतोष, प्रसन्नता विशेष सद्गुणो करावनारने जिनबिंबथी उत्पन्न थाय तेमांथी केटलाक संतोष परिणामो ते ज करावनारने परमार्थथी जिनबिंब कराववामां कारणभूत बने.

" प्रतिष्ठाकारके भाव कयो राखवो ? "

स्पष्टीकरण—जैन शास्त्रोए सर्व अनुष्ठानोमां मुख्यतया भाव हृदयोल्लास एकान्त पवित्रतम फलदायी मान्यो छे, कारण के " जे जे क्षणमां आत्मा जेवा जेवा परिणामोने धारण करे ते ते समयमां आत्मा शुभ अगर अशुभ कर्मनो बंध करे छे. " आम उपदेशमालामां कह्युं छे. तेमज " [illegible]

क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्याः" "कारण के पवित्र-तर क्रियाओ पण भाव विना फल आपती नथी" ए कथन कल्याणमंदिर स्तोत्रमां उपदेश्युं छे अतएव अहीं मंदिर अने जिनप्रतिमा अधिकारमा विधि तथा शुद्धिनी मुख्यता अने कारीगर साथे उचित प्रशसनीय, धर्मबुद्धि थाय तेवु वर्तन राखवानु कही गया, किन्तु आ सर्व साधनो छतां जो भाव-हृदयनी परमपवित्रता आत्मोल्लास न होय तो ते साधनो कार्यजनक बने नहीं निदान ए के-सर्व साधनो साथे भाव पण मुख्य मान्यो छे आथी अहीं पण शास्त्र कर्ता दर्शावे छे के-जिनबिंब तथा जिनमंदिर बनावनारनो जेटला प्रमाणमां हृदयोल्लास प्रेम अने पवित्रतामय होय, आत्मा उल्लासमय होय अने ते पण बिंब तथा मंदिर पामेथी प्राप्त थयु होय अर्थात् तेनाथी उद्भव्यु-वन्यु होय, ते ज सतोष, प्रेम, पवित्रता आदि अनेक भावो पैकी अमुक भावो मंदिर तथा बिंब करावनारने करावतवामां परमार्थथी साधनभूत बने छे एटले मंदिरादिना प्रेमथी आविर्भूत पवित्र हृदयभावो भविक आत्माने मंदिर आदि करावत्वामां प्रेरणा करे छे. अत ; प्रथमतया भाविकनु हृदय उपरोक्त भावोथी बराबर परिणत थवु जोइए. भावोनी सुवासनाथी सुवासित थवा पछी ज तेना सस्कारबलथी भविक आत्मा विधि शुद्धिनु रक्षण करवापूर्वक कारीगरो साथे योग्य वर्तन राखवा काळजी राखे ने मंदिर तथा बिंबद्वय सुष्ठु

फल पामी एकान्त कर्मनो क्षय करी शके एटले शास्त्रोक्त विधि बराबर पालन करे छे निदान ए ज के-मंदिरादि कराववामां जेटली भावनी पवित्रता, विविशुद्धता होय तेटलु ज फळ प्राप्त थाय

चित्तनो विनाश न थाय तेम वर्तवानु कह्यु तेनी ज पुष्टि माटे ग्रथकार फरीने अधिक दर्शावे छे

अप्रीतिरपि च तस्मिन्,
भगवति परमार्थनीतितो ज्ञेया ॥
सर्वापायनिमित्त
ह्येषा पापा न कर्त्तव्या ॥ ७–७ ॥

मूलार्थ—कोइ पण कारणथी मंदिर तथा बिंब करावनार यदि कारीगर साथे अप्रीति करे तो परमार्थ न्यायथी ते अप्रीति जिनेश्वरदेव पर करी कहेवाय, कारण के कारण पर अप्रीति ते कार्य पर अप्रीति कहेवाय. अतएव सर्व अपायोनु मूल अने पापीष्ठ एवी अप्रीति न करवी ए ज उचित छे.

" स्पष्टीकरण "

कारण पर द्वेष-अप्रेम करवो ते कार्य पर अप्रेम कर्यो कहेवाय एवो-न्याय छे आनो भावार्थ एवो छे के जेम घट

कारीगर सरल परिणामी, धर्मरुचि अने न्यायमार्गानुगामी अवश्य होवो जोइए एम जिनबिंब करावनारे खास ध्यान राखवु.

शिल्पी-हृदयगत अनेक प्रकारना सुंदर मनोरथो युक्त एवा शिल्पकार पासे आ जिनबिंब कराववु ए वात उपर दर्शावी गया. हवे अहीं शिल्पी-हृदयगत अनेक मनोरथो क्या अने केवा होय तेनु वर्णन करता ग्रंथकार कहे छे.

अत्रावस्थात्रयगामिनो,
बुधैर्दोहृदाः समाख्याता ॥
बालाद्याश्चैता यत्त-
त्क्रीडनकादि देयमिति ॥७-९॥

मूलार्थ—अहीं जिनबिंब बनाववामां बुधजनोए जिनबिंबमां अवस्थात्रय आरोपवा माटे शिल्पीगत बाल, युवा अने मध्यम ए नामक अवस्थात्रयगामी चित्त संबंधी मनोरथो कारणभूत मान्या छे, एटले शिल्पकारोने त्रय अवस्थोचित जे जे रमकडा विगेरे उपकरणो जोइए ते तेनी प्रसन्नता माटे अवश्य अर्पण करवा.

"मूर्त्तिमां अमुक भावो केम लाववा ?"

स्पष्टीकरण—जिनप्रतिमा बनावनार बाल, युवा अने मध्यम वयस्क ए त्रण पैकी कोइ पण होय अथवा

ए त्रण अवस्थोचित सत्कारवान् होय, एटले आ मनुष्य पोतानी अवस्थोचित पदार्थ प्राप्तिथी आनंद माने छे अगर अवस्थोचित पदार्थ ग्रहण करवा उत्सुक बने छे, तेमज तेना चित्तमां-हृदयमा वारवार अवस्थोचित ख्यालो रम्या करे छे. आने ज शास्त्रकर्ता शिल्पी-हृदयगत मनोरथ कहे छे अतएव प्रतिमा इच्छु जने आ कारीगरोने खुश राखवा प्रतिमा बनावती वखते बालने रमकडा, युवकने खानपान अने मध्यमने वस्त्र, मान्य आदि जरूर 'देय' अर्पवा करवा. आ पदार्थो अर्पवानु कारण एक तो शिल्पीना चित्तनी प्रसन्नता प्रकटाववा अने बीजु प्रतिमामा अवस्था-त्रयना भाव आविर्भूत करवा--उपसाववा. परमार्थ ए के-प्रतिमा करती वखते कारीगरनो जेवो ख्याल होय अने पासे जेवा योग्य साधनो पड्या होय तेवो भाव प्रतिमाना आकारमां यथाकथंचित् उद्भवी शके-उतरी शके छे, परंतु आ पदार्थो कारीगरने अर्पी तेना विकारो पुष्ट करवा एवो शास्त्रकर्तानो आशय नथी, किन्तु शिल्पकारनी त्रण अवस्था, अवस्थोचित मनोरथो निहाळी ते परथी उद्भवेल मूर्त्तिमा आकारविशेषद्वारा अवस्थात्रयनी भावना प्रति-मामां आरोपवी अने आ भावना दृष्टाना हृदयमां आवि-र्भूत बने एतदर्थे शिल्पकोने ते ते पदार्थो अर्पवा, ए ज ग्रंथकर्तानो मुख्य आशय छे आ परथी सिद्ध-स्वरूप वीतरागदेवनी मूर्त्ति बनाववामा शिल्पी-हृदयगत

मनोरथोनी पुष्टि शा कामनी ? एवी वास्तविक शका उपस्थित थाय खरी, कारण के प्रतिमानी अंदर बाल, युवा, मध्यम ए अवस्थात्रयजन्य भावो कांइ उपजाववा नथी, तेमज ते भावो वीतराग स्वरूप मूर्तिमां आविर्भूत करवा ए तो वीतरागभावनो ध्वस करवा जेवु गणाय. आ शका जो के सत्य छे अने ग्रथकर्त्तानो ए आशय पण नथी के शिल्पी-हृदयगत अवस्थोचित भावो प्रतिमामा पोषवा, किन्तु शिल्पकारने प्रसन्न करी ते द्वारा प्रतिमामां हर्षितवदन, लावण्यता, ध्यानावस्था, मनोहरता, आकर्षणता, पूर्ण-यौवनत्व, सौकुमार्य आदि भावो प्रकटे-उपसे अने ते परथी दृष्टाओ छद्मस्थ, केवलित्व अने सिद्धत्व ए अवस्था अपनी भावना जरुर प्राप्त करी शके आ हेतुथी कारीगरोने अवस्थोचित पदार्थो अर्पण करी सतोषवानु शास्त्रकर्त्ताए कह्यु अधिक गुण-लाभ माटे आम करवामां कांइ दोष कहेवाय नहीं

" अत करणनी पवित्रतावडे कारीगर पासे प्रतिमा करावबी " ए वात कही गया तेनी पुष्टि माटे ग्रथकार फरीने अहीं विशेष उपदेश आपे छे

यद्यस्य सत्कमनुचितामिह,
वित्ते तस्य तज्जामिह पुण्यम् ॥

भवतु शुभाशयकरणा-

दित्येतद् भावशुद्ध स्यात् ॥ ७-१० ॥

मूलार्थ—जिनबिंब करावनार जे धनथी कारीगर पासे बिंब करावे ते धनमा पोते न जाणे तेवी रीते अनुचित धन आवी गयु होय ते धन सबधी पुण्य तना मालिकने प्राप्त थाव, आ प्रमाणे विचार करे. आ प्रमाणे विचारो करवाथी भावशुद्धि कहेवाय

" केवा धनथी मूर्त्ति भरावनी ? "

स्पष्टीकरण—न्यायोपार्जित धन अने पवित्र आशयथी जिनबिंब करावबु एम कह्यु छतु त्या करावनारे जे धन एकत्र कर्यु होय अगर करे अने सर्व प्रकारे अन्यायप्राप्त धन न ज स्वीकारे तो पण अनुपयोग, प्रमाद, विस्मृति के विह्वलता आदि कारणोथी अथवा मुनिम, नोकर आदिना विश्वासे रहेवाथी अनुचित-अन्यायी कांइक द्रव्य आवी जवानो सभव रहे खरो. हवे जे धनथी जिनबिंब करावे तेमा ते धननो अमुक अश होय, एटले करावनार " अहो ! धन्य भाग्य छु आजे आ चपलदृष्ट्नष्ट धनथी जिनबिंब करावी ते धनने सफल करु छु मारु आ धन आजे सफल थयु मारो जन्म कृतार्थ थयो " आ प्रकारे जरुर विचारो करे आथी जे धन अनुचित-अन्यायी आव्यु तेनो वास्तविक

रीत्या ते पोते मालीक नथी अने न्यायबाह्य छे, तेनी मालिकीपणु अने फल-प्रार्थना पोते करवी ए तो सर्वथा अयोग्य ज कहेवाय तेमज शास्त्रनिषिद्ध वर्तन गणाय; माटे बिंब करावनारे ए भावना भाववी के-" आ धनमां जे अन्यायी-अनुचित धननो अंश होय तत् धनजन्य शुभ फल जेनु धन होय तेने ज हो अने मारा धननु शुभ फल मने मळो, परतु परकीय धननु फल हु इच्छतो नथी." आवा विचारो करवापूर्वक कारीगरद्वारा मूर्त्ति कराववी आ प्रमाणे स्वहृदयमां भावना आविर्भूत करवी तेनु नाम शास्त्रकर्त्ता अहीं भावशुद्धि उपदेशे छे आ परथी पोताने त्यां कोइनी थापण होय अने तेनो मालिक देहान्त थयो होय, कोइए शुभकार्यमां व्यय करवा पोताने त्यां राखेल होय, स्वकुटुबमांथी आवेलु होय, व्यापारमां घराक पासेथी धर्मना नामे अधिक लीधु होय, एक वखत शुभखाते खरचवा अमुकनी पाछळ कह्यु होय, निधानमांथी मन्यु होय-आवु आवु अनेक धन होय अने ते धननु पोते स्वामीत्वपणु स्वीकारी तेनाथी जिनबिंब आदि पवित्र कार्यो करी तेना फलनी पोते इच्छा करे, में कर्युं एवु माने, पोताने कृतकृत्य माने ए सर्व अनुचित अने न्यायबाह्य शास्त्रकार दर्शावे छे एटले जे धनमां अन्यायनो-अनुचितपणानो-परकीयपणानो अंशमात्र न होय किन्तु केवल न्यायी, स्वस्वामीत्ववालु होय तेवा धनथी ज

जिनबिंब आदि धर्मकृत्यो करवा ए ज शास्त्रानुसारी अने विशुद्धतर छे.

जिनबिंबनी प्रतिष्ठाकरण विधि अमे कहीशु एम सातमा षोडशक प्रकरणांतर्गत द्वितीय श्लोकथी ग्रंथकर्ता कही गया हता ते माटे अहीं ते संबंधमां विशेष हकीकत दर्शावे छे

> मन्त्रन्यासश्च तथा,
>
> प्रणवनमःपूर्वकं च तन्नाम ॥
>
> मन्त्रः परमो ज्ञेयो,
>
> मननत्राणे ह्यतो नियमात् ॥ ७–११ ॥

मूलार्थ—कर्तव्यपणे अभिष्ट एवा जिनबिंबमां 'ॐ' अने 'नमः' ए पदपूर्वक चोवीश जिनांतर्गत कोइ पण नाम-रूप मन्त्र स्थापन करवो, कारण के 'मन' धातु मनन–त्राण–रक्षण अर्थमां होवाथी उपरोक्त नामरूप अवश्य ज्ञानादिनु रक्षण करे छे, माटे अहीं नाम–स्थापनरूप मंत्र ए ज परम मंत्र जाणवो

" स्थापनाविधि–मन्त्रन्यास "

स्पष्टीकरण—कारीगर पासे शास्त्रोक्त नियम प्रमाणे सुंदर अने ˜ निपजाव्या पछी आचारनिष्ठ

आचार्यमहर्षिद्वारा शास्त्रदर्शित विधिथी अञ्जनशलाका ज्यां सुधी न करवामां आवे त्यां सुधी आ मनोहर पण जिनबिंब पूजा, दर्शन अने आराधनीयपणे स्वीकार्य नथी एम शास्त्रो कहे छे निदान ए के-अञ्जनशलाका विनाना जिनबिंब जो के जिनेश्वर देवनो आकार छे तो पण तेमां देवत्वनो आरोप, मन्त्रनी स्थापना अने चोवीश जिनेश्वरोना नाम पैकी अमुक नामनी स्थापनाशून्य होवाथी पूजा, दर्शन तथा आराधना करनार उत्तम भाविकना हृदयमां देवपणानी श्रद्धा, हृदयोल्लास, जिनगुण अवभास, यात्र विशुद्धता, चमत्कारीत्व अने पूजा योग्य भावो आ जिनबिंब उपजावी शकतु नथी, एटले तत् बिंबजन्य लाभो अप्राप्य होवाथी अर्थशून्य ज गणाय, अतएव आ प्रमाणे जिनबिंब निपजावी तेमां मन्त्रस्थापन अने अञ्जनशलाकानी पवित्र विधि कर्तव्यतया अभीष्ट मानी छे, ए ज वातनी पुष्टि आचार्यश्री आ श्लोकमां करे छे कर्तव्यपणे अभीष्ट अने शुद्ध निष्पन्न जिनबिंबमां शीघ्र मन्त्रनो न्यास-आरोप करवो अहीं मन्त्रो अनेक प्रकारना छे, एटले क्या मन्त्रनो आरोप इष्ट गणाय ? आनु समाधान ग्रंथकर्ता स्वयं करे छे. 'मन्त्र' शब्द 'मन' धातु परथी बन्यो छे 'मनि' ज्ञाने 'मन' धातुनो ज्ञान अर्थ, तथा 'मन' धातु त्राण-रक्षण ए अर्थमां छे एटले 'मननात् त्राणात् च मन्त्र' जेनाथी ज्ञाननो लाभ तथा रक्षण थाय ते मन्त्र परमार्थ ए के-

अहीं जिनबिंबमां जे मत्रनो आरोप करीए ते मत्रथी " आ जिनबिंब अमुक तीर्थंकरनु अने तीर्थंकरना चमत्कारिक गुणोनु जरुर भान करावनार, तेमज पापबुद्धिथी, ससारमयोथी अवश्य बचावनार " आदि गुणोनो अवश्य एकान्त लाभ थयो जोइए, अन्यथा ते मत्र मुख्य फलनिषायी न गणाय आ हेतुथी शास्त्रकर्ता जणावे छे के–अहीं मत्रन्यास ते ' ॐ ' तथा ' नमः 'पूर्वक अमुक नामस्थापनरूप प्रथम करवो, जेमके " ॐ नमः ऋषभाय " आ प्रमाणे नाम-स्थापन करवु. आ प्रमाणे स्थापन कर्या पछी पूजक भवि आत्माने अमुक तीर्थंकरनी आ मूर्त्ति छे, आ मूर्त्ति विधि सह अजनशलाकाकृत छे, शास्त्रीय विधिमय छे–आवा ख्यालो उपजावी तीर्थंकरपणाना अनेक उदात्त गुणोनो भास करावी दर्शन–पूजन आदि कार्योमां उल्लासकारक अने पवित्र भाववर्द्धक अवश्यमेव थाय छे अतएव उपरोक्त मत्र सान्वयी मगुणी होवाथी स्वजन्य फलप्रापक बने छे, माटे ए ज मत्र अहीं परममत्र शास्त्रकर्ताए मान्यो अने तेनी ज स्थापना करवानो आदेश आप्यो, अर्थात् आ सिवायना अन्य मत्रो उक्त मत्रना पुष्टिकारक मत्रो अने गौण मत्रो जाणवा.

अहीं पर्यंत शास्त्रकर्ताए ' जिनबिंब ' भरावावानी विधि तथा शुद्धि कही, अने 'जिनबिंब' भरावावानो उपदेश आप्यो तेमज तेनी अजनशलाका करवानु जणाव्यु. हवे कोइ शक्ति-

विशिष्ट भविक आत्मा रत्न, सुवर्ण, हीरा, माणेक अगर पत्थरनु तथा शक्ति वगरनो भावथी पाषाण मूर्तिकानु बनावे तेमज कोइ न्हानु अथवा म्होटु जिनबिंब करावे, तो रत्न आदिनु जिनबिंब बनावे तेने अथवा पाषाण विगेरेथी बनावे तेने आ बेमांथी विशिष्ट लाभ कोने थाय ? शु रत्ननु के म्होटु जिनबिंब भरावे तेने विशेष लाभ थाय ? अगर गमे तेवु जिनबिंब करावे पण भाव जेना अधिक सुदर अने पवित्रतर होय तेने विशेष लाभ थाय ? आचार्य भगवान् कहे छे के–भावनी विशिष्टता अने पवित्रता जेने होय तेने अधिक लाभ थाय, परतु जिनबिंब म्होटु अथवा रत्न आदिथी बनावे तेथी कांइ विशेष लाभ थाय एवो एकान्त नियम नथी, ए ज वात ग्रथकर्ता स्पष्टतया जणावे छे.

बिंब महत्सुरूप,
कनकादिमय च खलु विशेष. ॥
नास्मात्फल विशिष्ट,
भवति तु तदिहाशयविशेषात् ॥७–१२॥

मूलार्थ—म्होटा प्रमाणवालु अथवा सुदर मनोहारी अगर शक्तिविशेषथी कोइ रत्न, सुवर्ण आदि विशिष्ट प्रकारनु जिनबिंब करावे एटला मात्रथी कांइ अधिक लाभ थाय नहीं; किन्तु ज्यां भावनी विशिष्टता होय त्यां ज लाभनी अधिकता जाणवी अथवा भावनी मुख्यता छे.

"क्या बिंबथी वधु लाभ ? "

स्पष्टीकरण—शक्तिवान् होय तो कोइ सुवर्ण, रत्न, हीरा, माणेकनु सुंदर कारीगरद्वारा अवयवपूर्ण मनोहारी जिनबिंब करावे त्यारे कोइ गृहस्थप्रमाणवाळु जिनबिंब करावे हवे जेनी शक्ति न होय ते न्हानु अने पाषाण अथवा मृतिकानु बिंब करावे, एटले जो म्होटु तथा हीरा आदिनु बिंब करावे तेने अधिक लाभ अने न्हानु तथा पाषाणनु बिंब करावे तेने अल्प लाभ थाय एम मान्य होय तो श्रीमानो–शक्तिवानो ज अधिक लाभना भागी तथा गरिबो बिचारा अल्प भागना भागी थइ शके आम मानवाथी तो पैसावालानो ज धर्म अने मोक्ष गणाय पवित्र धर्म मार्गमां आ न्याय योग्य न कहेवाय अतएव शास्त्र-कर्ता कहे छे के—" नास्मात् फल विशिष्ट " म्होटु अगर रत्न आदिनु बिंब करावनाथी कांइ अधिक लाभ थाय नहीं, किन्तु " भवति तु तदिहाशयविशेषात् " आशय–भावनी अधिकता जेटला प्रमाणमा होय तेटला प्रमाणमा अधिक लाभ थाय. परमार्थ ए के–पोतानी शक्ति प्रमाणे न्हानु पाषाण अगर माटीनु जिनबिंब भविक आत्मा भावनी अधिकताथी करावे, अने धनाढ्य भाव विना रत्न विगेरेथी म्होटु जिनबिंब करावे तो पहेलाने जरुर शुभ लाभनी पण बीजा नम्बरवालाने अधिक लाभ थाय शुभ पुण्यना लाभालाभनो

मुख्य आधार अंत करणनी शुभ वृत्तिओ पर ज राख्यो छे ए ज भावनी पुष्टि व्यवहार भाष्यमां आ प्रमाणे करी छे " लक्खणजुत्ता पडिमा, पासाईआ समत्तलंकारा ॥ पल्हायइ जह व मण तह, णिज्जरमो वियाणाहि " ॥ १ ॥ " लक्षणे करी युक्त अने समस्त अलकार अलकृत एवी जिनप्रतिमा तथा जिनप्रासाद देखीने जेम जेम मन अधिक प्रसन्न थाय तेम तेम निर्जरा अधिक थाय एम जाणवु " अहीं मननी जेम जेम अधिक प्रसन्नता तेम तेम अधिक कर्मनिर्जरा थाय एम कथन करवानो सूत्रकारनो आशय छे, एटले भाव ज प्रधान छे एम जाणवु.

अत्र आशय विशेषथी लाभ विशेष थाय ए भाव बताव्यो, परन्तु आ भाव कया प्रकारे वर्तन करवाथी पवित्र थाय ए वात ग्रथकार दर्शावे छे

आगमतन्त्र सतत,
तद्वद्भक्त्यादिलिंगससिद्धः ॥
चेष्टाया तत्स्मृतिमान्,
शस्त खल्वाशयविशेष ॥ ७–१३ ॥

मूलार्थ—आगमनिर्दिष्ट मात्र गमन करवु, आगमवानोनी पूजा–बहुमान आदि व्यापारो करवामां सतत प्रवृत्ति करवी, आगमने याद करवु, आ प्रमाणे वर्तवाथी आशयनी निश्चित पवित्रता थाय छे

" स्पष्टीकरण "

जे कांइ शुभ कार्यो आरभवा तेमां आगम-सिद्धान्त आज्ञाने मुख्य करी वर्तन करवु परतु आगमनिषिद्ध मार्गे जवु नहीं, तथा आगमना अभ्यासी महर्षि मुनियोनी सेवा-भक्ति, पूजा, विनय, बहुमान आदि व्यापारो करवा, तेमज आगमना अभ्यास आदि क्रियामां प्रवृत्ति करवी, आगम-वचनोनु वारवार स्मरण करवु आ कार्यो करवाथी हृदयनी खरी पवित्रता थाय अने तेथी पवित्र आशयनु उत्थान थाय छे परमार्थ ए के-पवित्र हृदयने प्राप्त करवा उपरोक्त विधिए वर्तन करवु. आ सिवाय अन्य मार्गे हृदयनी पवित्रता थाय नहीं अतएव ग्रंथकर्ताए श्लोकना उत्तर भागमां ' खलु ' ए पद आप्यु छे अर्थात् निश्चिततया आम वर्तवाथी आशय पवित्र थाय, तेमज आ प्रमाणे वर्तनारमां ज पवित्र आशय होय अने तेथी अन्यथा वर्तनार उची क्रिया-अनुष्ठानो करे तदपि हीन आशयवालो छे एम जाणवु

आ प्रमाणे आशय पवित्रता जणावी एवा आशय विशेषपूर्वक ज जिनबिंब कराववु शास्त्रोक्त विधि युक्त छे, ए वातनु समर्थन करवा ग्रथकार दर्शावे छे

एवंविधेन यद्बिम्ब-

कारणं तद्वदन्ति समयविद्. ॥

लोकोत्तरमन्यदतो,
लौकिकमभ्युदयसार च ॥ ७–१४ ॥

मूलार्थ—दर्शित आशय पवित्रता सहित जे जिनबिंब करावीए तेने शास्त्रो लोकोत्तर कार्य कहे छे, अने आथी विपरीत रीते करावीए तेने लौकिक कार्य जणावे छे, परंतु आ लौकिक कार्य केवल मानप्रतिष्ठा आदि फलने ज अर्पण करे

" स्पष्टीकरण "

आशयनी पवित्रता माटे जे विधान कह्यु ते ज प्रमाणे जे जिनबिंबरूप कार्य थाय अने तेथी अन्यथा रीते जे कार्य थाय, आ बन्ने कार्योना नाम अने फलमां अवश्य भेद होय छे, ए ज वातने स्पष्ट करवा आ श्लोक ग्रंथकारे कह्यो छे. एटले के लौकिक तथा लोकोत्तर ए प्रमाणे कार्यना बे विभागो थइ शके जे कार्यो शुद्ध छतां मात्र लौकिक फलने ज अर्पे ते लौकिक, अने जे कार्य लोकोत्तर आत्मकल्याण, कर्मनिर्जरा फलने अर्पे ते लोकोत्तर. अहीं शास्त्रकार कहे छे के—जेओ प्रथम कही गया ए रीते आशयपवित्रता साथे जिनबिंब करावे तो आ कार्यने शास्त्रज्ञो–तत्त्वज्ञानीयो लोकोत्तर कार्य एटले एकान्तकल्याण मोक्षफलदायी कार्य कहे छे. ज्यारे ए विधि अने आशयपवित्रता विना जो करावे तो लौकिक कार्य मान, कीर्ति आदि फल

अर्पनार कार्य दर्शावे छे अगर स्वर्गादि संपत्ति अर्पनार कार्य कहे छे

" लौकिक कार्य " अभ्युदय फल आपनार थाय एम कह्यु पण लोकोत्तर कार्य क्या फलने आपे ए जणाव्यु नहीं माटे तेनो खुलासो हवे करे छे

लोकोत्तर तु निर्वाणसाधक,
परमफलमिहाश्रित्य ॥
अभ्युदयोऽपि हि परमो,
भवति त्वत्रानुपगेण ॥ ७–१५ ॥

मूलार्थ—अहीं उत्कृष्ट फल तरीके लोकोत्तर फल–मोक्षफलनी प्राप्ति थाय छे, अने अभ्युदय फल एटले स्वर्ग-संपत्नो लाभ थाय छे, परंतु लोकोत्तर फलप्राप्तिना मध्यमां अवश्य स्वर्गादिक ऋद्धिरूप गौण फल तो आनुषंगिकपणे थाय ज

" स्पष्टीकरण "

आ श्लोकनो भावार्थ उपरना श्लोकना विवरणमां अमे कही आव्या छीए, मात्र विशेष एटलु ज के मुख्य अने गौण एम बे प्रकारे फलो थाय तेमां लोकोत्तर कार्यनु मुख्य फल मोक्षप्राप्ति थवी छे, तथा लौकिक कार्यनु मुख्य फल स्वर्गसंपत्तिनो लाभ थाय छे लोकोत्तर कार्यमां साध्यतया

मुख्य जो के मोक्षफल छे तो पण आनुषंगथी स्वर्गादिनी संपत्ति तो अवश्य प्राप्त थाय ज; परंतु ते कांइ साध्य नथी ज्यारे लौकिक कार्यमा साध्य तरीके स्वर्गादि संपत्ति ज मानी छे एटले तेथी मोक्षप्राप्ति थाय नहीं

प्रधान तथा आनुषंगिक फलनु स्पष्टीकरण करवा ग्रंथकर्ता दृष्टांत दर्शावे छे

कृषिकरण इव पलाल,
नियमादत्रानुषंगिकोऽभ्युदयः ॥
फलमिह धान्यावाप्तिः,
परम निर्व्वाणमिव विम्बात् ॥ ७–१६ ॥

मूलार्थ —जेम खेडुतोने कृषिकर्मनु मुख्य फल धान्य प्राप्ति अने गौण फल ते घासप्राप्ति थाय छे तेम अहीं जिनबिंबथी मुख्य फल मोक्षफल–मोक्षप्राप्ति अने स्वर्गसंपत्तिनो लाभ घास तुल्य आनुषंगिक फल जाणवु

" स्पष्टीकरण \ ।रा फलने ॰

मुख्य आनुषंगिक फल माटे दृष्टांत–दार्ष्टान्तिकनु साम्यकरण आचार्यश्री आ प्रमाणे अहीं घटावे छे कृषिकर्ममा जेम धान्यप्राप्ति ए मुख्य फल अने पलालप्राप्ति ए आनुषंगिक फल मान्यु छे, तेम जिनबिंब आदि

पवित्र अनुष्ठानोमां मुख्य फल अपवर्गलाभ तथा आनुषंगिक फल देवर्द्धि-प्राप्ति मानेल छे एटले के मुख्य साध्यभूत मोक्षनु लक्ष्य जे क्रियामां आविष्ट होय ते क्रियाने तत्त्वज्ञो लोकोत्तरक्रिया, अने जे क्रियामां आ फलनी उपेक्षा करी गौण फल देवर्द्धि आदिनु लक्ष्य होय ते क्रियाने लौकिक क्रिया कहे छे अहीं पलाल अने अभ्युदयफल तेमज धान्य अने अपवर्ग बन्ने मुख्य आनुषंगिक फलनी यथार्थ साम्यता होवाथी दृष्टांत-दार्ष्टान्तिकनी घटना बराबर सुघटित थाय छे. सार ए के-लौकिक क्रियाथी केवल अप्रधानफल प्राप्त थाय, ज्यारे लोकोत्तर अनुष्ठानथी प्रधान अप्रधान बन्ने फलोनी प्राप्ति थाय अप्रधानफल पण एवु लाभे के जेनाथी परिणामे अवश्यमेव प्रधान मोक्षफल थाय ज



(८) प्रतिष्ठाविधिषोडशकम्



गत षोडशक प्रकरणमा विस्तारथी 'जिनबिंब' करण विधि दर्शावी. ए रीते यथोक्त विधिशुद्ध परम सुंदर मंत्रन्यासपूर्वक तैयार थयेल बिंब मंदिरमां सुप्रतिष्ठित कर्युं होय त्यारे ज साध्यसाधक बने, अन्यथा ते बिंब आशातना अने हानीकर्ता ज थाय माटे तेनी तुरतमां ज प्रतिष्ठा करवी ए आवश्यक अने शास्त्रनिर्दिष्ट मार्ग कहेवाय अतएव सबंधप्राप्त अष्टम षोडशक प्रकरणमां आचार्य भगवान् प्रतिष्ठाविधिनुं कथन करे छे

निष्पन्नस्यैवं खलु,
जिनबिम्बस्योदिता प्रतिष्ठाशु ॥
दशदिवसाभ्यन्तरत.,
सा च त्रिविधा समासेन ॥ ८–१ ॥

मूलार्थ—उपर दर्शावेल विधि प्रमाणे तैयार थयेल 'जिनबिंब' नी अवश्यमेव तुरतमां एटले दश दिवसनी अंदर प्रतिष्ठा करवी एम शास्त्रो कहे छे. आ प्रतिष्ठा शास्त्रमां संक्षेपथी त्रण प्रकारनी जणावी छे

" स्पष्टीकरण "

सातमा प्रकरणमां ' जिनबिंब ' करवानी विस्तारथी जे विधि दर्शावी तदनुसार ' जिनबिंब ' तैयार थया पछी तुरतज प्रथम कहेल विधिशुद्ध मंदिरमां सुप्रतिष्ठित करवु एटले दश दिवसनी अंदर ज प्रतिष्ठा जो थाय तो ते उत्तम अने शास्त्रोक्त प्रतिष्ठा गणाय, अर्थात् आ प्रतिष्ठा-कर्ता तथा कारयिता अने श्रीसंघ स्वजनो सर्वेने एकान्त कल्याण तथा सर्वतो प्रकारे उन्नतिभूत अवश्य बने दश दिवसनी अंदर कहेवानो तात्पर्य ए के-ते उत्तम अबाध्य प्रतिष्ठा कहेवाय, बाकी मध्यम अने जघन्य प्रतिष्ठा जाणवी आथी ज श्लोकमां ' आशु ' ए पद आप्युं. श्लोकमां 'खलु' ए पद वाक्यालंकार माटे आपेल छे अथवा ' खलु ' शब्दनो ' ' एव ' अर्थ करवो. एटले दश दिवसमां ज प्रतिष्ठा करवी, परंतु त्यारबाद थाय ते उचित न गणाय आ प्रतिष्ठा पण शास्त्रमां संक्षेपथी त्रण प्रकारनी दर्शावी छे अहीं ग्रंथकर्ता " दश दिवसनी अंदर प्रतिष्ठा करवी " आटलु विधान करीने प्रतिष्ठाना प्रकारो तथा प्रतिष्ठानु स्वरूप आदिनु आगळ विस्तारथी वर्णन करे छे, परंतु प्रथम प्रतिष्ठाविधि आचार्ये न कही तेनु कारण पंचाशकना आठमा प्रकरणमा ग्रंथकर्ताए विस्तारथी प्रतिष्ठाविधि दर्शावी छे. अतएव अहीं तेनु कथन करवु ते ग्रंथ वधारवा जेवु गणाय.

अहीं प्रतिष्ठाविधिना स्वरूपनु दर्शन कराववु आवश्यक होवाथी पंचाशकमांहेलु वर्णन अमे अत्र अवतारीए छीए

" प्रतिष्ठाविधि "

स्पष्टीकरण–उपर जणाव्या प्रमाणे विधि तथा आशय शुद्ध ' जिनबिंब ' तैयार थया पछी तेनो मन, वचन अने कायाना शुभ व्यापारो साथे चद्र, ग्रह, नक्षत्र आदि शुभ योगमां उच्च स्थानमां वर्तता होय ते समये निष्पन्न मदिरमां प्रवेश करवो अर्थात् योग्य स्थलमा प्रवेश कराववो, योग्य स्थानमां विराजमान करवु, परतु ज्यां बिंब स्थापन करवु होय एवा मदिरनी आसपास अल्पमां अल्प (१००) सो हाथमां अस्थि, मांस, अशुचि आदि पदार्थो पहेलाना अगर पछीना पड्या न होय तेनी योग्य शुद्धि करवी अर्थात् क्षेत्रशुद्धि कर्या पछी ज त्या बिंब स्थापन करवु. तेमज ज्यां बिंब पधराववु होय त्यां जमीननी अदर पण अस्थि, मांस के अपवित्र पदार्थोनी तपास कर्या पछी ज पधराववु, अन्यथा ते मदिर उपघातक अने अल्प समयमां विनाशी बने आथी मदिरनी आसपास प्रतिष्ठा कर्या पछी पण अपवित्र पदार्थो पडे नहीं, गदकी कोइ करे नहीं तेनो खास विवेक राखवो जोइए ए प्रमाणे क्षेत्रनी शुद्धि कर्या पछी ते जिनमदिरने प्रतिष्ठा पहेला अने पछी सुगन्ध, पुष्प, धूप आदि पदार्थोवडे अत्यत सुवासित करवु, सुगन्धमय करवु, आसपासनी जमीन पण सुवासित करवी. शास्त्रकर्ता कहे छे के निश्चयथी सुगन्धमय करवु, जेथी दुर्गन्धना सस्कारो उडी जाय, उत्तम देवताओ प्रसन्न थाय, हृदय अने आनद पामे, दिलनु आकर्षण थाय. लोकोमां

प्रथमा थाय त्यारबाद दश दिग्पालो, चार लोकपालोनी स्थापना करी तेनी पूजा–सन्मान आदि करवा, तेमज बाकी अन्य देवताओनी पण पूजा–सन्मान आदि करवा एटले बलि–बाकूल आदि अर्पण करवा अत्र केटलाकोनी एवी दलील छे के–देवताओ असयमी होवाथी तेओनी पूजा शा माटे करवी ? केमके तेओनी पूजा करवाथी असयमपणानु पोषण थाय छे जो के आ दलील देखावमा घणी सुदर छे, तो पण भ्रमजनक होवाथी आचार्यश्री आ भ्रमनु निरसन आ प्रमाणे करे छे अहीं जे 'बिंब' नी प्रतिष्ठा कही ते 'बिंब' ना मालीक तीर्थंकरदेव छे, अने तीर्थंकरदेव देव, असुर, विद्याधर, मनुष्य, जानवर आदि सर्व जीवोने पूज्य–अभ्यर्चनीय छे आथी जेम राजा गादीनशीन थाय त्यारे सर्वनो उचित सत्कार करी सर्वने खुश राखवामा आवे छे, सर्व प्रजाने हर्षनु कारण थाय छे तेम तीर्थंकरदेवनी मूर्ति पण ज्यारे गादीनशीन थाय त्यारे सर्वनो उचित सत्कार करवो आवश्यक छे, जेथी निर्विघ्न कार्य समाप्त थाय अत. अविरति एवा देवी–देवताओनी ते समये पूजा करवी ए काइ अघटित नथी किन्तु सुघटित ज छे, तथा दश दिग्पालो, चार लोकपालो सम्यग्दृष्टि अने महर्द्धिक देवताओ छे, अतएव तेओ आपणा समानधर्मा–साधर्मी बन्धु होवाथी, वळी मिथ्या दृष्टि देवताओ पण द्रव्यथी साधर्मिक बन्धु होवाथी प्रतिष्ठा

" प्रतिष्ठाविधि "

स्पष्टीकरण—उपर जणाव्या प्रमाणे विधि तथा आशय शुद्ध ' जिनबिंब ' तैयार थया पछी तेनो मन, वचन अने कायाना शुभ व्यापारो साथे चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि शुभ योगमां उच्च स्थानमां वर्तता होय ते समये निष्पन्न मंदिरमां प्रवेश करवो अर्थात् योग्य स्थलमा प्रवेश कराववो, योग्य स्थानमां बिराजमान करवु; परंतु ज्यां बिंब स्थापन करवु होय एवा मंदिरनी आसपास अल्पमां अल्प (१००) सो हाथमां अस्थि, मांस, अशुचि आदि पदार्थो पहेलाना अगर पछीना पड्या न होय तेनी योग्य शुद्धि करवी अर्थात् क्षेत्रशुद्धि कर्या पछी ज त्यां बिंब स्थापन करवु. तेमज ज्यां बिंब पधरावबु होय त्यां जमीननी अंदर पण अस्थि, मांस के अपवित्र पदार्थोनी तपास कर्या पछी ज पधाववु, अन्यथा ते मंदिर उपघातक अने अल्प समयमां विनाशी बने. आथी मंदिरनी आसपास प्रतिष्ठा कर्या पछी पण अपवित्र पदार्थो पडे नहीं, गदकी कोइ करे नहीं तेनो खास विवेक राखवो जोइए ए प्रमाणे क्षेत्रनी शुद्धि कर्या पछी ते जिनमंदिरने प्रतिष्ठा पहेला अने पछी सुगन्ध, पुष्प, धूप आदि पदार्थोवडे अत्यंत सुवासित करवु, सुगन्धमय करवु, आसपासनी जमीन पण सुवासित करवी. शास्त्रकर्ता कहे छे के निश्चयथी सुगन्धमय करवु, जेथी दुर्गन्धना संस्कारो उडी जाय, उत्तम देवताओ प्रसन्न थाय, हृदय अने आत्मा आनंद पामे, दिलनु आकर्षण थाय लोकोमां

प्रथमा थाय त्यारबाद दश दिग्पालो, चार लोकपालोनी स्थापना करी तेनी पूजा-सन्मान आदि करवा, तेमज बाकी अन्य देवताओनी पण पूजा-सन्मान आदि करवा एटले बलि-बाकूल आदि अर्पण करवा अत्र केटलाकोनी एवी दलील छे के-देवताओ असयमी होवाथी तेओनी पूजा शा माटे करवी ? केमके तेओनी पूजा करवाथी असयमपणानु पोषण थाय छे जो के आ दलील देखावमा घणी सुदर छे, तो पण भ्रमजनक होवाथी आचार्यश्री आ भ्रमनु निरसन आ प्रमाणे करे छे अहीं जे 'बिंब' नी प्रतिष्ठा थही ते 'बिंब' ना मालीक तीर्थंकरदेव छे, अने तीर्थंकरदेव देव, असुर, विद्याधर, मनुष्य, जानवर आदि सर्व जीवोने पूज्य-अभ्यर्चनीय छे आथी जेम राजा गादीनशीन थाय त्यारे सर्वनो उचित सत्कार करी सर्वने खुश राखवामा आवे छे, सर्व प्रजाने हर्षनु कारण थाय छे तेम तीर्थंकरदेवनी मूर्त्ति पण ज्यारे गादीनशीन थाय त्यारे सर्वनो उचित सत्कार करवो आवश्यक छे, जेथी निर्विघ्न कार्य समाप्त थाय अत अविरति एवा देवी-देवताओनी ते समये पूजा करवी ए काइ अघटित नथी किन्तु सुघटित ज छे, तथा दश दिग्पालो, चार लोकपालो सम्यग्दृष्टि अने महर्द्धिक देवताओ छे, अतएव तेओ आपणा समानधर्मी-साधर्मी बन्धु होवाथी, वळी मिथ्या-दृष्टि देवताओ पण द्रव्यथी साधर्मिक बन्धु होवाथी प्रतिष्ठा

समये तेओनी पूजा करवी न्यायसंगत ज छे उचित समये साधर्मीनो म कार न करवो, एना समान अन्य अज्ञानता अथवा धर्मतत्त्वनु अनादरपणु क्यु कहवाय ? ए रीते देवना-ओनो सत्कार कर्या पछी चद्र, नक्षत्र, ग्रहादिकना शुभयोगमा प्रतिमा स्थापन उचित स्थल पर मगलमय गायनादिपूर्वक चदनादि पदार्थो सह मूर्त्तिने पधरावची, अने प्रतिष्ठा-कल्पमा वर्णवेल सुगन्धी द्रव्यमिश्रित जलथी मूर्त्तिने पखाली शुद्ध करवी जेथी मूर्त्ति प्रतिष्ठा योग्य थाय, तेमज जिनमूर्त्तिनी समिपे चार दिशाओमा चादी, सुवर्ण, रत्न, पुष्प आदि पदार्थोवडे भरेला अथवा युक्त चार मगलकुभो स्थापन करवा आ कुभो पण हाथथी कातेल अने चार शरनाला सुतरथी मुख बाधीने स्थापवा, एटले कन्यासुतरथी मुख बाधीने स्थापन करवा, त्यारपछी घी अने गुडथी भरेला मगलदीपको स्थापवा, तथा खाजा विगेरे मनोहर खाद्य पदार्थो धरवा, अखड शेरडीना साठा, केळ, जवारारोपण, चदन अने स्वस्तिक विगेरे करवा, ऋद्धि वृद्धि नामनी औषधियोए करीने सहित अनेक मगलककणो मूकवा पछी प्रथम दिवसे सुगधी गधयुक्त एवा चदनथी मूर्त्तिने विलेपन करवु अने सौभाग्य-वती तथा उत्तम प्रशस्त वेश अलकारवती चार अथवा अधिक स्त्रीयोए मूर्त्तिने [illegible] विलेपन—पूजा आदि करवी [illegible] फलो, वस्त्रो, सुवर्ण, [illegible] बनी शके तो

उत्कृष्ट पूजा करवी तथा शक्ति प्रमाणे अनेकविध वलियो, अनेकविध सुगंधो, अनेकविध कुसुमो, अनेकविध सुगन्धो—चूर्णो, अनेक प्रकारनी रचनाओ, नाट्यो—गायनोवडे महोत्सव करवो, एटले अष्टाइमहोत्सव, शान्तिस्नात्र, विविध रचनाओ शक्ति अनुसार अवश्य करवी त्यारपछी मूर्ति अग्र चैत्यवन्दन करी प्रवर्धमान स्तुतिरूप स्तुति करवी, तेमज विघ्नशान्ति अर्थे शासन देवतानो एक 'लोगस्स'नो कायोत्सर्ग करवो, इष्ट गुरुदेवनु स्मरण करवु आटलु कर्या पछी प्रतिष्ठाप्य जिनबिंब अने प्रतिष्ठा करनारनी पूजा करी शुभ लग्न मुहूर्तमा पञ्चपरमेष्ठी नमस्कारमंत्रनु स्मरणपूर्वक अथवा मंगलान्तरपूर्वक ते जिनबिंबनी प्रतिष्ठा करवी आ रीते प्रतिष्ठा कर्या पछी प्रतिष्ठित बिंबनी पुष्प आदिथी पूजा करी चैत्यवदन करवु, अने उपसर्ग नाश माटे फरी शासनदेवतानो कायोत्सर्ग करवो एम आटली विधि कर्या पछी आ प्रतिष्ठाविधि पूर्ण थाय छे, माटे अहीं समाप्ति करवी अर्थात् देवताओने विसर्जन करवा, तेमज हृदयनी स्थिरता थाय तेम अने प्रतिष्ठा स्थिर बने तेवो आशिर्वादरूप प्रतिमा अग्रे निम्न लिखित मंगलमय गाथानो पाठ करवो —

जह सिद्धाण पतिट्ठा तिलोगचूडामणिम्मि
सिद्धिपदे । आचंदसूरिय तह होउ इमा
सुप्पतिट्ठ त्ति ॥ १ ॥

भगवतनु शासन वर्ते छे एटले शासनाधीश्वर महावीर देवनी मूर्त्ति पधरावीए, तेमज पार्श्वनाथ प्रभुना शासन वखते तेमनी पधरावीए ए रीते आ भरतक्षेत्रमा चतुर्विंशति जिनेश्वरो पैकी जे तीर्थंकरनु शासन होय अने ते तीर्थंकरनी मूर्त्ति पधरावीये ते सर्व व्यक्तिप्रतिष्ठा जाणवी आ परथी जे काले अन्य जिनेश्वरनु शासन चालु होय अने अन्य तीर्थंकरनी मूर्त्ति स्थापन करवी आ प्रतिष्ठा मध्यम अर्थात् क्षेत्रप्रतिष्ठान्तर्गत जाणवी वर्तमानमा जेम महावीरदेवनु शासन विद्यमान छता पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ विगेरे कोइ पण प्रभुनी मूर्त्ति स्थापन थाय छे, अतएव आ प्रतिष्ठा क्षेत्रप्रतिष्ठा कहेवाय, किन्तु आद्य प्रतिष्ठा न गणाय एम सिद्ध थइ चूक्यु.

हवे ' क्षेत्राख्य ' नामे द्वितीय प्रतिष्ठानु स्वरूप जणावे छे

ऋषभाद्याना तु तथा,
सर्वेषामेव मध्यमा ज्ञेया ॥
सप्तत्याधिकशतस्य तु,
चरमेह महाप्रतिष्ठेति ॥ ८–३ ॥

मूलार्थ—ऋषभदेव आदि तथा चतुर्विंशति जिनेश्वरोनी प्रतिष्ठा ते मध्यम प्रतिष्ठा जाणवी, अने उत्कृष्टथी एक सो ने सित्तेर (१७०) जिनेश्वरोनी प्रतिष्ठा तेनु नाम अतिम महाप्रतिष्ठा जाणवी

" क्षेत्रप्रतिष्ठा "

स्पष्टीकरण–क्षेत्रप्रतिष्ठा–आदिनाथ विगेरे चोवीश जिनेश्वरोनी मूर्त्तिओ पधरावबी ते आ प्रतिष्ठाने शास्त्रकर्त्ता मध्यम प्रतिष्ठा कहे छे अहीं ग्रंथकार "ऋषभाद्याना तु" ए पदथी रुषभदेव विगेरे कोइ पण जिनेश्वरनी अने "तथा सर्वेषामेव" चोवीशेनी प्रतिष्ठा करवी तेनु नाम मध्यम प्रतिष्ठा कहे छे टीकाकार "ऋषभाद्याना सर्वेषा" ए बन्ने पदोनो विशेष्य विशेषण भाव दर्शावी रुषभदेव आदि चोवीशे तीर्थंकरोनी प्रतिष्ठाने क्षेत्रप्रतिष्ठा जणावे छे टीकाकारना आशयथी केवल जे समये अन्य प्रभुनु शासन वर्तनु होय त समये अन्य कोइ जिनेश्वरनी मूर्त्ति पधरावीए, आ प्रतिष्ठाने कइ प्रतिष्ठामा गणवी ए शका उपस्थित थाय छे, कारण के जे समये जेनु शासन होय ते समये तेनी मूर्त्तिनी स्थापना करवी तेनु नाम व्यक्तिप्रतिष्ठा कही गया छे अतएव आ शकाना निरसन माटे "ऋषभाद्याना" अने "सर्वेषामेव" ए पदोने स्वतंत्र राखी अर्थ करीए तो बराबर सुघटित थाय आज आशयने हृदयमा धारी मूलकर्त्ताए "तु अने तथा" पदो आप्या होय एवु अनुमान आपणे केम न करीए? आम छता एक शका तो अवश्य विचारज्ञोने उपस्थित थशे आ शका ए ज के–ज्यारे आदिनाथ, पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ विगेरे एक ज मूर्त्तिनी स्थापना करीए अने तेने क्षेत्रप्रतिष्ठा मानीये, तथा जे समये जे भगवाननु शासन होय ते भगवाननी मूर्त्ति पधरावीए तेनु नाम व्यक्ति-

प्रतिष्ठा मानीए त्यारे बन्ने प्रतिष्ठामा भेद न होवाथी अलग शा माटे कही ? आनो उत्तर एटलो ज के व्यक्ति-प्रतिष्ठामा केवल वर्तमान शासननायक सिवायनी प्रतिष्ठा न थाय ज्यारे क्षेत्रप्रतिष्ठामा शासननायक सिवाय कोइ पण तीर्थंकर अने चोवीश जिनेश्वरोनी मूर्त्ति पधरावी शकाय परमार्थ ए के-अमुक व्यक्तिनी अपेक्षाए व्यक्ति प्रतिष्ठा अने भरत अथवा ऐरावत क्षेत्रनी अपेक्षाए क्षेत्र प्रतिष्ठा जाणवी आ बे प्रतिष्ठानु स्वरूप कह्या पछी ग्रंथकर्त्ता अर्धश्लोकथी "महाप्रतिष्ठा" नु स्वरूप कहे छे.

' महाप्रतिष्ठा '

महाविदेह, भरत अने ऐरावत आ सर्व क्षेत्रोना मली एक सो सित्तेर १७० तीर्थंकरोनी मूर्त्तिओ पधराववी, आ प्रतिष्ठाने शास्त्रकर्त्ताओ चरम-महाप्रतिष्ठा एवु नाम आपे छे, अर्थात् आ त्रणे प्रतिष्ठाओनी जे जे सज्ञाओ छे तेवो ज तेनो गर्भितआशय छे निदान ए के-महाप्रतिष्ठामा सर्व क्षेत्रोना तीर्थकरोनी मूर्त्तिओ पधरावाय माटे महाप्रतिष्ठा

ए रीते त्रण प्रकारनी प्रतिष्ठा जणावी आ त्रणे प्रकारनी प्रतिष्ठा सातमा षोडशकमा दर्शावेल उत्तम पवित्र आशय तथा वर्तनवान् भाविक ग्रहस्थे उत्तम कारीगर पासे विधि शुद्ध बनावेल जिनबिंबोनी ज थाय पाठकोने आ वात फरी जणाववानी अमे जरुर देखता नथी, आटलो निर्देश कर्या पछी अहीं कोइ शका उपस्थित करे के—

" प्रतिष्ठा कोनी ? "

आ प्रतिष्ठा कोनी ? अष्टकर्मनो नाश करी मोक्षे गयेल एवा परमेश्वरनी आ प्रतिष्ठा कराय छे अर्थात् बनावेल जिनबिंबमा ते परमात्माने अमे स्थापीए छीए, एम जो कहो तो आ उत्तर केवल माटीनी पोली भित जेवो छे, कारण के जे परमात्मा मोक्षमा बिराजे छे, जेओए आठ कर्मनो नाश करी संसार दूर कर्यो छे तेओ गमे तेवा विशिष्ट मन्त्रोना अनेक संस्कार करवा छता अहीं उतरी शकता नथी. यदि मन्त्रोना संस्कारथी तेओ आवता होय तो तेओ मुक्त-सिद्ध थया छे ए कथन भ्रममूलक गणाय सिद्ध तो एज कहेवाय के जेओ फरीने अहीं आवे नहीं आ हेतुथी " सिद्धनी प्रतिष्ठा " आ उत्तर भ्रमनाशक न गणाय अतएव यदि एम कहो के-संसारवर्ती कोइ देवजातिमा रहेलनी प्रतिष्ठा करीए छीए, तो आ उत्तर पण केवल युक्ति-खंडित छे हेतु ए के-संसारवर्ती कोइ देवजाति विशेष सर्वदा एक ज स्थान पर स्थित थइ शकती नथी ए तो संसारी होवाथी अन्यत्र अन्यत्र गमनागमन अवश्य करे, एटले मन्त्रादि संस्कारविशेषद्वारा आ संसारवर्ती देवजाति विशेषनी स्थापना ए तो नितान्त अघटित छे. धारो के-कदाचित् कोइ समये आ देवजाति विशेष अहीं आवे छे अर्थात् मूर्त्तिमा पोतानो सद्भाव दर्शावे एतावत् मात्रथी काइ प्रतिष्ठानी सिद्धि न गणाय, प्रतिष्ठासिद्धि तो त्यारे ज

कहेवाय के जे देवतत्त्व सर्वदा मूर्त्तिमा विद्यमान थाय. आ शंकाना निरसन माटे आचार्य भगवत जणावे छे के- विशिष्ट आत्मभावनी ज प्रतिष्ठा थाय छे किन्तु मुक्त अथवा समारस्थ देवजाति विशेषनी मूर्त्तिमा स्थापना अमे जणावता नथी, परतु मूर्त्तिमां विशिष्ट आत्मभावनो ज आरोप करवो तेने अमे प्रतिष्ठा कहीए छीए एटले उपरोक्त शंका अर्थवगरनी ज सिद्ध थाय छे, ए ज भावनु दर्शन करावता आचार्यश्री कथन करे छे

भवति च खलु प्रतिष्ठा,
निजभावस्यैव देवतोद्देशात् ॥
स्वात्मन्येव पर यत्,
स्थापनमिह वचननीत्योच्चैः ॥ ८–४ ॥

मूलार्थ—प्रतिष्ठित मुख्य देवना उद्देशथी देवविषयक आत्मिक भावनी ज स्व–आत्मामां स्थापना करवी एटले के–आत्मामा परमात्मभावनो पूर्ण ख्याल करवो तेनु ज नाम अहीं आगमवचनथी उच्च–अतिशय मुख्य प्रतिष्ठा कही छे, अने जिनबिंबमां तो देवविषयक आत्मीयभावनो आरोप करवो तेनु नाम बाह्य औपचारिक प्रतिष्ठा कही छे

" आत्मप्रतिष्ठा "

स्पष्टीकरण—आत्मा बाह्य अने आभ्यन्तर बे

प्रतिष्ठा कही छे परमार्थ ए के–उपरोक्त ध्यान विना आ प्रतिष्ठा अशक्य कही छे

" आत्मामा परमात्मपणु केम थाय ? "

अहीं पाठकोने शंका अवश्य थशे के मुख्य परमात्मा अनंतगुणविशिष्ट परम ज्योतिरूप छे, अने प्रतिष्ठाकर्ता एक संसारी पुरुष छे, ते यदि परमात्मगुणनु ध्यान करे तो एकाद गुणनु ध्यान करी शके ते पण मात्र विचारपणे, परंतु अनुभवरूप तो नहीं ज परमात्मगुणनो अनुभव तो त्यारे ज थाय के जो परमात्मपणुं प्राप्त थाय. हव परमात्माना एकाद गुणनु ध्यान करवाथी पूर्ण परमात्मस्वरूप साथे प्रतिष्ठाकर्तानी तन्मयता अने पराना आत्मामां परमात्मपणानी प्रतिष्ठा मानवी ए युक्तिथी अग्राह्य विषय छे, एटले स्वात्मामां परमात्मानी प्रतिष्ठा करवी ए नितान्त अघटित ज सिद्ध थाय छे आ प्रश्ननु समाधान उपाध्यायजीए स्वटीकामां आ प्रमाणे कर्युं छे शास्त्रकर्ता स–आत्मामां परमात्मानी प्रतिष्ठा करवानो उपदेश "वचन नीत्योच्चैः " ए पदथी करे छे, एटले के–वचनानुष्ठानवडे प्रतिष्ठा करवानुं दर्शावे छे शास्त्रकारनी आज्ञा लक्ष्यमां राखी जे क्रिया थाय तेने शास्त्रकर्ताए वचनानुष्ठान कह्यु छे अहीं

१ जो पुण जिणगुणजोईगसुत्तविहाणेण वयणसुणइ । वयणाणुट्ठाणमिण परिसित्तिणो होइ नियमेण ॥१॥ चेइयवंदणभाष्य० गा० ॥११॥ जे कोइ चैत्यवंदनसूत्रना विधानवडे जिनेश्वरोनी वंदना करे तेनु नाम वचनानुष्ठान कहुं आ अनुष्ठान संयमीने अवश्य होय

वचनानुष्ठान ए पदनी पूर्वोक्त व्याख्या प्रमाणे जेओ शास्त्राज्ञा प्रमाणे वर्तन करे, प्रत्येक क्रियामा शास्त्रनु ज जेओ अवलंबन करे, परमात्मपणु प्राप्त करवा वारंवार अभ्यास करे, परमात्माना प्रत्येक गुणोनु स्मरण करी तेनु ध्यान करे, एवा निर्मल आत्मामा ज आ परमात्मभावनी स्थापना थइ शके तथा ए ज आत्मा परमात्मस्वरूपनी साथे तन्मयता करी शके छे, एटले के-जेम विदग्ध कामी युवक कोइ लावण्यसौभाग्य रूपकलासपन्न ललनामा आसक्त थया पछी तेनो ज अहर्निश विचार करे छे, तेने स्वहस्तगत करवा सयोगो खोळे छे, तेना विविध गुणो स्वदृष्टिए निहाळे छे अने तेथी तें विलासी पुरुषना हृदयमा, चक्षुमा, छायामा, शब्दमा ते ज ललनानी मूर्त्ति आळेखाय छे, निद्रा के तद्रा, स्वप्न के जागृतावस्थामा तेने ज देखे छे अहीं आ कामी आ स्थितिना लीधे काइ पुरुष मटी स्त्रीरूप बनतो नथी, तेमज स्त्रीना गुणोनो यथावत् अनुभव के वेदन ते करतो नथी; तथापि तेना रागथी तन्मयतानो तो जरुर ते अनुभव करे छे अने आ अनुभवना परिणामे कामी स्वहृदयमा ते ललनानी मूर्त्तिनु अपूर्व स्वरूप खडु करी रातदिन तेनी प्राप्तिनी लालमाथी झूर्या करे छे आ वातनो अनुभव पाठकोने समजाववा माटे अमारे वधारे प्रयास करवानी आवश्यक्ता नथी ए ज रीते वचनानुष्ठान प्रमाणे वर्तनार परमात्मभावनु अपूर्व ध्यान, तेनी तन्मयता अने परमात्माना एकाद

गुणना स्मरण मात्रथी स्व–आत्मामा परमात्मानो आरोप अथवा तो परमात्मानु चित्र केम न खडु करी शके ? अवश्य करी शके आथी ज उपाध्यायजी उपरोक्त शकाना समाधानमा जणावे छे के–प्रतिष्ठित देवना एकाद मुख्य गुणनु ध्यान करवाथी विचक्षण आत्मा स्वात्मामा देवना सर्व गुणोनो आरोप करी "हु पण आ सर्व गुणवान् परमात्म स्वरूप छु, परमात्मा अने मदीय आत्मामा किंचित् पण विषमता नथी, जे गुणो परमात्मामा छे ते ज गुणो मारा आत्मामा तिरोभानरूपे रह्या छे, यदि त ज गुणो आविर्भावने पामे तो हु अने परमात्मामा भेद रह नहीं " आ स्थितिनो अनुभव करी शके छे परिणामे परमात्मानी स्थापना यथावत् स्वात्मामा वचनानुष्ठानकारी अवश्य करी शके छे अत्र महर्षिओ ध्याता अन्तरात्मा, ध्येय परमात्मा अने अन्तरात्मानी परमात्मा साथे ऐक्यता ने ध्यान–आ त्रिपुटीनो सयोग थया पछी अतरात्मा पोतानामा परमात्मभावनी प्राप्ति अथवा प्र

भाग्यवान् थाय छे, एम खुल्लु जणावे छे

टिकमा जेम दृष्टानु तद्वत्

निर्मल अन्तरात्मरूप

पण आविर्भूत थाय छे

एक सुदर दृष्टात पण

भ्रमरित्वमुपजायते " "

जेम भ्रमरीभावने प्राप्त थ

प्रकरणमां परमात्मभावनो अनुभव कयो आत्मा केवी स्थितिए करी शके तेनो उल्लेख आ प्रमाणे करे छे–जीतेंद्रिय, धीर, प्रशान्त, निश्चलवृत्ति, दृढासनस्थित, नासिकाना अग्रभागे स्वदृष्टिने टेकावनार एवो योगी तथा ध्यानना धारावेगथी पौद्गलिक भावमांथी मननो रोध करनार, प्रसन्न, अप्रमादी पुरुष चिदानंद संबंधी अमृतरसनो अपूर्व स्वाद करे छे आ सर्व कथननो कथितार्थ एटलो ज के प्रतिज्ञा करनार समारस्य पुरुष छता परमात्म संबंधी एक अथवा अनेक गुणोनुं स्मरण, चिंतन अने ध्यानद्वारा तन्मय थवाथी नितान्ततया स्वात्मामां परमात्माना प्रतिबिंबने अवतारी शके ए निःसंशय छे, अरे ! युक्ति अने प्रमाणथी अखंडित छे आ भावार्थ "वचननीत्योच्चैः" ए पद साथे ग्रंथकार आपेल "उच्चैः" पद परथी प्राप्त थाय छे, एम उपाध्यायजी कहे छे

---

१ ध्याता ध्येयं तथा ध्यानं त्रयं यस्यैकतां गतम् । मुनेरनन्यचित्तस्य तस्य दुःखं न विद्यते ॥ १ ॥ ध्याताऽन्तरात्मा ध्येयस्तु परमात्मा प्रकीर्तितः । ध्यानं चैकाग्रसंवित्तिः समापत्तिस्तदेकता ॥ २ ॥ मणौ बिम्बप्रतिच्छाया समापत्तिः परात्मनः । क्षीणवृत्तौ भवेद् ध्यानादन्तरात्मनि निर्मले ॥ ३ ॥ जितेन्द्रियस्य धीरस्य प्रशान्तस्य स्थिरात्मनः । सुखासनस्य नासाग्रन्यस्तनेत्रस्य योगिनः ॥ ६ ॥ रुद्धबाह्यमनोवृत्तेर्धारणाधारयारयात् । प्रसन्नस्याप्रमत्तस्य चिदानन्दसुधालिहः ॥७॥ ज्ञानसार, अष्टक ३० ॥

आ प्रमाणे आभ्यन्तरप्रतिष्ठा सबंधीनो विचार आपणे अहीं कर्यो, कारण के प्रतिष्ठाकर्ताने आभ्यन्तरप्रतिष्ठानुं तत्त्व पाम्या वगर बाह्यप्रतिष्ठा करवाने अनधिकारी गण्यो छे, एटले प्रथम प्रतिष्ठाकर्त्ता स्वात्मामा परमात्मप्रतिष्ठा कर्या पछी ज बाह्यप्रतिष्ठा करी शके, अने ते ज बाह्यप्रतिष्ठा अन्यने पूजाफलदात्री बने, अतएव अहीं हवे बाह्यप्रतिष्ठानो विचार करवो अत्यावश्यक गणाय

" बाह्यप्रतिष्ठानी उपयोगिता "

बाह्य प्रतिष्ठानो मुख्य अर्थ एटलो ज के–पूर्वोक्त प्रकारे विधिशुद्ध अने उत्तम कारीगरनिर्मित जिनबिंबमा परमात्मभावनो आरोप करवो अर्थात् परमात्मानी तेमा स्थापना करवी अत्रे पाठके पहेला शंका करेल हती के–मूर्त्ति पाषाणनी अने परमात्मा क्षीणकर्मा ज्योतिस्वरूप सिद्धस्थानस्थित एटले मंत्रादिविशिष्ट संस्कारद्वारा तेनो आरोप मूर्त्तिमा कोइ प्रकारे थइ शके नहीं, तथा थाय तो सिद्धपणु न घटे अहीं आ शंकानु निरसन आ प्रमाणे जाणवु

प्रथम तो शास्त्रमा जेवा अवयवो, आकार, प्रमाण तथा जिनमूर्त्तिनु वर्णन कर्युं छे तेवा ज आकारमय जिनमूर्त्ति निर्माण करवी, एटले जेना दर्शनमात्रथी दृष्टाना हृदयमा एकाएक आ जिनमूर्त्ति छे अने जिनेश्वरना शरीरतुल्य आकारवान् आ प्रतिमा छे एवो सचोट भास थाय त्यारबाद आ

जिनमूर्त्तिमां पूर्वे दर्शावेल गुणवान् प्रतिष्ठा करता स्वात्मामां प्रतिमासमान् परमात्मानो उपचारथी आरोप करे, अर्थात् पोतानो परमात्म संबंधी उच्च आशय तेमां स्थापे, हृदयस्थ परमात्म मूर्त्ति अने बाह्य पाषाणस्थ जिनआकारनी तुलना करी विचार करे, भावना करे के-आवा आसन पर विराजित परमात्माए सिद्धस्थान प्राप्त कर्युं, मूर्त्तिमां जे शान्तिरस, निर्विकारदृष्टि, अपूर्व सौम्यता, अद्‌भुत वैराग्य, अपूर्व त्याग, आश्चर्यकारी ध्यान, चमत्कारी तेज, दिव्य प्रसन्नता, अलौकिक योग आदि भावोनी छाया दृष्टिगत थाय छे, तेनाथी अनंतगुणविशिष्ट ज्योतिस्वरूप परमात्मामां ते ते भावोनो योगीओ साक्षात्कार करे छे, आ मूर्त्ति तो मात्र ते ते गुणोनुं ध्यान करवानुं पगथीयुं, केवल एक बाह्य साधन छे प्रतिष्ठा-कर्त्ता ज्यारे मंत्रादि संस्कारोथी आ भावनो ते मूर्त्तिमां उपचार करे छे, एटले अन्य धर्मी मनुष्यने आ मूर्त्ति ध्याननुं साधन, गुणभावना करवानुं स्थान, जिनत्वपणानो ख्याल करावनार अने विविध पूजानुं फल आपनार बने छे, कारण के प्रामाणिक गुणवान् अने विशिष्ट धर्मीजन ज्यारे पोतानो अपूर्व सद्‌भाव तेमां स्थापन करे त्यारे अन्य सामान्य जनो पूजा विगेरे कार्योमां अवश्य प्रवृत्ति करे छे

छेवटे परिणामे ते ते लोको पूजानुं अद्‌भुत फल प्राप्त करे छे आ रीते प्रतिष्ठाकर्त्ता स्वात्मगत परमात्मभावनो बाह्य

कही, पण अन्य प्रतिष्ठानो निषेध कर्यो तेनु शु कारण ? आ शकानु निरसन ग्रथकर्ता आ प्रमाणे जणावे छे.

बीजमिद परम–
यत्परमाया एव समरसापत्ते ॥
स्थाप्येन तदपि मुख्या,
हन्तैषैवेति विज्ञेया ॥ ८–५ ॥

मूलार्थ—मुख्य ठवना उद्देशथी स्वात्मामा निज भावनी प्रतिष्ठा करवी ते ज प्रतिष्ठा परम–उत्कृष्ट समरस-मुख्य देवतुल्य भावप्राप्तिनु परम कारण एटले बीजभूत मानेल छे, अतएव बहिर्वर्ती मूर्तिद्वाराए पण ते ज आत्मिक भावनु पोषण थाय छे अने तेमा उपचारथी निजभावनो ज आरोप करीए छीए माटे परमार्थथी ए ज प्रतिष्ठा मुख्य जाणवी

" स्पष्टीकरण "

स्वात्मा अने परमात्मा आत्मत्वभावरूपण अने गुण-रूपेण समान ज छे, केवल परमात्मा ए शुद्ध–निदोप काचन तुल्य शुद्ध स्वरूप छे ज्यारे आत्मा मलीन–माटीमिश्रित काचन तुल्य अशुद्ध स्वरूप छे हवे स्वात्मा परमात्मपणु प्राप्त करवाने परमात्मभावनो विचार, तेनु ध्यान, पूजन, स्मरण करे तो ज परमात्मा थाय आ ध्यान, विचार तथा पूजन आदि परमात्माकारनु अवतरण विना न ज बने,

एटले मुख्यत' स्वहृदयमा परमात्मानो आभास करवो अने पछी ते आभासने मूर्त्तिमा उतारजो–आरोप करवो आ आरोपने महर्षिओए बे विभागमा विभक्त कर्यो छे प्रथम तो स्वात्मामा परमात्मानु बराबर ध्यान करवु ते मुख्य अने बीजो बाह्यमूर्त्तिरूपे खडो करवो ते गौण आने ज शास्त्रकर्ताए प्रतिष्ठा एवी सज्ञा अर्पी छे परमात्मानु ध्यान करी आत्मामा पूर्ण परम शान्तिरस प्राप्त करवो ते ज परमात्मपूजननु अलौकिक फल मान्यु छे, एटले अतरमा परमात्मचिन्तनद्वारा निजभावनी विशुद्धि थाय, निजात्मा परमात्म तुल्य छे एवो अबाधित बोध थाय अने त्यारपछी ज आत्मामां परम शान्तिरस विस्तरे आ परम शान्तिरसप्राप्तिमा मुख्य कारण–प्रधानबीज अतरमा स्थापित परमात्म सबधी विचारो ज थाय छे, ते सिवाय अन्यथा प्रकारे शान्तिरसनो लाभ थतो नथी तेमज निजभावनी विशुद्धि बाद स्वात्मामा परमात्मानो ख्याल थया पछी स्वात्मा अने परमात्मभावनो अभेद बोध थाय, अत शास्त्रकर्ताए अहीं स्वात्मामा देवविषयक निजभावनो आरोप करवो तेनु ज नाम प्रधान प्रतिष्ठा जणावी. आ सिवाय अन्य प्रतिष्ठाने अप्रधान कही, तेमज बाह्य जिनमूर्त्तिमा पण निजभावनो आरोप करी ते ज जिनमूर्त्ति–द्वाराए परमात्म स्वरूपनो विचार करवाथी अतरमा निजभावनी वृद्धि थाय अने शान्तरसनी अलौकिक प्राप्ति थाय छे आ हेतुथी पण देवविषयक निजभावनी स्थापना करवी तेनु

गंत मानी पण नथी आथी ज शास्त्रकर्ता कहे छे के-निज भावनी स्थापना करवी ते ज पारमार्थिक प्रतिष्ठा जाणवी अने मोक्षस्थ आत्मानी प्रतिष्ठानो निषेध कर्यो छे तेमज संसारस्थ अवीतराग, असर्वज्ञ दशोमां अहंत्व-ममत्वना कारणथी 'आ मारु स्थान' ए भावना अवश्य होय छे अने तेओनो नाम पण मूर्तिमां मर्यादा थइ शके छे, पण ते संसारी देव होवाथी तेनो स्थापना मात्रथी काइ परमात्मपूजननु फल अथवा ध्यान प्राप्त थाय नहीं, एव आ स्थापना परमात्मानी स्थापना एवो पण निर्देश थइ शके नहीं वळी अहीं परमात्मानी स्थापना अभिप्रेत छे माटे आ संसारी देवनी स्थापना पण अमुख्य स्थापना मानी छे हवे परमात्मदेव विषयक निजभाव स्थापनाकर्त्तामा अवश्य छे तथा ते स्थापनाकर्ता अहीं ज विद्यमान छे अने मूर्ति पण अहीं ज दृश्यमान छे, एटले परमात्म संबंधी पवित्रभाव प्रतिष्ठाकर्ता स्वहृदयमां आरोपी ते ज भाव बहिर्वर्ती पाषाणमूर्तिमा पण उपचारथी मन्त्रादि संस्कारो-द्वारा निश्चयेन करी शके, अतएव ए ज प्रतिष्ठा अहीं मुख्य प्रतिष्ठा आचार्यदेवे कही

ए ज वातनी अधिक पुष्टि माटे आचार्यश्री फरीने जणावे छे

इज्यादेर्न च तस्या,
उपकार कश्चिदत्र मुख्य इति ॥

तदतत्त्वकल्पनैषा,
बालक्रीडासमा भवति ॥ ८–७ ॥

मूलार्थ—मोक्षस्थ आत्मानो मूर्त्तिमा आरोप करी पछी तेनी पूजा, स्नात्र आदि द्वारा तेने प्रसन्न करवा माटे प्रयत्न करवो, तो आ प्रयत्नथी ते देवने काइ मुख्य उपकार थयो एम अहीं मानवु नहीं, कारण के–आ कल्पना ज अपारमार्थिक होवाथी आ प्रतिष्ठा बालक्रीडा तुल्य जाणवी

" स्पष्टीकरण "

मूर्त्तिमा मोक्षस्थ आत्मानो आरोप करवो तेनु नाम यथास्थित प्रतिष्ठा आ मान्यता केटला अशे विरोधी छे ते सयधमा अमे उपर युक्तिथी विचार करी गया वळी ए ज मान्यता विषयमा ग्रथकर्ता विशेष निरोध दर्शावे छे प्रथम तो मोक्षस्थ आत्मानो आरोप करवो ए ज वार्ता प्रमाण अने युक्तिथी खडित छे, छता मानो के मोक्षस्थ आत्मानो मूर्त्तिमा आरोप करवानो नितान्त आग्रह ज होय तो ते मोक्षस्थ आत्मा आरोपित मूर्त्तिने कोइ स्नात्र, पूजा, अलकार आदि चडावी एम माने के मे परमात्माने प्रसन्न कर्या, मारी आ पूजा परमात्माने पहोंची तो शास्त्रकता कहे छे के आ पूजाथी काइ पण मुख्यत परमात्माने सुख के उपकार थतो नथी परमार्थ ए के–तेथी परमात्मा लेश पण खुशी थता नथी, किन्तु आवी पूजा, स्नात्र, अलकार आदि चडावी

छे तेम शास्त्रज्ञान पाम्या पछी अने ते प्रमाणे अनुशीलन करवाथी भव्य आत्मा अनादिना दुर्भेद्य कर्मोनो क्षणवारमां अवश्य नाश करी नाखे छे अतएव शास्त्रमा कह्यु छे के– " अन्नाणि ज कम्म खवेइ, बहुयाहिं वासकोडीहिं । त नाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ उस्सासमित्तेण " ॥ १ ॥ " अज्ञानी जे कर्माने घणा क्रोडो वर्ष खपावे ते ज कर्माने गुप्तेंद्रिय अने गुप्तयोगी ज्ञानी एक श्वासोश्वास कालमा खपावे छे. " श्री कृष्ण गीतामा अर्जुन प्रति कहे छे के—" ज्ञानाग्निदग्ध-कर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन " तथा कर्मो अहीं इंधनरूपे मान्या छे एटले वचनरूप अग्निमा कर्मोरूपी इंधननो प्रक्षेप करवाथी तेनो ते नाश करे छे, माटे अहीं " भावविधौ " मुख्य देवता विषयक भावविधानमा आ बाह्य प्रतिष्ठित मूर्त्ति खास पुष्टिकर्ता होवाथी अर्थात् भावशुद्धिकारक होवाथी 'सफलैवापि' आ मूर्त्तिनी प्रतिष्ठा पण नितान्त सफल ज छे परमार्थ ए के–मुख्य देव सबधी स्वात्मामा प्रशस्त भावनी प्राप्ति थया पछी तेमां स्वात्मा लीन बने छे, अने पछी शास्त्रा-नुसारे सर्व चेष्टा स्वीकारी जीवात्मा शुद्ध काचन तुल्य पर मात्मभाव प्राप्त करे छे एटले आ स्थले भावरूप पारो, जीवात्मा रूप ताम्र धातु, वचनरूप अग्नि आ सर्वनो मेलाप थया पछी भावरूप पारो वचनरूप अग्निमा जीवात्माने तपावी कर्मोनो दाह करे छे, कर्मो भस्मीभूत थाय छे अने आत्मा निर्मल बने छे, परतु प्रथमना सर्व सयोग प्राप्त थाय तदपि

वचन-आगमरूप अग्नि-प्रयोग भावरूप पारो जीगारमाँ शोधी शके नहीं माट अहीं वचनरूप अग्निनी नितात आवश्यक्ता अपेक्षित छे, तेमज भावनी पुष्टि बाह्य मूर्तिद्वाराए ज भावलक्ष्य ध्यानचर्चाओने थाय छे परतु ते विना थाय नहीं अत बाह्यप्रतिष्ठा शास्त्रकर्ताए सफल कही

अरे ! बाह्य मूर्तिगत निज भावरूप प्रतिष्ठा एही छे एनु कर्ताए शाथी जाणु ? ए शिष्य हृदयगत प्रश्नने उत्तर आचार्यश्री अहीं करे छे

एषा च लोकसिद्धा,
शिष्टजनापेक्षयाऽखिलैवेति ॥
प्रायो नानात्व पुनरिह,
मन्त्रगत बुधा प्राहु. ॥ ८–१० ॥

मूलार्थ—आ प्रतिष्ठा गुरुपरपरागत अने लोक तथा लोकोत्तर सर्वत्र शिष्टजनोनी अपेक्षाए स्वीकृत छे, मात्र आ प्रतिष्ठामा बहुधा विशेष तत्त्व तो मत्रोपचार सबधी आचार्यो जणावे छ

" स्पष्टीकरण "

शास्त्रमा आ प्रतिष्ठा आचार्यपरपराथी चाली आवे छे अने विशिष्ट भव्य आत्माओनी अपेक्षाए लोक लोकोत्तर पदार्थोमा ए ज निजभाव स्थापनरूप प्रतिष्ठा

स्वीकार्यरूपे महर्षियोए दर्शावी छे, अर्थात् आगल जेनु विस्तृत स्वरूप जणावी गया ए ज प्रतिष्ठा आचार्योए स्वीकारी छे, कही छे अने हितार्थी भव्योने आदेयरूप छे तेमज लौकिक लोकोत्तर मार्गोमा आ प्रतिष्ठा मुख्य मानी छे, मात्र आचार्यो भिन्नता एटली ज कहे छे के–निजभावनो जे मूर्त्तिमा आरोप थाय ते समये आ प्रतिष्ठा करी एवो भान जनसमूहना हृदयमा विकसाववा मन्त्रोच्चार करवो तेमा विविध भेदो छे, एटले भिन्न भिन्न मन्त्रद्वारा विविध क्रियाओ करी ते भावनो आरोप थाय छे आ कारणथी प्रतिष्ठा शास्त्रसिद्ध छे एम कर्त्ताना हृदयमा अवश्य श्रद्धा प्रकटे अने तेमा प्रवृत्ति करे ते प्रतिष्ठाद्वारा स्वकार्यसिद्धि जरूर करे छे बस आ समाधानथी उपरोक्त शंका निरस्त थाय छे

मन्त्रादि क्रियामा भिन्नता छे एम उपर कही गया हवे अहीं मन्त्रादि क्रियामां क्या प्रकारनी भिन्नता छे ते स्पष्ट करे छे

आवाहनादि सर्वं,
वायुकुमारादिगोचर चात्र ॥
सम्मार्जनादिसिद्ध्यै,
कर्त्तव्य मन्त्रपूर्वं तु ॥ ८–११ ॥

मूलार्थ—प्रतिष्ठा कार्य पूर्वे अन्य देवोने आमन्त्रण,

तेओनी पूजा आदि सर्व कार्य, अने वायुकुमार, मेघकुमार आदि देवसबधी समार्जन जलवृष्टि आदि दरेक कार्यो मत्रो चार-मत्रस्मरणपूर्वक ज अवश्य करवा

" स्पष्टीकरण "

जिनप्रतिमा शुभ मुहूर्तमा स्थापवा पहला विघ्न-विनाशार्थे, धर्मकार्य समाप्त्यर्थे अने औचित्यता पाल-नार्थे अवश्य मत्रादि संस्कारद्वारा दश दिग्पालो, लोकपालो, नवग्रहो आदि देवताओनु आह्वान करवु, तेओने मत्रोचार साथे बलिबाकूल अर्पवा, तेओनी पूजा करवी अने ते ते देवसबधी जे जे कार्यो होय ते ते कार्य पररत्ने सकल्पथी तेओनो विनियोग करवो तेमज कल्याणक समये जेम वायु कुमार अने मेघकुमार नामक देवताओ आवी भूमिशोधन तथा सुगधी जलवृष्टि करे छे तेम अहीं भाविकोए मदिरनी आसपास भूमिशोधनरूप कार्य तेमज सुगधमिश्रित जलवृष्टि अवश्य मत्रोचार सह करवी वळी अन्य देवताओनी स्थापना पण मत्रादि क्रियाद्वाराए करवी अहीं सर्वत्र मत्रोनु स्मरण तथा विविध क्रियाओ पूर्वाचार्यनी परपराथी उतरी आवेल रीतिए करवु, एटले आ सर्व विधान प्रतिष्ठाकल्प ग्रथमा तेमज प्रतिष्ठाविधिमा विस्तृतरूपे दर्शावेल छ ते प्रमाणे अने ते विधिना ज्ञाता समीपे तेनु समुचित ज्ञान कर्या पछी

ज करवु, जेथी अविधि के अवगानो समय न रहे अने शास्त्राज्ञानो लोप न थाय ए खास लक्ष्यमा राखवु

आटलो निर्देश कर्या पछी हवे जिनप्रतिमा केवी रीते स्थापवी ए वात दर्शावे छे

न्याससमये तु सम्यक्–
सिद्धानुस्मरणपूर्वकमसगम् ॥
सिद्धो तत्स्थापनमिव,
कर्त्तव्य स्थापन मनसा ॥ ८–१२ ॥

मूलार्थ––जिनप्रतिष्ठा काळे मत्रस्थापन समयमा मन सकल्पथी सम्यक्तया सिद्धभगवाननना स्मरणपूर्वक अने असगपणे तेमा ज लीन बनी मुक्तिमा जेम सिद्धोनी स्थिति छे तेम सत्–चित्–आनद रूपनी स्थापना मूर्त्तिमा नमस्कार मत्र साथे करवी

" स्पष्टीकरण "

मूर्त्तिमा ज्यारे मत्रस्थापन करवो होय, ते समये एटले मूर्त्तिमा आ वीतराग देव छे एवी कल्पना स्थापवी होय त्यारे, ज्या सुधी विधिविधान सह अनेक जनसमूह समक्ष मूर्त्तिमा मत्रस्थापन सह आ मूर्त्तिमा स्वेष्ट देव छे एवी कल्पना न थाय त्या सुधी अन्य सामान्य जन तेनी पूजा आदि कार्योमा प्रवृत्त थाय नहीं, माटे प्रतिष्ठाकर्ताए ज्यारे

मत्रारोप करवो होय ते समये प्रथम कही गया ते प्रमाणे शरुआतमा शास्त्रमा जे स्वरूप कह्यु छे ते रीते सम्यक्पणे मोक्षस्थ सिद्ध परमात्मानु स्मरण करवु, तेओना प्रत्येक गुणोनु अने ज्योतिरूपनु समुचित ध्यान करवु, सिद्धना ध्यान साथे स्वात्मा अभेदभावे परिणमे तेम वर्तन करवु एटले आगल जणावी गया ते रीते प्रतिष्ठाकर्ताना हृदयप्रदेशमा सिद्धमूर्त्तिनु प्रतिबिम्ब प्रतिबिम्बित थाय तेम करवु अने पछी मोक्षमा अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनतअव्याबाधसुख ज्योतिरूपे विराजे छे ते ज स्थितीए अहीं मूर्त्तिमा प्रतिष्ठाकर्ता " णमो अरिहताण, णमो सिद्धाण० " ए मत्रोच्चारपूर्वक स्वहृदयस्थ परमात्मदेव विषयक स्वात्मभावनो आरोप अनेक सशुद्ध विधि सह मन कल्पनाथी करे आ आरोप करती वखते प्रतिष्ठाकर्ता मन-वचन अने काया ए त्रणे योगथी केवल सिद्ध परमात्मामा ज सोपयोगरूपे बनी अन्य काइ पण ख्याल न राखी एकात्मभावे मूर्त्तिमा हु केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि शक्तिविशिष्ट चिद्स्वरूपनी स्थापना करु छु एवु ध्यान करे आनु नाम योगिओ अने प्रतिष्ठातत्त्वज्ञो साथ मूर्त्तिप्रतिष्ठा निर्देशे छे

आ प्रतिष्ठा शामाटे कही ? अर्थात् आ प्रतिष्ठानु शु फल थाय ? ए वातनो उल्लेख शास्त्रकर्ता जणावे छे

बीजन्यास सोऽय,
मुक्तौ भावविनिवेशत परम ॥

सकलावश्चकयोग—
प्रातिफलोऽभ्युदयसचिवश्च ॥८—१३॥

मूलार्थ—आ प्रतिष्ठा विधानथी मुक्तगत परमात्मामा स्वहृदयनी स्थापना थवाथी परम-उत्कृष्ट आ बीज-सम्यक्त्वनो न्यास थाय छे के जेनाथी भविष्यमा समग्र अवचककयोगोनी प्राप्ति अने उत्तरोत्तर आत्मिक ऋद्धिओनो सयोग थाय छे.

" स्पष्टीकरण "

प्रतिष्ठाकर्ता अने कारयिता बाह्य जिनमूर्त्तिमा मुख्य देव विषयक निजभावनी स्थापना करी शु लाभ प्राप्त करे छे ? ते अहीं ग्रथकर्ता दर्शावे छे एटले आ श्लोको ' बीजन्यास ' बीजनो न्यास अर्थात् बीजनी वावणी करे छे, तो जेम कृषिकार चोमासानी आदिमा भूमिमा बीजनु वावेतर करे छे तेथी परिणामे ए वावेतर अनेकधा फलदायी बने छे तेम अहीं पण बाह्यप्रतिष्ठा करवाथी कर्त्ता अने कारयिता उभय स्वहृदयरूपी भूमिमा तेमज अन्य भव्यात्माना हृदयरूप भूमिमा पुण्यानुबधीपुण्यरूप अथवा सम्यक्त्वरूप बीजनी स्थापना करे छे. परमार्थ ए के—प्रतिष्ठा करती वखते कर्त्ता तथा कारयिताना हृदयो परमात्माना ध्यानमा निमग्न बने छे खास परमात्मानु ध्यान करवु ए शुभ पुण्यबधनु परम कारण छे. एथी उत्तरोत्तर पुण्य

प्रवाह चाल्या करे छे, अगर परमात्मानु ध्यान ए सम्यक्त्वनु अंग छे, तथा अन्य जनो आ प्रतिष्ठा निहाळी तेनी प्रशंसा करे छे, अनेक लोको तेनु ध्यान, अनुमोदन अने पूजन करे छे, अतएव आ लोको पण शुभपुण्यनो बंध पामी पुण्यकार्यनो प्रवाह वहेवटावे छे, स्वहृदयने निर्मल करी समकितनो लाभ करे छे, एटले अनेक आत्माओने आ प्रतिष्ठा शोभन फलदायी थवाथी खास 'बीजन्यास' रूप बने छे आटलाथी ज आ प्रतिष्ठानु कार्य पूर्ण थतु नथी, परंतु बीज जेम उत्तरकालमा अनेक फलो अर्पे छे तेम अहीं आ 'बीजन्यास' पण आत्मिक अभ्युदय-उन्नतिक्रममा सहायक थवा साथ सद्योगावंचक, फलावंचक अने क्रियावंचक ए त्रण योगरूप फलप्राप्ति करावे छे निदान ए के-पुण्यानुबंधीपुण्यनो बंध थया पछी अथवा समकित प्राप्त थया पछी विशुद्ध आत्मा उत्तरोत्तर चडती ऋद्धिओनो अनुभव करे छे, उत्तम उत्तम स्थानमा अने विशिष्ट गतियोमा के ज्या संपत्ति, आनंद, निर्भयता अने गुणप्राप्ति तथा धर्मप्राप्ति थाय त्या जन्म धारण करे छे ने परिणामे आत्मिक उन्नतिक्रममा आगल वधे छे, कारण के-समकित लाभ थया पछी शास्त्रकर्ता कहे छे के—" समदिट्ठि जीवो विमाणवज्जं न बंधए आउ" सम्यग्दृष्टि आत्मा वैमानिक देव सिवाय अन्य आयुष्यनो बंध न करे आथी आ 'बीजन्यास' अभ्युदय-उन्नतिसहायक छतु तेमज समग्र योगोनी अवंचकता-

रूप फलदायी मान्यु छे अहीं शास्त्रोमां मद्योगावंचक, फला-वंचक, क्रियावंचक एम त्रण योगो रह्या छे आ त्रणे योगोनु स्वरूप योगदृष्टिसमुच्चयमां आ प्रमाणे दर्शाव्यु छे "सद्भि कल्याणसपन्नै-र्दर्शनादपि पावनै । तथा दर्शनतो योग, आद्यावञ्चक उच्यते ॥ १ ॥ तेषामेव प्रणामादि-क्रियानियम इत्यल । क्रियाऽवञ्चकयोगः स्या-न्महापापक्षयोदय ॥ २ ॥ फलावञ्चकयोगस्तु, सद्भ्य एव नियोगत. । सानुबन्धफलावाप्ति-र्धर्म सिद्धौ सता मता ॥ ३ ॥" आ त्रणे योगोनु विस्तृत स्वरूप योगदृष्टिसमुच्चय ग्रथमा ग्रथकर्ताए बहु सारी रीते दर्शाव्यु छे, माटे पाठकोए त्याथी जोइ लेवु

बीज वाव्या पछी कर्षको यदि तेनु रक्षण-सवर्द्धन न करे, आसपास उगेलु घास दूर करी ते बीजनी सभाळ न करे तो वावलु बीज जल, वायु आदि अनुकूल साधनो छता पण निणसी जाय छे तेम अत्रे पण सम्यक्त्व तथा पुण्यानुबधी पुण्यरूप बीज वाव्या पछी तेना रक्षण अने सवर्द्धनना अभावे निणशी जाय माटे आचार्यश्री आ वावेल बीजनु सवर्द्धन केम करवु तेनो उपाय दर्शावे छे

लवमात्रमयनियमाद्-
उचितोचितभाववृद्धिकरणेन ॥

क्षान्त्यादियुतैर्मैत्र्यादि–
संगतैर्बृंहणीय इति ॥ ८–१४ ॥

मूलार्थ—प्रतिष्ठासमयगत आ आत्मिकभाव एक सामान्य मात्र होय छे, तो पण ते भावने उचित–समुचित भाववृद्धिना उपायोथी तथा क्षमा आदि गुण संपादन करीने तेमज मैत्री, करुणा आदि भावनाओथी उत्तरोत्तर जरुर वधारवो

" स्पष्टीकरण "

अनादिथी अप्राप्त अने दुर्लभतर परमात्म विषयक भावना अगर ध्यान, प्रतिष्ठाना प्रभावथी कर्ता–कारयिता तथा अन्य जनोने प्राप्त थाय छे आ भाव परमात्मा साथे एकत्वपणु आत्माना सद्विचारो विगेरे प्रतिष्ठा समये तो अत्यंत अल्प होय छे, एटले अन्य अन्य पौद्गलिक संबंधी विचारो–भावोनी अपेक्षाए बहु थोडो होय छे, परन्तु स्वात्माने परमात्मपणु प्राप्त करवा पूर्वोक्त भावनु यथोचित रूपे प्रथम तो रक्षण करवु आवश्यक छे, अने पछी ते भावने वधारवा माटे आसपासना ते भावनु खंडन करनारा साधनो–कारणो दूर करी दिवसानुदिवस ते भाव प्रफुल्लित थाय तेवा उचित–प्रशस्त संयोगो–कारणो एकत्र करी ते भावने वधारवा दत्तचित्त थवु अर्थात्–नित्य परमात्म स्वरूपनु ध्यान, पूजा, स्मरण अने परमात्म संबंधी आज्ञानु पालन

अवश्य करवु. क्षणिक विषयसुखना साधनो दूर करी आत्मा सबंधी मुख्य धर्मनो खास विचार करवो, साथे साथे ससारनी असारता, विषयोनी कटुता, धननी चचलता अने कुटुबनी स्वार्थलोलुपता पण भाववी आथी प्रतिष्ठा समयमा प्राप्त एक सामान्य भाव पण पाछळथी विस्तृतरूपे थइ अति म्होटा प्रमाणमा थइ जाय छे अहीं शास्त्रकर्ता आ भावने वधारवाना साधनो स्वय उत्तरार्धथी दर्शावे छे "क्षान्त्यादिगुणै" प्रतिदिन क्षमा, मृदुता, आर्जव, सतोष आदि आत्माना परमधर्मोनी भावना करी तेनु स्वरूप विचारी उपरोक्त भावने वधारवो, एटले आ रीते जलसिंचन करवाथी ते भावनी वृद्धि थाय छे परमार्थ ए के-जेम जलसिंचन विना अथवा दाह पडवाथी बीज वधे नहीं पण विणशी जाय तेम अहीं पण उत्तम परमात्म सबधी अल्प प्रशस्तभाव अगर ध्यानरूप बीज जलसिंचन विना अथवा तो अनादिथी आत्माना खूणामा घर करीने बठेला क्रोध, मान, माया, लोभ आदि शत्रुओ-अग्निज्वालाओ प्रदीप्त थवाथी ते भावरूप बीजाकुर भस्मीभूत थइ जाय, माटे विवेकीए ते भावनी वृद्धि करवा अर्थे, आ अग्निज्वालाओने बूझाववा आविर्भाव न पामे ते निमित्ते श्रीमान् विनयविजयजी महाराज कहे छे तेम-"क्रोध क्षान्त्या मार्दवेनाभिमानम्, हन्या माया मार्जवेनोज्वलेन। लोभ वारा राशिरौद्र निरुन्ध्या., सतोषेण प्राशुना सेतुनेव" ॥ "क्षमाथी क्रोध, नम्रताथी अभिमान, उज्वल

पवी सरलताथी माया अने जेम सेतुबंधथी जल रुधाय तेम संतोषरूपी माटीथी लोभरूप रौद्र जलसमूहनो रोध करवो ” अहीं क्रोधादि ज्वालाओने बुझावनार, उदयने रोकनार क्षमा आदि भावनो अहर्निश विचार करवो अत्यावश्यक योगियोए कह्यो छे, कारण के एम करवाथी ज परमात्म सनथी भावनी नितान्त शुद्धि अने आत्मिक गुणनो विकास थाय छे आपणा घरनी मिल्कत अन्य कोइ दबावी दे तो तेना सामे सरल उपायो लेवाथी-झझमवाथी ज ते मिल्कत आपणा हाथमा आवे, परन्तु तेवा समय सहनशीलता राखवाथी अगर कायरता करवाथी मिल्कत पाछी आवे नहीं किन्तु थोडी-घणी होय ते पण आपणी निर्बलता देखी अन्य शत्रुओ पडावी जाय क्षमा आदि विचारनु स्वरूप तत्त्वार्थ-भाष्यमा उमास्वातिवाचकजी आ प्रमाणे दर्शावे छे

“ क्रोधादि शान्तिनो उपाय ”

“ क्रोधनिमित्तस्यात्मनि भावाभावचिन्तनात् ”
कोइ पण मनुष्य आपणा पर ज्यारे क्रोधाविष्ट थाय त्यारे विचारवु के-आ मनुष्य मारा सामे क्रोध शा माटे करे छे ? में तेनु काइ पण नुकशान करी तेना साथे कदापि विरोध कर्यो छे ? अथवा प्रतिकूल वर्तन मे आचर्यु छे ? आ रीते विचार करी यदि जो मे अपराध कर्यो छे, विरुद्ध वर्तन कर्यु छे, नुकशान कर्यु छे तो तेनो जे क्रोध छे ते व्याजबी ने योग्य छे, अने मारे ते अवश्य सहन करवु जोइए कारण के-आ गुन्हानी शिक्षा

छे गुन्हानी शिक्षा सामे रोप करवो ए तो बालचेष्टा गणाय. यदि विचार करता एवुं जणाय के-स्वप्ने पण अपराध, नुकशान के अन्यथा वर्त्तन कर्युं नथी छता आ माणस क्रोध करे छे तो ते अज्ञानी छे, अज्ञानथी प्रलाप करे छे, अज्ञानी सामे प्रलाप करवाथी हु पण अज्ञानी ज ठरु, आथी पण मारे क्रोध करवो अघटित ज कहेवाय ए ज परमार्थनो अनुवाद पूर्वाचार्यो एक सुभाषितथी उपदशे छे. "आक्रुष्टेन मतिमता, तत्त्वार्थगवेषणे मतिः कार्या। यदि सत्य क कोप, स्यादनृत किं नु कोपेन" ॥१॥ आटलो विचार करवाथी पण जो क्रोध निष्फल थाय नहीं तो "क्रोधदोषचिन्तनाच्च" क्रोधनु फल विचारवु क्रोध करवाथी प्रथम तो पोतानु शरीर तपी जाय, कठ सुकाय, वेचेनी थाय, भान भूली जवाय, अनाज पर अरुचि थाय, बुद्धि भ्रष्ट थाय, कर्त्तव्य अने विवेक विसरी जवाय, प्रेमनो नाश थाय, इज्जत चाली जाय, लोकोमा क्रोधीपणानी ख्याति थाय अने छेवटे पुण्यफलनो पण नाश थाय आ हेतुथी पण क्रोध करवो अघटित ज छे आम विचार करता छता क्रोध न रोकाय तो "बालस्वभावचिन्तनाच्च" बालस्वभावनो विचार करवो अज्ञानीनी ज ए टेव होय छे के-परोक्षमा तथा प्रत्यक्षमा निष्कारण कोप करवो, तेमज ताडन, मरण अने धर्मभ्रष्ट लोकोने करवा, परतु विवेकीए विचारवु जोइए के ते अज्ञानी

बिचारा परोक्षमा ज कोप करे छे पण प्रत्यक्षमा आवता नथी ए ज महान् लाभ थयो यदि प्रत्यक्षमा कोप करे तो ते कोप करी संतोष माने छे परंतु मने मारता नथी ए ज तेओनो उपकार थयो कदाचित् मारे तो तेओ काइ मारा प्राणनो नाश करता नथी किन्तु मारीने तृप्त थाय छे कथंचित् प्राणनो पण तेओ वियोग करे तो पण मने धर्मभ्रष्ट करता नथी, मारो धर्म कायम रहेवा दे छे ए ज तेओनो म्होटो उपकार मारा पर थयो आम विचारी उदयगत कोप निष्फल करवो, एज भाव महर्षिओ जणावे छे " अक्कोशहणणमारणधम्मब्भंसाणबालसुलहाणं । लाभं मन्नइ धीरो जहुत्तराणं अलाभम्मि " ॥ १ ॥ अन्तमा कोप निष्फल करवा माटे आ विचार करवो " स्वकृतकर्मफलाभ्यागमश्च ' ज्यारे क्रोधथी धसी आवी कोइ आपणा प्राणनो पण नाश करे त्यारे विचारवु के आ सर्व मारा कृतकर्मनु ज फल छे पूर्व जन्ममा आ लोकोमा थ तेवा प्रकारनो लेणदेणनो संबंध कर्यो हशे, मे तेओने हेरान कर्या हशे, मार्या हशे, प्राणवियुक्त कर्या हशे एटले तेओ अत्यारे मारा पासेथी तेनो बदलो वाळे छे कोइनु पण देवु कर्या पछी ए ज्यारे मागे त्यारे विनासकोचे प्रसन्नहृदये पाछु अर्पवु जोइए तेमा कोप करवो ए तो व्यवहारथी पण विरुद्ध ज गणाय, अहीं पण देवु चूकावाय छे तो पछी मारो कोप शा माटे करवो ? आम विचारी ठेरठे कोपने दबावी देवो, उदय न थाय तेम करवु

क्रोध अने मानने आपसमा अति निकट संबंध छे अर्थात् ज्यां मान होय त्या कोप जरूर पोतानो प्रभाव दर्शावे छे, एटले कोप अने मान सहचारी छे, माटज ते बन्नेने सर्वने द्वेषना घर कह्या छे द्वेषमांथी ते उद्भवे छे. आ मानने दूर करवा नम्रता, मृदुतानो अभ्यास विवेकीए अवश्य करवो. परमार्थ ए के–सर्वदा विनीतभावे–नम्रभावथी वर्त्तवु अने गर्व न करवो ए मृदुतानु चिह्न कह्यु छे आम वर्तवाथी माननो आविर्भाव न थाय जनताने जाति, कुल, रूप, ऐश्वर्य, बुद्धि, श्रुत, लाभ, पराक्रम आ आठ कारणोथी गर्वमाऌ, अक्कडपणु, उद्धताइ, उच्छृखलपणु, कडकाइ आवे छे अन्य जनोनी अपेक्षाए पोतानी श्रेष्ठ जाति होय, श्रेष्ठ कुल होय, उत्तम सुदर रूप होय, विशेष ऐश्वर्य–प्रभुताइ–अधिकार होय, विशिष्ट बुद्धि होय, विशेष श्रुतबोध होय, विशेष प्राप्ति थाय, अतिबल होय, आ सर्व मदना कारणो जाणवा आ कारण सयोगथी परनी निंदा करे, स्वात्मानी प्रशंसा करे अने आम करवाथी अतिहलका कर्मनो बध करी आत्मा निबेरु निसरी जाय, स्वकर्तव्यथी भ्रष्ट थाय, म्होटा–न्हानापणानु भान न राखे तेम ज जे जे पदार्थ संबधी मद कराय ते ते पदार्थो जन्मातरमा अधमरूपे प्राप्त थाय आम विचारी माननो त्याग करवो, उदयप्राप्त होय तो दबावी देवो अने भविष्यमा उदय थवा देवो नहीं.

हृदयनी मायाग्रथीने दूर करी सरलता–निष्कपटपणु धारण

करवु तेनु नाम मृदुता लेश पण माया उत्तम पदार्थ माटे करीए तो पण मल्लिनाथजीनी माफक अकल्याणकर्ता थाय छे, तो पछी निशिष्ट अने विशिष्टतर सासारिक अनुत्तम पदार्थो माटे जे माया सेवीए तेनु तो केवुए अनिष्ट फल प्राप्त थाय ? मायी-जननो कोइ विश्वास करे नहीं, कारण के मायीजन मर्यादा सर्व कार्योमा प्रपचने ज आगल करे छे आथी मायीने बुध जनो सर्प तुल्य माने छे, तेमज ज्या सुधी हृदयमा लेश पण पण सारी क खोटी माया होय त्या सुधी हितकारी प्रवृत्तिनु सुदर फल पामे नहीं माटे माया त्याग करी सर्व कार्योमा सरलता धारण करवी जोइए

जगत्मा ' लोभमूलानि पापानि ' सर्व पापनु मूल अने अनर्थपरपरानु खास कारण लोभ ज छे हृदयना मेलोनी जड घालनार पण लोभ कह्यो छे, लोभावश आत्मा कदापि शान्ति अनुभवतो नथी, लोभी प्रतिष्ठा सन्मान अने आवरुने गणतो नथी, लोभी प्रेमसुखनो अनुभव अने कुटुबनो प्रेमपात्री बनी शकतो नथी, तेमज आ लोक अने परलोकना सुख अर्थे लोभी धर्म पण सेवी शकतो नथी, वळी लोभी उपार्जित लक्ष्मीनु सुख भोग्यपदार्थ तथा शान्तनिद्रानो पण अनुभव करी शकतो नथी आथी लोभनो त्याग करी सतोष धारण करवो जोइए हेतु ए के—' सतोषामृततृप्ताना यत्सुख शान्तचेतसा । कुतस्तद्धनलुब्धाना–मितश्चेतश्च धावता " ॥ १ ॥ " सतोषरूप अमृतथी तृप्त एवा शान्तहृदयी

जनोने जे सुख होय ते सुख धनमां लुब्ध अने ज्यान्या भटकनार आत्माओने क्याथी होय ? " एतान्न आत्मिक सुख अने स्वकल्याणनी सिद्धि लोभनो परित्याग करी संतोष धारवाथी ज थाय छे लोभ एटलो पूरामा पूरो छे के चतुर्दश पूर्वधरो पण उपशमश्रेणि पर आरूढ थया पछी त्याथी लोभना उद्-यथी गोधु खाइ निगोदमां प्रवेश करे छे आम विचारी अन्तमा समजुए लोभनो अवश्य त्याग करवो उचित छे, अर्थात् लोभनो नाश करवा संतोषरूप खड्ग धारण करवु

आ रीते क्रोध, मान, माया, लोभना प्रतिविरोधी क्षमा, मृदुता, आर्जवता अने संतोष सवधी उपरोक्त भावना हृदयमां धारण करी, प्रथम कही गयेल प्रतिग्रागमयमा प्राप्त थयेल अल्प शुभ भावनी वृद्धि करवी अर्थात् आ प्रमाणे जल्नु सिंचन करी आ भावरूप बीजने वृद्धिगत करवु पछी शास्त्र कर्ता फरी आ बीजवृद्धिनो उपाय " मैत्र्यादिस्मगर्ने " ए पन्थी विशेष जणावे छे मैत्री, करुणा, प्रमोद, माध्यस्थ्य ए चारे भावनाओ प्रतिदिन विचारवी आ चार भावनाओ सम्यक्त्वने पुष्ट करे छे आनु विस्तृत स्वरूप अमे आगल जणावी गया छीए, ते स्वरूपने ध्यानमा उतारी तेनु स्वरूप विचारवु, आ प्रमाणे आ चार भावना अने क्षमा आदि चार भावोनु स्वरूप नित्य विचारवाथी, तेनु ध्यान करवाथी अवश्य अतरात्मा विशुद्धतर थाय छे, उपरोक्त अलभ्य भावनी वृद्धि पण थाय, माटे अहीं ग्रंथकर्ताए

जणाव्यु के-क्षमा आदिथी अने मैत्री आदि भावनाथी आ भाव-रूप बीज "संवर्द्धनीय" वृद्धिगत करवु

आ रीते भावरूप बीजवृद्धिनो उपाय दर्शावी फरी ते ज बीजवृद्धिनो अन्य उपाय ग्रंथकर्ता जणावे छे

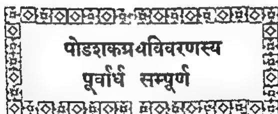
निरपाय सिद्धार्थ
स्वात्मस्थो मन्त्रराडसगश्च ॥
आनन्दो ब्रह्मरसश्चिन्त्य-
स्तत्त्वज्ञमुष्टिरियम् ॥ ८-१५ ॥

मूलार्थ—अपाय वगरनो, जेनाथी सर्व अर्थनी सिद्धि थाय एवो, स्वात्मामा रहेनार, सर्व मंत्रोमा मुख्य मंत्रभूत, उपाधि रहित, आनन्दस्वरूप अने ब्रह्म, सत्य, तप अने ज्ञान एवो रसरूप तेमज सर्वत्र शासनमा तत्त्वज्ञाननी ग्वास मुष्टिरूप आ प्रतिष्ठामसयगत भावनो वारंवार विचार करवो

"स्पष्टीकरण"

जेवी रीते प्रतिष्ठामसयमा लभ्य उत्तम भावनु सर-क्षण-संवर्धन माटे आपणे आगल विचार करी गया तेम अहीं शास्त्रकर्ता फरी ते ज भावनी वृद्धि माटे आ भावनी महत्ता अने तेनु फल विचारवानु जणावे छे, अर्थात् पदार्थ परनो मोह, तेनु स्वरूप, तेनी महत्त्वता अने तेना फलो

सत्तरप्रकारी अथवा एकवीशप्रकारी पुष्प, धूप, दीपक, नैवेद्य आदि पदार्थोवडे पूजा करवी अहीं मूलमां 'अष्टौ दिवसान्' ए वाक्य थयुं होवाथी तेनो परमार्थ ए के-अष्टान्हिका महोत्सवरूप पूजा करवी अने याचकोने पोतानी शक्त्यनुसार दान पण आपवु, अथवा सर्व जीवनु संरक्षण थाय तेम अभयदान आपवु, एटले जीवोनी हिंसा बंध कराववी

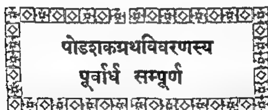


आ पुस्तकना पहेलाथी ग्राहक बनी मदद आपनार महाशयोनी नामावली



प्रथमी सख्या	ग्राहक नाम	ग्राम
१०१	शा ग्रेनमलजी चंद	मद्रास
१०१	शा कानमलनी भेरुगमजी	,,
५१	शा हजारीमलनी रूपचदजी	,,
५१	ढा ढा कपनी	,,
७५	शा साकरचद तिलोकचद	,,
७१	शा केसरीमलनी मगनमलजी	,,
३१	शा मागमलजी मुनानमलनी गोलेच्छा	,,
२५	शा रूपचदजी ठागमलजी गोलेच्छा	,,
२५	शा गुलराजनी फोजराजजी कानुंगे	,,
२५	शा केशरीचदजी कनरलालजी	,,
२१	शा बालचदजी मुरलीवरजी मान्नू	,,
२१	शा शेरमलजी माणेकलालनी श्रीश्रीमाल	,,
२१	शा मुखचदजी हमराजजी	,,
१७	जे एम् शेठ	,,

मत्तरप्रकारी अथवा एकवीशप्रकारी पुष्प, धूप, दीपक, नैवेद्य आदि पदार्थोवडे पूजा करवी अहीं मूलमां 'अष्टौ दिवसान्' ए वाक्य थयुं होवाथी तेनो परमार्थ ए के- अष्टान्हिका महोत्सवरूप पूजा करवी अने याचकोने पोतानी शक्त्यनुसार दान पण आपवु, अथवा सर्व जीवनु संरक्षण थाय तेम अभयदान आपवु, एटले जीवोनी हिंसा बध करावबी



आ पुस्तकना पहेलाथी ग्राहक बनी मदद आपनार महाशयोनी नामावली.

प्रथनी सख्या	ग्राहक नाम	ग्राम
१०१	शा प्रेनमलजी वेद	मद्रास
१०१	शा कानमलजी मेरुगसजी	”
५१	शा हजारीमलजी रूपचंदजी	”
५१	ढा. ढा कपनी	”
२५	शा साकरचद तिलोकचद	”
२१	शा केसरीमलजी मगनमलजी	”
३१	शा सागरमलजी सुजानमलजी गोलेच्छा	”
२५	शा रूपचदजी डोगमलजी गोलेच्छा	”
२५	शा गुलराजजी फोजराजजी कानुगे	”
२५	शा केशरीचदजी कंवरलालजी	”
२१	शा वालचंदजी मुरलीधरजी माल्ू	”
२१	शा शेरमलजी माणेकलालजी श्रीश्रीमाल	”
२१	शा सुखचदजी हमराजजी	”
१७	जै एम् शेठ	”

१५ धी काठियावाड सायकल कंपनी ,,
१५ धी पोप्युलर सायकल कंपनी ,,
११ शा सुरजमलजी श्यामलालजी ,,
११ शा हिंदुजी रामाजी ,,
११ शा हीराजी वनेचंदजी ,,
११ शा चापला तेजराज दलाल ,,
१० शा नागजी पुरषोत्तम ,,
१० शा माणेकलाल नीकमलाल ,,
७ शा धूलचंदजी गेवरचंद श्रीश्रीमाल ,,
७ शा सी जे शेठ ,,
७ शा हरखचंद रूपचंद ,,
५ शा सुरजमलजी कोठेमा रायपेठ ,,
५ शा ऋद्धिचंदजी कोठेमा निलिवाकम् ,,
५ शा नथमलमोलकी पुनमली कंटोनमेंट ,,
५ शा ताराचंद खेमराज चिंतादरिपेठ ,,
५ शा माणेकलाल वेताळा ,,
५ शा कनीरामजी जुगराजजी ,,
५ शा छगनलाल लखमीचंदजी ,,
५ शा तिकमजी मोतीजी ,,
५ शा रूपचंद छबीलदास ,,
५ शा देवराजभाइ कच्छी ,,
५ शा साकरचंद गुलाबजी ,,

५ शा अंबालाल भूरमलजी ,,
५ शा रतनचंदजी चूनीलालजी ,,
५ शा जेठमलजी गेनमलजी ,,
५ शा मुलतानमलजी मिसरिमलजी ,,
५ शा वनाजी शंकरलालजी ,,
५ शा अमृतमलजी रिखबदासजी ,,
५ शा फुमाजी कस्तूरचंदजी ,,
५ शा भूताजी पुनमचंदजी ,,
५ शा मूलचंदजी शकरलालजी ,,
५ शा सनदानमल रीमचंदजी ,,
५ शा भूरमलजी अमृतमलजी ,,
५ शा सोगालाल कमनाजी ,,
५ शा लुनाजी भगवानजी ,,
१० शा भगाजी मोनमलजी ,,
४ शा नेमिचंदजी ज्ञानक ,,
४ शा मंगलचंदजी अमरचंदजी ,,
४ शा सूरजमलजी मलेचंदजी ,,
३ शा चूनीलाल जेसगभाई ,,
३ शा रीमचंद जेमगलाल ,,
३ शा जोधाजी मनीराम ,,
३ शा फोजमलजी मूलचंदजी ,,
३ शा गुलाबचंद बादरमल ,,

३ शा हींदुजी देवीचंदजी ,,
३ शा हनारीमल जीवराज ,,
३ शा सूरनमलजी अमरचंदजी ,,
२ शा परतापमलनी सागरमलजी ,,
२ शा सुनाणमलजी सोभागमलनी ,,
२ शा सतीदानजी आशकरणजी ,,
२ शा लालचंद चादमलजी कोठारी ,,
२ शा लक्ष्मीलालनी माणेकलाल ,,
२ शा डायानी नथमलजी ,,
२ शा कानाजी जुहारमलजी ,,
२ शा मूलचंद देवीचदजी ,,
२ शा लखमीलालजी मिसरिलालजी चेद ,,
२ शा रामसुख लागुचदजी लुणीया ,,
२ शा भानाजी ताराचंद ,,
२ शा मलोकचंद कस्तूरचंद ,,
१ शा सलरानजी ,,
१ शा गणेशमलजी ,,
१ शा चूनीलालजी छाजेड ,,
१ शा केसरिमलजी शेशमलजी ,,
१ शा गंभीरमलजी फूलचदजी ,,
१ शा नथमलजी अनराजजी ,,
१ शा भोमराजी पनरोटीवाला ,,

१ शा मोहनलाल माणेकलाल शाह
१ शा पृथ्वीराजजी थोरीसेठ
१ शा जेठमलजी कोठारीया
१ शा सुगलाल केशरलाल
१ शा मगराजजी केसरीचंद कोठारीया
१ शा मोतीचंदजी सेठीया
१ शा रूपमलजी रतनमलजी
१ शा अनराजजी वाग
१ शा ममरथमल मिश्रीमल मकलेचा
१ शा रतनमल अमूलकचंद
५ शा जवानमल रतनमलजी
५ शा मोतीलाल वीरचंदजी सुराणा
२ शा जवानमलजी जीवराजजी
२ शा किसनचंद चांदमलजी
२ शा रूपचंदजी लक्ष्मीलालजी
२ शा सुगनमलजी नेमिचंदजी
१ शा जेठमलजी आसकरणजी
५१ शा लुंबाजी माकलचंद बीजापुर
११ शा शिनाजी अमीचंद
११ शा नवलमल लालचंद
७ शा वीरचंद कपूरचंद
५ शा वनाजी माकलचंद

५	शा गुलाबचंद रायचंद	"
५	शा गणपतचंद नानचंद	"
५	शा वनाजी चेमाजी	बागलकोट
५	शा हीराचंद केरिंगजी	अगरखेड
५	शा फतेमलजी सेसमलजी कोठारी	बेलगामकेंप
३	शा मूलाजी मंठाजी	बीजापुर
२	शा गुलाजी लालचंद	"
२	शा चीमनाजी मजनाजी	"
२	शा सोमचंद दलीचंद	"
२	शा नरसीदास कालजी	"
२	शा अमीचंद दलीचंद	"
२	शा मानमल जीवणजी नाहार	"
१	शा रायचंद छगनलाल	"
१	शा प्रेमचंद खुशालजी	"
१	शा उकाजी चुनीलाल	"
१	शा रायचंद खुशालजी	"
१	शा त्रिभोवनदास केसवजी	"
१	शा घस्तिमल हस्तिमल	"
१	शा मणीलाल मीयाचंद	"
१	शा भवाजी देवाजी	"
१	शा वनेचंद रतनाजी	"
१	शा जवेरचंद दलीचंद	"

१	शा गोविंदजी कस्तूरचंद नाहार	"
१	शा गुलाबचंद नानचंद	"
१	शा पुनमचंद हीराचंद पटणी	आगरा
२५	शा हीराजी थेयमलजी	बैनाली
२०	शा रतनाजी चंदनमलजी	"
२०	शा जहूराजजी जसराज	"
१५	शा ताराजी मिश्रीमलजी	"
१५	शा छोगमलजी लडीराम	"
१०	शा लालचंद खुशालचंद	"
१०	शा पेमाजी माकलचन्दजी	"
१०	शा शिवराजजी धरमचन्दजी	"
१०	शा पेराजमल मूलचंद	"
१०	शा जेरुपजी छोगमल	"
८	शा राजाजी रुगनाथजी	"
७	शा गुमानी केमरिमलजी	"
५	शा पेमाजी जीवराज	"
५	शा गुलनाजी चुनीलाल	"
५	शा भगवानजी गुलाबचंद	"
५	शा सागरजी केसरिमलजी	"
५	शा चेनाजी सुखचंद	"
५	शा मोमाजी अमृतमलजी	"
३	शा मलचंद वनाजी	

३	शा गणेशमल रतनचंद	"
२	शा लछीराम जोधराज	"
३	शा रामाजी गोमाजी	"
२	शा सूरतमल नराजी	"
४	शा गाराजी हस्तिमल	"
१७	शा सागरचंदजी छोटमलजी	निंजराडा
१७	शा प्रतापमलजी अमलखचंदजी	"
१७	शा छोगमल चिनाजी	"
१७	शा. साकलचंद चुनीलाल	"
३	शा वालचंद उमाजी	"
१०	शा मचाजी हस्तिमलजी	मंगलगिरि
१०१	शा चंदाजी खुमाजी	गंद्रर
७	शा छोगमलजी जेठमल	"
५	शा जेताजी हीराजी	"
५	शा नरसिंहजी गोमराज	"
७	शा चेनाजी अमृतमलजी	"
५	शा रामाजी कस्तूरचंदजी	"
३	शा वनाजी देवीचंदजी	"
५	शा वछराज हजारीमलजी	"
५	शा नथाजी जेठमलजी	"
५	शा चमनाजी शोभमलजी	"
५	शा डायाजी जेरूपजी	"

५	शा अस्तानी चेनाजी	”
३	शा लालानी जकचंदजी	”
३	शा जेतानी पगनी	”
२	शा चनानी नथमलजी	”
१	शा चेनानी रायमलजी	”
१	शा वालचंद हीराचंदजी	”
५	शा जेरुपजी छोगमलजी	”
२	शा चेनानी मूलचंदजी	”
५	शा छोगमल वृद्धिचंदजी	गुडीवाडा
५	शा मठालाल ताराचंदजी	”
५	शा. चन्दनमल गोडाजी	”
४	शा भागचंद कपूरजी	”
३	शा प्रेमचन्दजी मागजी	”
३	शा रूपचंद वगिजी	”
३	शा गुलाबचन्दजी धन्नाजी	”
२	शा चुनीलाल केसरीमलजी	”
२	शा भूरमल केसाजी	”
३	शा वीरचंद मलूकचन्द	”
२	शा दलीचंद कपूरचंद	”
१	शा गटुमल छोगमल	”
१	शा अकेचंद सुमाजी	
१	शा देवीचंद वधाजी	

१ शा गयचद रतनचद ,,
१ शा मिश्रीमलनी जमाजी ,,
१ शा ओटमल गुलराजी ,,
१ शा फूलचद भानीराम ,,
१ शा गुलराजी छोगमल ,,
१ शा गुलराजी देवीचंद ,,
१ शा नथमल मोतीजी ,,



